संवर्ग - 1

इकाई - 1 मनु

संरचना

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 जीवन परिचय
1.4 राज्य का सप्तांग सिद्धान्त
1.4.1 स्वामी (राजा)
1.4.2 अमात्य (मंत्री)
1.4.3 पुर
1.4.4 जनपद (राज्य)
1.4.5 कोष
1.4.6 दण्ड
1.4.7 मित्र
1.5 राजा संबधी विचार
1.5.1 राजा की उत्पत्ति का दैवीय सिद्धान्त
1.5.2 राजा के आवश्यक गुण
1.5.3 राजा के कर्त्तव्य
1.5.4 क्या मनु का राजा निरंकुश है ?
1.5.4.1 धर्म का नियंत्रण
1.5.4.2 संस्थागत नियंत्रण
1.5.4.3 राजा के लिए दण्डविधान
1.5.4.4 राजा के व्यक्तिगत गुण और दिनचर्या
1.6 मन्त्रिपरिषद्
1.6.1 मंत्रियों की संख्या
1.6.2 मंत्रियों की योग्यताएँ
1.6.3 मंत्रिपरिषद् की शक्तियाँ एवं कार्य
1.6.4 मंत्रिपरिषद् की कार्यप्रणाली
1.7 प्रशासनिक व्यवस्था
1.8 दण्ड व्यवस्था
1.9 कानून व न्याय व्यवस्था
1.9.1 न्यायालयों का गठन
1.9.2 न्यायाधीशों की योग्यताएँ
1.10 राजकोष और अर्थव्यवस्था संबंधी विचार
1.10.1 मनु का राजनीतिक अर्थशास्त्र
1.10.2 कर सिद्धान्त
1.10.2.1 प्रजा रक्षण का सिद्धान्त
1.10.2.2 लाभ पर कर का सिद्धान्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.10.2.3 राष्ट्रीय योजना सिद्धान्त
1.10.2.4 व्यथा मुक्ति का सिद्धान्त
1.10.2.5 अधिक कर निषेध सिद्धान्त
1.11 परराष्ट्र नीति
1.11.1 मण्डल सिद्धान्त
1.11.2 षाड्गुण्य नीति
1.11.2.1 सन्धि
1.11.2.2 विग्रह (युद्ध)
1.11.2.3 दान
1.11.2.4 आसन
1.11.2.5 द्वैधी भाव
1.11.2.6 संश्रय
1.12 मनु का समाज दर्शन
1.12.1 वर्ण व्यवस्था
1.12.1.1 ब्राह्मण
1.12.1.2 क्षत्रिय
1.12.1.3 वैश्य
1.12.1.4 शुद्र
1.12.2 आश्रम व्यवस्था
1.12.2.1 ब्रह्मचर्याश्रम
1.12.2.2 गृहस्थाश्रम
1.12.2.3 वानप्रस्थाश्रम
1.12.2.4 सन्यासश्रम
1.13 सारांश
1.14 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
1.15 अभ्यास प्रश्नावली

1.1 उद्देश्य

इस अध्याय में आप पाएँगे — प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारक के रूप में मनु के विचार। इसका उद्देश्य मनु की जीवनी बताते हुए तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक इत्यादि व्यवस्था से अवगत करवाना। इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप —

- मनु के राज्य उत्पत्ति तथा निर्माण के सिद्धांत को जान सकेंगे,
- मनु ने एक संगठित समाज की कल्पना किस प्रकार से की है,
- राज्य एवं जनता की उन्नति में एक राजा की क्या भूमिका हो सकती है तथा राजा को किस प्रकार अपने दायित्वों का निर्वाह करना चाहिए,
- राज्य की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए मनु ने जो विचार दिये हैं, उन्हें जान सकेंगे,
- राज्य को अपने हितों की अभिवृद्धि करने के लिए प्रभाती कुटनीति की आवश्यकता होती है। इस हेतु मनु ने परराष्ट्र नीति प्रस्तुत की है, उसे भी जानने के अवसर मिलेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.2 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय राजनीतिक–चिन्तन पाश्चात्य राजनीतिक–चिन्तन से पहले का है। भारतीय राजनीतिक चिन्तकों ने जो विचार प्रस्तुत किये, वे राजनीति शास्त्र के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जिनसे इस विषय को नवीन दिशा मिली। भारत में राजतंत्रीय और गणतंत्रीय शासन प्रणालियाँ प्राचीन यूनानी नगर–राज्यों की शासन–प्रणालियों से भी पहले विकसित थी और भारतीय राजनीतिक मनीषियों ने प्राचीन यूनान के महान राजनीतिक, दार्शनिकों–सुकरात, प्लेटो व अरस्तु से पहले राज्य शास्त्र और शासनकला पर विचार प्रस्तुत कर दिये थे। प्राचीन भारतीय राजनीतिक विद्वानों में मनु, कौटिल्य और शुक्र का नाम उल्लेखनीय है।

प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारक मनु को 'मानव धर्मशास्त्र' अर्थात् मनु स्मृति से प्रसिद्धि मिली। इस कृति में मनु ने सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक एवं धार्मिक विचारों को प्रकट कर एक संगठित समाज की स्थापना पर बल दिया। सत्यमित्र दुबे के शब्दों में,– "**मनु की राज्य–व्यवस्था की वास्तविक कसौटी धर्म ही है।**"

मनु ने मानव के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन की व्यवस्था की परिकल्पना की है। उन्होंने मानव के सामाजिक जीवन के उन सिद्धान्तों का विवेचन किया है, जिन्हें सभी कालों और देशों में लागू किया जा सकता है। इस दृष्टि से उनके विचारों का महत्त्व सर्वव्यापी है। मनुस्मृति हिन्दू शासन पद्धति के सिद्धान्तों के सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोतों में एक है, जिसका संबंध जीवन के सम्पूर्ण पहलुओं से है जिसमें प्रत्येक विषय के बारे में नियमों का उल्लेख किया गया हैं। क्षत्रियों के कर्त्तव्यों के वर्णन में मनु ने प्रशासनिक कार्यों की विवेचना की है। मनु ने वर्णाश्रम धर्म की अनुपालना पर बल दिया। मनुस्मृति को हिन्दू कानून पर सबसे प्राचीन ज्ञात ग्रन्थ माना जाता है। मनु का वर्णन प्राचीन राजाओं में प्रथम और महानतम राजा के रूप में भी किया जाता है।

1.3 जीवन परिचय

मनु के जीवन और काल को लेकर अनेक मतभेद पाये जाते हैं। मनु कौन ?और क्या थे ?इसको लेकर विभिन्न विचारकों ने अपनी अलग–अलग राय दी है। पौराणिक कथाओं में मनु को मानव जाति का जनक और प्रथम विधिवेत्ता माना जाता है। उनके संबंध में यह भी धारणा प्रचलित है कि जब सम्पूर्ण सृष्टि जलमग्न हो गई थी तब मनु और उनकी पत्नी शतरूपा ही बची थी। तत्पश्चात् मनु ने एक संगठित समाज के निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया, जिसके संबंध में विचार 'मनुस्मृति' में प्रस्तुत किये।

मनु के युग के संबंध में भी मतभेद है किन्तु भारतीय साहित्य में मनु के शासन को एकमत से आदर्श शासन माना जाता है। कालिदास अपने 'रघुवंश' में लिखते हैं कि "**रघुवंशी राजा मनु द्वारा बताई गयी पद्धति के अनुसार शासन किया करते थे, उसमें इंचमात्र इधर–उधर नहीं होते थे।**"

1.4 राज्य का सप्तांग सिद्धान्त

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में राज्य के संबंध में अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, जो वर्तमान राजनीति विज्ञान की आधारशिला है। इनमें से सप्तांग सिद्धान्त भी एक प्रमुख सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य की सात प्रकृतियाँ होती है, जो राज्य का निर्धारण करती है। सभी प्रकृतियों का अपना एक विशेष महत्त्व होता है और ये प्रकृतियां एक–दूसरे के साथ मानव शरीर के विभिन्न अंगों के समान जुड़ी हुई होती है। मनु स्मृति में भी राज्य के सप्तांग सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है, जो निम्नलिखित है–

मनु द्वारा प्रतिपादित सप्तांग सिद्धान्त

1.4.1 स्वामी (राजा)

मनु राजा के लिए स्वामी शब्द का प्रयोग करता है। स्वामी से आशय है कि राज्य की समस्त शक्ति उसमें निवास करेगी और वहीं वास्तविक प्रयोगकर्त्ता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

होगा अर्थात् राजा ही सम्प्रभु होगा। उसके अनुसार राजा के बिना राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। राजा राज्य की एकता, अखण्डता एवं सम्प्रभुता का प्रतीक होता है। लेकिन मनु का मानना है कि राजा को प्रशासनिक क्षमता, दायित्व के प्रति अटूट निष्ठा तथा नैतिक गुणों से युक्त होना चाहिए।

1.4.2 अमात्य (मंत्री)

मनु का विचार है कि कुशल मंत्रियों के बिना राज्य का कार्य नहीं चलाया जा सकता। अत: राजा के द्वारा सुयोग्य मंत्रियों के परामर्श प्राप्त करते हुए राज्य के कार्य किये जाने चाहिए। मनु ने मंत्रियों के लिए आवश्यक गुणों और योग्यताओं का पर्याप्त विस्तार से उल्लेख किया है।

1.4.3 पुर

पुर का अर्थ है- 'किला, परकोटा, दुर्ग या राजधानी।' मनु का मत है कि पुर पूर्णतया सुरक्षित होना चाहिए, इसके लिए दुर्ग का निर्माण ऐसे दुर्गम स्थलों पर करना चाहिए, जहां शत्रु सेना आक्रमण न कर सके और राज्य सुरक्षित रह सके। मनु पुर की श्रेणियों का उल्लेख करता है, जिनमें प्रमुख है :- धन्नवन वर्ग दुर्ग, महि दुर्ग, जल दुर्ग, वृक्ष दुर्ग, मनुष्य दुर्ग एवं गिरि दुर्ग। इस तरह से मनु के राज्य की सुरक्षा के लिए दुर्ग के महत्त्व का प्रतिपादन किया है।

1.4.4 जनपद (राज्य)

जिस प्रकार आधुनिक राज्य के निर्माणक तत्त्वों में जनसंख्या और निश्चित भू-भाग को स्वीकार किया जाता है ठीक उसी प्रकार मनु राज्य तथा कौटिल्य जनपद शब्द का प्रयोग करता है।

1.4.5 कोष

मनु के अनुसार, कोष राज्य का न केवल अनिवार्य वरन् अति महत्त्वपूर्ण अंग है। मनु की मान्यता है कि राजा के पास समुचित मात्रा में कोष होने पर ही वह अपनी प्रजा की सुरक्षा तथा कल्याण के लिए विभिन्न प्रकार के दायित्व को पूरा कर सकता है। इसके अभाव में राज्य के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है। अत: राजा को चाहिए कि वह न्यायपूर्ण साधनों के द्वारा अपने कोष को दृढ़ता प्रदान करे। इसके लिए वह जन-हित का पूरा ध्यान रखे और करों का भार न लगाए।

1.4.6 दण्ड

दण्ड का आशय राज्य की रक्षा करने वाली शक्ति अर्थात् 'सेना' से है। इसका भी शक्तिशाली होना अत्यावश्यक है अन्यथा कोई भी शत्रु जब चाहे तब उस पर आक्रमण कर सकता है। अत: राजा को सभी साधन अपनाकर अपनी सेना को साधन सम्पन्न बनाना चाहिए। मनु ने सेना के अनेक अंगों का उल्लेख किया है, ये अंग हैं- हस्ति सेना, रथ सेना, अश्व सेना, जल सेना तथा पैदल सेना।

1.4.7 मित्र

मित्र भी सप्तांग सिद्धान्त का एक प्रमुख तत्त्व है। इससे आशय यह है कि, अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में राज्य के मित्र अथवा एक राज्य के अन्य राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध। मनु सहित प्राचीन भारत के सभी राजनीतिक चिन्तकों ने इस बात पर बल दिया है कि राज्य अपनी रक्षा और अन्य उद्देश्यों की पूर्ति कर सके, इसके लिए अन्य राज्यों के साथ उसके मैत्रीपूर्ण संबंध होने चाहिए। मित्र ऐसा होना चाहिए जो कठिन परिस्थितियों में भी साथ दे सकें।

इस प्रकार मनु का सप्तांग सिद्धान्त आधुनिक राज्य के निर्माणक तत्त्वों के समान ही है। आज जहाँ जनसंख्या, निश्चित भू-भाग , सरकार एवं सम्प्रभुता को राज्य का आवश्यक तत्व माना जाता है वहीं मनु सप्तांग सिद्धान्त का प्रतिपादन कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि राज्य की बुनियाद इन तत्त्वों पर टिकी हुई है। मनुस्मृति में कहा गया है कि- ''**प्रत्येक प्रकृति को उसके पश्चात् दी गई प्रकृति की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया जाना चाहिए।**'' इसके अलावा ये सभी प्रकृतियाँ एक-दूसरे पर निर्भर हैं। मनुस्मृति के सप्तम् अध्याय में स्पष्ट कहा गया है कि- ''जिस कार्य विशेष की सिद्धि किसी भी प्रकृति विशेष से होना सम्भव होती है, उस प्रकृति को उस विशिष्ट कार्य के सन्दर्भ में श्रेष्ठतम् माना जाना चाहिए।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.5 राजा संबंधी विचार

राजा मनु के राजनीतिक विचारों का केन्द्र बिन्दु तथा राज्य–शक्ति का सर्वोच्च प्रतीक है। मनु ने अनेक देवताओं के सारभूत नित्य अंश को लेकर राजा की सृष्टि करने का जो उल्लेख किया है उससे राजा की दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त में विश्वास प्रकट होता है। चूँकि राजा में दैवी अंश व्याप्त है, अत: यह अपेक्षित है कि प्रजा उसका कभी अपमान न करें। राजा से द्वैष करने का अर्थ स्वयं का विनाश करना है। मनुस्मृति में यह भी लिखा गया है कि विभिन्न देवता राजा के शरीर में प्रविष्ट होते हैं। इस प्रकार राजा स्वयं महान् देवता बन जाता है।

राजा के गुणों एवं कर्त्तव्यों का विस्तृत वर्णन है। मनु के अनुसार राजा को चाहिए कि वह ब्राह्मणों के प्रति सदैव सेवाशील और नियमशील रहे। राजा का मुख्य कार्य प्रजा की रक्षा तथा कल्याण करना होता है। अत: इन कार्यों को भली–भांति सम्पादित करने के लिए राजा में कुछ गुणों का होना आवश्यक है। राजा को विद्वान, जितेन्द्रिय, न्यायी, विनीत तथा लोकप्रिय होना चाहिए। मनु के अनुसार, व्यावहारिक व्यक्तियों से वाणिज्य, व्यवसाय तथा धन प्राप्ति की विद्या सीखनी चाहिए।

1.5.1 राजा की उत्पत्ति का दैवी सिद्धान्त

राज्य की उत्पत्ति के संबंध में मनु दैवी सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। 'मनुस्मृति' के सातवें अध्याय में राजधर्म का प्रतिपादन करते हुए राज्य की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। इसके अनुसार सृष्टि की प्रारम्भिक अवस्था बड़ी भयंकर थी। उस समय न राज्य था और न ही राजा था और इनके अभाव में दण्ड–व्यवस्था का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। राज्य के अभाव में सर्वत्र अन्याय, अराजकता, असंतोष, अव्यवस्था का वातावरण बना हुआ था। अर्थात् मत्स्य न्याय की स्थिति व्याप्त थी। ऐसा माना जाता है कि जब सम्पूर्ण सृष्टि जलमग्न हो गई थी तब मनु ही शेष बचे थे। उन्होंने जिस संगठित समाज की संकल्पना की उसकी परिस्थापना हेतु दैवी सिद्धान्त का अनुसरण किया, जिसके माध्यम से मनु राज्य की सर्वोच्च शक्ति राजा को प्रदान करता है, जो ईश्वर का प्रतिनिधि है। राजा का विरोध ईश्वर का विरोध है, जिस प्रकार ईश्वर का विरोध करने वाला नरक में जाता है ठीक उसी प्रकार राजा के आदेश की अवहेलना करने वाला दण्ड का भागीदार होगा। इस तरह राजा का विरोध करने की छूट किसी को भी नहीं थी। प्रजा को यह प्रश्न करने का अधिकार नहीं था कि राज्य का आदेश उचित है या अनुचित ? उसे इसकी प्रामाणिकता पर सन्देह करने की अनुमति भी नहीं थी। राजा तो देव तुल्य है, चाहे वह मनुष्य रूप में शिशु ही क्यों न हो। उसकी अवज्ञा करना निषिद्ध है। उसके व्यक्तित्व में देवत्व का समावेश है– वे तत्व हैं – वायु, यम, कुबेर, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, इन्द्र और वरुण। अत: राजा सर्वशक्तिमान एवं सर्वोपरि हैं।

राजा की उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त को प्रामाणिक रूप देने के लिए मनु ने यहां तक कहा है कि राजा आठ लोकपालों के अन्न तत्त्वों से निर्मित हुआ है। जिसके फलस्वरूप उसमें देवीय गुण एवं शक्ति का समावेश हुआ है। ईश्वर ने समस्त संसार की रक्षा के लिए निर्मित वायु, यम, वरुण, सूर्य, अग्नि, इन्द्र तथा कुबेर के सर्वोत्तम अंशों के संयोग से राजा का निर्माण किया है। मनु के शब्दों में —

इन्द्रात्प्रभुत्वं तपनात्प्रतापं
क्रोधयमाद् वैश्रवणाच्चवित्तम्

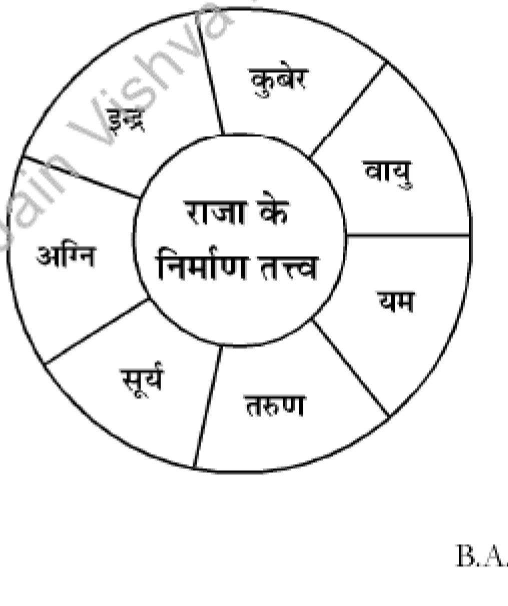

इन तत्त्वों से राजा को मिलने वाले गुण	
इन्द्र	प्रभुत्व
सूर्य	प्रताप
यम	क्रोध
कुबेर	धन
चन्द्रमा	आनन्द
अग्नि	तेज
वायु	लोगों की कर्म की तरफ प्रेरित करना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आह्लादकत्वं च निशाधिनाथाद्
आदाय राज्ञो क्रियते शरीरः ।(मनुस्मृति)

अर्थात् ''इन्द्र से प्रभुत्व, सूर्य से प्रताप, यम से क्रोध, कुबेर से धन और चन्द्रमा से आनंद प्रदान करने का गुण लेकर राजा के शरीर का निर्माण हुआ है।'' इस तरह हिन्दू धर्म और शास्त्र के अनुसार प्रत्येक तत्व देव तुल्य एवं पूज्यनीय है तो राजा की उत्पति तो इन आठ पवित्र तत्वों से हुई है, अतः राजा की पवित्रता पर प्रश्न चिह्न लगाना गलत एवं तर्कहीन है। अतः मनु के राज्य की उत्पत्ति के पैनी सिद्धान्त का प्रयोग माना जा सकता है।

1.5.2 राजा के आवश्यक गुण

मनुस्मृति में मनु द्वारा राजा के आवश्यक गुणों का उल्लेख किया गया है, जिनका निहित उद्देश्य राजा को हर दृष्टि से शक्ति सम्पन्न बनाना है। राजा का चारित्रिक स्तर भी इतना उच्च होना चाहिए, जिससे जनता उसका अनुकरण करें और कोई भी व्यक्ति उसके चरित्र पर अंगुली नहीं उठा सके। इनके अतिरिक्त मनु राजा से यह भी अपेक्षा करता है कि वह जन इच्छाओं और आकांक्षाओं पर खरा उतरे। इसके लिए भी राजा को आवश्यक गुणों से सम्पन्न होना आवश्यक है ताकि राजा निर्लिप्त से होने चाहिए भाव से जन कल्याण के कार्य सफलतापूर्वक कर सके। मनु के अनुसार राजा के आवश्यक गुण निम्नलिखित रूप से होने चाहिए –

1. राजा को चाहिए कि वह ब्राह्मणों के प्रति सदैव सेवाशील और नियमशील रहे।
2. राजा जितेन्द्रिय बने, काम व क्रोध से उत्पन्न व्यसनों का परित्याग करें।
3. राजा को शिकार, जुआ, दिवाशयन, परनिन्दा, पर स्त्री प्रेम, नाच–गाना, निष्प्रयोजन भ्रमण, चुगलखोरी, ईर्ष्या, कटुवचन, धन का अपहरण आदि दोषों और व्यसनों से बचे रहने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिए।

1.5.3 राजा के कर्त्तव्य

मनु का विचार है कि राजा को जन–इच्छाओं एवं आकांक्षाओं पर खरा उतरने के लिए हर सम्भव कोशिश करनी चाहिए और ऐसा करना उसका परम धर्म है, जिसकी अवहेलना उसकी शक्ति को कमजोर कर सकती है। अतः राजा की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए उसने विभिन्न कर्त्तव्यों का उल्लेख करता है जो कि निम्नलिखित प्रकार हैं –

1. शस्त्र, धन–धान्य, सेना, जल आदि से परिपूर्ण पर्वतीय दुर्ग से हर प्रकार से सुरक्षित रहे।
2. राजा स्वजातीय तथा रूप और गुण से सम्पन्न स्त्री से विवाह करे।
3. राजा नियम पूर्वक यज्ञ आदि कराता रहे तथा ब्राह्मणों को धन प्रदान करें।
4. प्रजा पर अनावश्यक कर भार न लगाए।
5. विभिन्न राजकीय कार्यों के लिए विभिन्न अध्यक्षों को नियुक्त करें।
6. राजा रणभूमि में इंचमात्र शिथिलता न दिखाकर सम्पूर्ण शक्ति से युद्ध करे ताकि मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग के दरवाजे उसके लिए खुले रहें।
7. राजा अपने राज्य विस्तार की हर संभव कोशिश करे।
8. अपने सैन्य बल और पौरुष का राजा सदैव प्रदर्शन करता रहे।
9. गोपनीय बातों और राजकार्यों को सदैव गुप्त रखें तथा शत्रुओं की कमजोरियों को जानने की सदैव लगन राजा में रहें।
10. अपने मंत्रियों के साथ राजा विनय पूर्वक व्यवहार करे और गुप्तता तथा शक्ति को सक्रिय रखे।
11. राजा लोककल्याण के अपने दायित्व के निर्वाहन हेतु हर सम्भव प्रयास दृढ़ता पूर्वक करे।
12. राज्य की आर्थिक उन्नति को सुनिश्चित करे तथा राजा प्रजा की रक्षा करे और कर संग्रह करे। मनु राजा को परामर्श देता है कि वह प्रजा पर करों का अनावश्यक बोझ न डाले।
13. राजा व्यक्तियों को स्वधर्म का पालन करने के लिए बाध्य करें।
14. कूटनीति पूर्वक परराष्ट्र संबंधों को संचालन करें जिसका एक मात्र आधार राष्ट्रीय हित होना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि राजा सर्वयुग सम्पन्न हो, तभी वह अपनी भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वाह कर सकेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.5.4 क्या मनु का राजा निरंकुश है

उपर्युक्त विवेचना से ऐसा प्रतीत होता है कि मनु द्वारा राजा पर नियन्त्रण की कोई व्यवस्था नहीं की गई है लेकिन ऐसा नहीं है मनुस्मृति में अनेक ऐसे प्रावधान हैं, जो राजा की निरंकुशता पर अंकुश लगा सकते हैं जो इस प्रकार हैं–

1.5.4.1 धर्म का नियन्त्रण

मनु राजा को धर्म के अधीन रखता है। वह इस बात पर बल देता है कि राजा सदैव प्रजा के कल्याण तथा उसकी रक्षा करे। मनु शासक पर धार्मिक नियन्त्रणों की व्यवस्था करके उसकी स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाते हैं। इस प्रकार मनु राजा पर नैतिक नियन्त्रण के द्वारा उसे सदैव जन कल्याण के लिए प्रेरित करते हैं। मनु राजा के चार पुरुषार्थ–अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं तथा उससे अपेक्षा करते हैं कि वह सदैव 'राजधर्म' का पालन करते हुए जनता को पुरुषार्थ सिद्धि के लिए प्रेरित करता रहेगा।

1.5.4.2 संस्थागत नियन्त्रण

मनु इस बात पर बल देता है कि राजा अपने प्रशासनिक कार्यों में सहयोग एवं परामर्श के लिए मंत्रियों की नियुक्ति करें और उसके लिए मंत्रियों एवं अन्य शासकीय अभिकरणों से मंत्रणा प्राप्त करना आवश्यक है।

1.5.4.3 राजा के लिए दण्ड विधान

मनुस्मृति के नवम् अध्याय में लिखा गया है कि दण्ड ही समस्त प्रजा पर शासन करता है। जब प्रजा सोती है, तो दण्ड जागता है। अत: दण्ड को न्याय व्यवस्था का अभिन्न अंग मानते हुए मनु ने शासक एवं शासन को इनके अधीन माना है। दण्ड का प्रयोग राजा स्वविवेक से करता है और ऐसा न करने पर वह स्वयं भी नष्ट हो जाता है। इस प्रकार राजा स्वयं दण्ड का भागी बनता है।

1.5.4.4 राजा के व्यक्तिगत गुण और दिनचर्या

मनुस्मृति में मनु राजा को हर कसौटी पर खरा उतारने के लिए तरीके बताता है जो कि उसको दिशा भटकने से रोकते हैं। मनु राजा को ये स्पष्ट निर्देश देता है कि वह ऐसे कार्य न करें जिनसे जन–हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो।

इस प्रकार मनु राजा को सर्वशक्तिमान, सार्वभौम एवं सर्वोच्च मानते हुए भी उसकी निरंकुशता को कभी भी वह स्वीकार नहीं करता है। उसका मत है कि राजा का मुख्य ध्येय जनकल्याण के कार्यों को सम्पादित करना है। राजा अपनी प्रजा के साथ सन्तान के तुल्य व्यवहार करें और उनके कष्टों के निवारण हेतु हर सम्भव प्रयास करें। इस तरह से मनु का राजा सर्वोच्च तथा शक्तिशाली होते हुए भी लोक–कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध है।

1.6 मन्त्रिपरिषद्

मनु का मत है कि प्रशासनिक कार्यों की अधिकता के चलते राजा अपने दायित्वों का निर्वाह भली–भांति नहीं कर सकता। अत: विभिन्न कार्यों में सहयोग के लिए योग्य एवं अनुभवी मंत्रियों की आवश्यकता होती है जो राजा को समय–समय पर विभिन्न विषयों पर सलाह देते हैं और वह इनके विचारों को सम्मान देते हुए ठोस नीतिगत निर्णय लेता है। इसके अलावा मंत्रियों के अभाव में अत्यधिक कार्यभार की आड़ में राजा स्वेच्छाचारी निर्णय ले सकता है जिससे उसके निरंकुश बनने का भय बना रहता है। इस प्रकार मनु व्यापक प्रशासनिक योजना एवं आगे की रणनीति के मद्देनजर मंत्रिपरिषद की रचना प्रस्तुत करता है जिससे अपनाकर राजा और प्रजा दोनों ही लाभान्वित हो सकते हैं।

मनु के अनुसार राजनीतिक संगठन में 'मंत्रिपरिषद' का विशेष महत्त्व है। मनु सम्पूर्ण सामाजिक संगठन का आधार वर्ण व्यवस्था को मानते है जिसके अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र – इन चारों वर्णों का समावेश है। ब्राह्मण का स्थान सर्वोच्च है, क्षत्रिय का दूसरा, वैश्य का तीसरा और शुद्र का स्थान निम्नतम है। ब्राह्मण बौद्धिक शक्ति के, क्षत्रिय सैन्य शक्ति के और वैश्य आर्थिक शक्ति के तथा शुद्रो का कार्य सबकी सेवा करना। मनु राजपद के लिए क्षत्रिय को अनुकूल मानता है क्योंकि दण्ड के प्रयोग की योग्यता उससे बढ़कर किसी में नहीं है। मनु ब्राह्मणों की बौद्धिक एवं तर्क शक्ति को ध्यान में रखते हुए उन्हें अमात्य (मंत्री) पद पर नियुक्ति देने की बात करता है, जो समय–समय पर राजा को सलाह दे सकें।

1.6.1 मंत्रियों की संख्या

जहां तक मंत्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या का प्रश्न है, मनु साधारणतया 7–8 मंत्री रखने का समर्थन करते, परन्तु वे इस बारे में कोई ठोस नियम निर्धारित नहीं करते हैं। महाभारत में चारों वर्णों में से कुल मिलाकर 37 सदस्य मंत्रिपरिषद् में सम्मिलित करने का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विधान है तथा शुक्र नीतिसार में 10 मंत्रियों का उल्लेख मिलता है। मनु का विचार है कि राज्य-कार्य की सुविधा की दृष्टि से जितने मंत्रियों की आवश्यकता हो, राजा उन्हें रख सकता है।

1.6.2 मंत्रियों की योग्यताएँ

राज्य के विभिन्न कार्यों को सुचारू रूप से संचालित करने के उद्देश्य से विभिन्न विभागों के लिए उपयुक्त मंत्रियों की नियुक्ति करनी चाहिए। दूसरें शब्दों में, मंत्रिपरिषद् के सदस्यों में प्रत्येक मंत्री की व्यक्तिगत योग्यता एवं विशेषता के आधार पर उसे उपयुक्त विभाग सौंपना चाहिए। उदाहरण के लिए मंत्रिपरिषद के शूर, दक्ष एवं कुलीन सदस्य को अर्थ विभाग का कार्य सौंपा जाना चाहिए। शुद्ध आचरण वाले सदस्यों को रत्नों की खान का विभाग तथा भीरु सदस्यों को अन्तर्निवेश (भोजन, शयन, अन्तपुर) के विभाग सौंपने चाहिए। दण्ड विभाग को अमात्य तथा कोष को राजा अपने ही अधीन रखे।

मनु इस बात पर भी विशेष बल देते हैं कि मंत्री उसी व्यक्ति को नियुक्त किया जाए जिनके पूर्वज या गुरुजन पहले मंत्री रह चुके हों, मंत्रियों को शास्त्रों का सम्यक ज्ञान होना चाहिए। मंत्रिपरिषद के सदस्यों को धर्मशास्त्र, कामशास्त्र और अर्थशास्त्र तीनों में पारंगत होना चाहिए। इस तरह से मनु के मन्त्रियों के लिए विशेषज्ञता का होना आवश्यक है। मनु के मन्त्रिपरिषद् की शक्तियों तथा कार्यों का उल्लेख निम्नलिखित रूप से किया है —

1.6.3 मंत्रिपरिषद् की शक्तियाँ एवं कार्य

1. मंत्रिपरिषद् के सदस्य अपने-अपने संबंधित विभाग के मुखिया या प्रधान होते हैं।
2. मंत्री समय-समय पर राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों एवं संकट काल की अवस्था में राजा को मंत्रणा देंगे।
3. किसी महत्त्वपूर्ण रणनीति के उठाए जाने वाले कदम के सन्दर्भ में निर्णय लेने में सहयोग देते हैं।
4. मंत्री राज्य कर्मचारियों का निरीक्षण कर उन्हें आवश्यक निर्देश दे सकते हैं।
5. मंत्रियों का दायित्व है कि वे प्रजा को सही परामर्श दे और प्रजा के कष्टों के निवारण हेतु प्रयास करें।
6. मंत्रियों को चाहिए कि वे राजा की प्रत्येक गतिविधि पर नजर रखें और उसे निरंकुश होने से रोके।
7. मंत्रियों का यह महत्त्वपूर्ण कार्य है कि वह पर राष्ट्र नीति को इस प्रकार से लागू करें जिससे राज्य की साख बढ़ सके और शत्रु राज्य, राज्य की प्रतिष्ठा के सामने नतमस्तक हो जाए तथा बिना युद्ध किये राज्य के वर्चस्व को स्वीकार कर ले। मनु द्वारा प्रतिपादित, मन्त्रिपरिषद् की शक्तियों तथा कार्य आधुनिक मन्त्रिपरिषद् की शक्तियों तथा कार्यों के अनुरुप ही है।

1.6.4 मंत्रिपरिषद की कार्य प्रणाली

मनु के मन्त्रिपरिषद् के कार्यों का उल्लेख करते हुए मंत्रियों से अलग-अलग विचार करने और सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद के साथ सामूहिक रूप से विचार-विमर्श करने, दोनों ही विधियों का उल्लेख किया गया है। इसके लिए परिस्थितियों का ध्यान रखना आवश्यक हैं।

1.7 प्रशासनिक व्यवस्था

किसी भी साम्राज्य की सफलता या असफलता काफी हद तक प्रशासनिक व्यवस्था पर निर्भर करती है। यदि प्रशासन गतिशील, व्यवस्थित एवं संगठित है तो उस साम्राज्य की जड़े सुदृढ़ हो जाएगी। मनु द्वारा भी मनुस्मृति में प्रशासनिक तंत्र का व्यापक रूप से उल्लेख किया गया। मनु का विचार है कि राजा दो-तीन, पांच और सौ गांवों के बीच अपना प्रशासनिक ढ़ाँचा स्थापित करें तथा इन क्षेत्रों में योग्य कर्मचारियों को नियुक्त करे। इन कर्मचारियों द्वारा कर वसूल करने, अपने क्षेत्र में होने वाली दैनिक घटनाओं, अपराधों की रिपोर्ट ऊपर के अधिकारियों को देने का कार्य सम्पादित किया जाये। राजा को दौरे करके तथा गुप्तचरों द्वारा अधिकारियों के कार्यों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। मनु स्थानीय संस्थाओं के महत्त्व को स्वीकार करते है और कहते है कि स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर अतिशीघ्र हो सकेगा जिसके परिणाम स्वरूप प्रशासन एवं राजा दोनों के प्रति जनता में विश्वास की भावना को बल मिलेगा।

1.8 दण्ड व्यवस्था

भारत के प्राचीन राजनीतिक चिन्तन में दण्ड शब्द का प्रयोग, राज्य की सम्प्रभुता या सर्वोच्च शक्ति के रूप में किया गया है। मनु के अनुसार दण्ड राजशक्ति का निर्णायक तत्त्व होता है, जिसकी धुरी पर सारे राज्य का संचालन होता है। राज्य के अस्तित्व को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बनाये रखने के लिए दण्ड शक्ति को महत्त्व प्रदान किया है। इसके अभाव में राज्य में शांति व्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती। दण्ड व्यवस्था राज्य के सुशासन का प्रतीक है। मनुस्मृति के सातवें एवं आठवें अध्याय में इसका वर्णन किया गया है। दण्ड की सर्वोच्चता के मनु द्वारा अनेक कारण बताये गये हैं – जो इस प्रकार है–

1. दण्ड सभी मनुष्य का रक्षक है।
2. यह सर्वोच्च है।
3. सामाजिक व्यवस्था की रक्षा और देखभाल करता है।
4. दण्ड राज्य की सम्पत्ति की रक्षा तथा वृद्धि के लिए अनिवार्य है।

मनु ने राजा को परामर्श दिया है कि दण्ड का प्रयोग सावधानीपूर्वक करें। वह इस बात का ध्यान रखें कि दण्ड शक्ति का शिकार कोई निरपराध व्यक्ति न हो जाए। इसके लिए दण्ड की शक्ति का प्रयोग करने वाले अधिकारियों पर कठोर नियन्त्रण रखना चाहिए। ताकि दण्ड शक्ति का दुरुपयोग न हो।

1.9 कानून व न्याय व्यवस्था

मनु ने सुझाव दिया है कि कानून निर्माण का कार्य व्यवस्थापिका करे और न्यायपालिका न्याय–व्यवस्था को व्यवहार में लागू करे। व्यवहार शब्द का अर्थ है–सन्देह का निवारण। मनु के अनुसार विविध प्रसंग विवाद का कारण बनते हैं। जैसे– कर्ज, धरोहर संबंधी, कर्मचारियों को वेतन न मिलना, गाली–गलोच या चोरी, स्त्री–पुरुषों के अनैतिक संबंध, जुआ खेलना आदि। राजा का दायित्व है कि वह न्याय करें।

1.9.1 न्यायालयों का गठन

मनु द्वारा न्यायालय को '**धर्म सभा**' कहा गया है। राजा धर्म सभा का अध्यक्ष होता है। परन्तु राजा अपने कार्य धर्म–सभा के सदस्यों अर्थात् मंत्रियों के परामर्श से करता है। धर्मसभा के अलावा सहायक एवं छोटे न्यायालय भी होते हैं। धर्म सभा के सदस्यों के भी विविध रूप होते हैं।

1.9.2 न्यायाधीशों की योग्यताएँ

मनु ने न्यायाधीशों के लिए विविध योग्यताएं निर्धारित की है। उसके अनुसार न्यायाधीश सदाचारी, विद्वान, वेदों के ज्ञाता हो और उन्हें निष्पक्ष होकर न्याय करना चाहिए। शूद्र न्यायाधीश नहीं बन सकते। मनु स्मृति में प्रमाणों को विशिष्ट महत्त्व दिया है। प्रमाण दो प्रकार हैं–मानुष व दित्य प्रमाण। मानुष प्रमाण तीन प्रकार के हैं–लिखित, युक्ति व साक्षी। इस प्रकार न्यायिक–प्रक्रिया में प्रमाणों को देखने के बाद न्यायाधीश को निष्पक्ष निर्णय करना चाहिए। साक्ष्य के पूर्व शपथ का विधान रखा जाना चाहिए। स्त्रियों के लिए स्त्रियों का साक्ष्य लेना चाहिए।

1.10 राजकोष और अर्थव्यवस्था संबंधी विचार

मनु के मतानुसार राजकोष, राज्य के प्रशासनिक क्रियाकलापों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसीलिए प्रत्येक राजा द्वारा अपने राज्य की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने की हर संभव कोशिश को जाती है। आर्थिक दृष्टि से कमजोर राज्य को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। मनु मनुस्मृति में राज्य की आय के प्रमुख साधन हैं– बलि (विभिन्न प्रकार के कर), शुल्क (वस्तुओं की चुंगी से प्राप्त कर), दण्डकर (जुर्माना)। इनमें प्रथम कर व्यवस्था ही महत्वपूर्ण साधन है।

1.10.1 मनु का राजनीतिक अर्थशास्त्र

मनु अपने राजकोष संबंधी विचारों में राजनीति एवं अर्थशास्त्र के अटूट सम्बन्ध को सिद्ध करने का प्रयास करते है। उसके अनुसार कर भार की मात्रा आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। अत्यधिक कर जनता में असन्तोष की भावना बढ़ा सकते है और कर की कम मात्रा राजा तथा राज्य दोनों के लिए अहितकारी सिद्ध होती है। मनुस्मृति में करारोपण के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त का विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है। उनका मत है कि कर इस प्रकार वसुल किए जाने चाहिए जिससे गरीब जनता पर कर का भार कम पड़े और समृद्धिशाली लोगों पर कर भार अधिक पड़े।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.10.2 कर सिद्धान्त

मनु कहते हैं कि– ''कर न लेने से राजा के और अत्यधिक कर लेने से प्रजा के जीवन का अन्त हो जाता है।'' अत: राजा के द्वारा प्रजा से कर वसूल करने का कार्य निर्धारण सिद्धान्तों के आधार पर किया जाना चाहिए। उसके अनुसार ये सिद्धान्त निम्नलिखित रूप से हैं–

1.10.2.1 प्रजा रक्षण का सिद्धान्त :– मनु के अनुसार कर लेने का उद्देश्य और आधार प्रजा का रक्षण है। अत: राजा को जनता से कर लेने के बदले उसके जीवन व संपत्ति की रक्षा करनी चाहिए। इसमें यह भावना निहित है कि यदि राजा अपने इस दायित्व को पूरा नहीं कर सकता है तो उसे कर लेने का भी कोई अधिकार नहीं है।

1.10.2.2 लाभ पर कर का सिद्धान्त :– मनु का मत है कि किसी वस्तु या व्यापार पर हुए व्यय के पश्चात् जो विशुद्ध लाभ बचता है, उस पर ही कर लगाना चाहिए।

1.10.2.3 राष्ट्रीय योजना सिद्धान्त :– राजा के लिए आवश्यक है कि वह राष्ट्र को सम्पन्न बनाने हेतु राष्ट्रीय योजनाओं को दृष्टि में रखते हुए ही कर लगाए।

1.10.2.4 व्यथा मुक्ति का सिद्धान्त :– राजा द्वारा प्रजा से कर इस प्रकार वसूल किये जाने चाहिए कि कर देने में प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट या अभाव न हो। मनु के अनसार– ''**जिस प्रकार जोंक, बछड़ा और मधुमक्खी थोड़े-थोड़े अपने-अपने खाद्य क्रमश: रक्त, दूध और मधु ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार राजा को प्रजा से थोड़ा-थोड़ा वार्षिक कर वसूल करना चाहिए।**''

1.10.2.5 अधिक कर निषेध सिद्धान्त :– मनु इस बात के विरोधी हैं कि राजा प्रजा पर उसकी सामर्थ्य के बाहर कर लगावे। उनके अनुसार– ''**जो राजा मूर्खतावंश अपने अधीन प्रजाजन से अधिक कर वसूल करता है, वह स्वयं अपना और अपने बन्धु-बाधवों का ही नाश करता है।**''

'मनुस्मृति' में करों की दर के विषय में कुछ बातें कही गई हैं। व्यापारियों से कर उनके सभी प्रकार के लाभ व व्यय को देखकर लिया जाना चाहिए। राजा को कर के रूप में पशु तथा स्वर्ण का पांचवा भाग और भूमि की श्रेष्ठता, उपजाऊपन एवं परिश्रम, आदि का विचार कर धान्य का छठा, आठवाँ या बारहवाँ भाग ग्रहण करना चाहिए। वृक्ष, मांस, घी, गन्ध, औषधि, कपड़ा, मिट्टी के बर्तन और पत्थर की बनी सभी वस्तुओं का छठा भाग कर के रूप में लिया जाना चाहिए। कारीगर, बढ़ई, मजदूर आदि से राजा प्रतिमास एकदिन काम कराते। राजा द्वारा वृद्ध, अपंग, अंधे व्यक्तियों से कर नहीं लना चाहिए। मनु कहता है कि राज ब्राह्मणों पर किसी भी प्रकार का कर न लगाए। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मनु कर सम्बन्धी विचार व्यावहारिक, तर्कसंगत तथा समयानुकूल है।

1.11 परराष्ट्र नीति

परराष्ट्र नीति प्रत्येक राज्य की अनिवार्य आवश्यकता है, जिसके बिना या जिसकी प्रभावकता के बिना राज्य अपना अस्तित्व लम्बे समय तक कायम नहीं कर सकता क्योंकि दूसरे राज्यों के साथ सम्बन्धों से वह अपने अनेक हितों की पूर्ति करता है। इसीलिए परराष्ट्र नीति में यह कहा जाता है कि इसमें किसी राज्य का स्थाई शत्रु या स्थाई मित्र नहीं होता। स्थाई तो होता है उसके राज्य (राष्ट्रीय) हित राष्ट्रीय हितों की बलवेदी पर वह कोई समझौता नहीं कर सकता। राज्य का आन्तरिक दृष्टि के साथ-साथ बाहरी दृष्टि से शक्ति सम्पन्न होना बहुत आवश्यक है। इसके लिए राज्य को अपने मित्र राज्य सहित अन्य राज्यों के साथ संबंध सुधारने का प्रयास करना चाहिए। राजा अपनी कूटनीति का इस तरह से कार्यान्वियन करे कि शत्रु राजा भी बिना युद्ध किये उसके प्रभुत्व को स्वीकार कर ले और मित्र राजा भी उसके साथ प्रगाढ़ता स्थापित करने का प्रयास करने लगे। मनु ने परराष्ट्र संबंधों पर विचार करते हुए दो प्रमुख सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया हैं। ये सिद्धान्त हैं– 1. मण्डल सिद्धान्त और 2. षाड्गुण्य नीति।

1.11.1 मण्डल सिद्धान्त

मनु इस बात पर बल देता है कि राजा को महत्त्वाकांक्षी होना चाहिए तथा उसे अपने राज्य के विस्तार हेतु हर संभव कोशिश करनी चाहिए। इस दृष्टि से राजा को मण्डल सिद्धान्त के आधार पर दूसरे राज्यों के साथ संबंध स्थापित करने चाहिए। मण्डल सिद्धान्त का केन्द्र बिन्दू विजिगीषु राजा (विजय प्राप्ति की इच्छा रखने वाला राजा) होता है। विजिगीषु राजा को केन्द्र मानते हुए 12 राज्यों के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

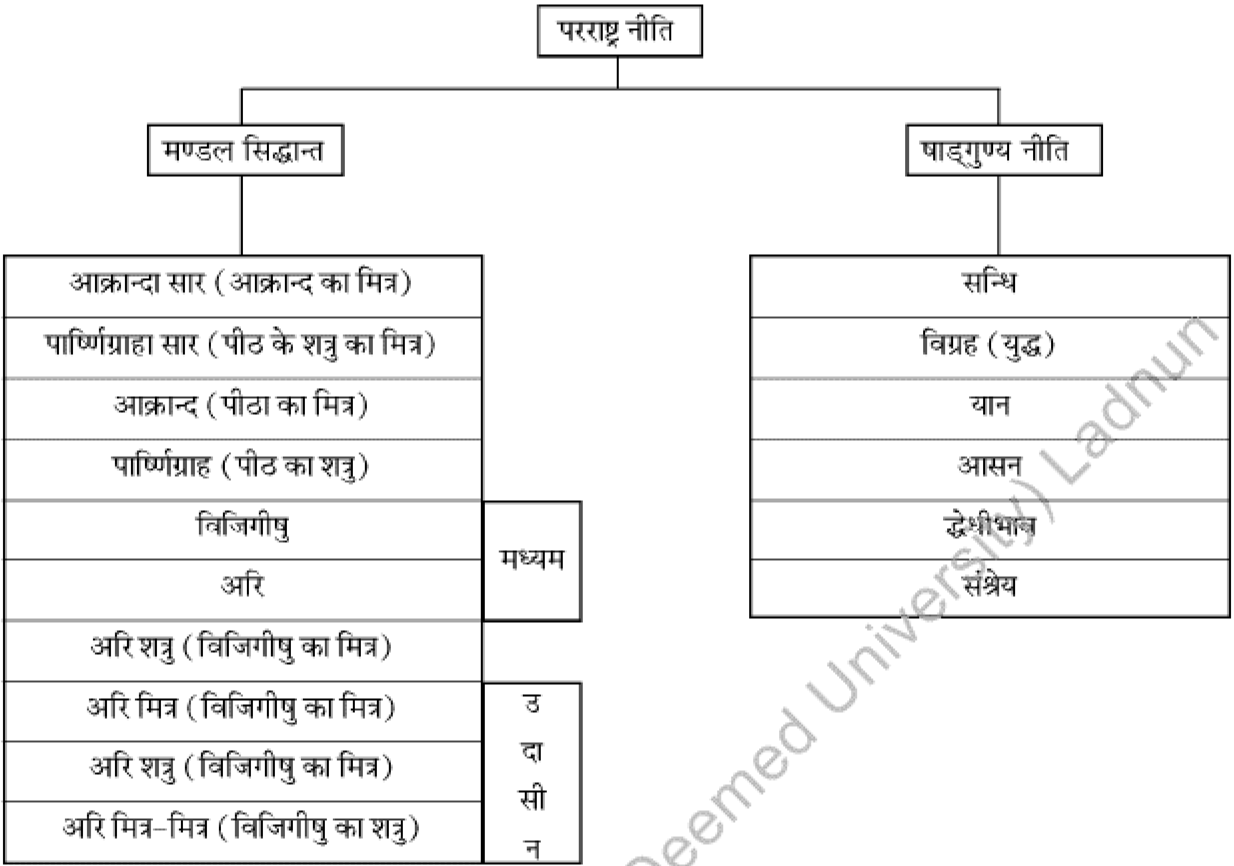

मण्डल सिद्धान्त की रचना की गई है। जिसमे यह बताया गया है कि विजिगीषु राज्य की सीमा के आधार पर स्थित राज्यों स्थिति एवं सामर्थ्य के अनुसार उनके साथ नीति का संचालन करना चाहिए। यदि कोई इसकी अनदेखी करता है तो उसे सम्भावित दुष्परिणामों को स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

मनु की यह धारणा है कि एक राजा का पड़ौसी राज्य स्वाभाविक रूप से उसका शत्रु राज्य होता है। दूसरी मुख्य बात यह है कि 'मित्र का मित्र' और 'शत्रु का शत्रु' तो मित्र होता ही है लेकिन 'शत्रु का मित्र' शत्रु होता है। विजिगीषु राजा की सीमा से दूर किन्तु उसके पड़ौसी राज्य से मिला हुआ राज्य 'अरिमित्र' होता है। इस तरह यह क्रम चलता रहता है। ये पाँच राज्य तो विजिगीषु के सामने वाली या आगे की दिशा मे होते हैं। इसी प्रकार कुछ राज्य उसके पीछे की दिशा में होते हैं। विजिगीषु के राज्य की पीछे की सीमा से लगा हुआ राज्य पार्ष्णिग्राह (पीछे का शत्रु) और पार्ष्णिग्रहा की सीमा से लगा हुआ राज्य 'आक्रान्दा' (पीठ का मित्र) इसके आगे के दो राज्य पीछे के शत्रु का मित्र और आक्रान्दा सार पीछे के मित्र का मित्र है। इस प्रकार पीठ के पीछे चार राज्य मण्डल में आते हैं। इन दस राज्यों के अतिरिक्त दो अन्य राज्य हैं- मध्यम तथा उदासीन। मध्यम ऐसा राज्य होता है, जो विजिगीषु तथा अरि की सीमा पर स्थित होता है, चाहे वे परस्पर मित्र हो या शत्रु हो, सहायता करने में समर्थ होता है और आवश्यक होने पर दोनों का अलग-अलग मुकाबला कर सकता है। उदासीन राज्य विजिगीषु, अरि और मध्यम राज्य की सीमा से परे होता है। यह बहुत शक्तिशाली होता है। उपर्युक्त तीनों के मिलने की दशा में वह उनकी सहायता कर सकता है और न मिलने पर मुकाबला भी कर सकता है।

1.11.2 षाड्गुण्य नीति

मण्डल सिद्धान्त के माध्यम से सुनिश्चित हो जाता है कि कौनसा राज्य उसके प्रति किस प्रकार का दृष्टिकोण रखता है ? उसके पश्चात् राज्य हितों में वृद्धि करने के लिए षाड्गुण्य नीतिका प्रयोग करना चाहिए।

षाड्गुण्य नीति का आशय है, छः लक्षणों वाली नीति। इसके अन्तर्गत यह बतलाया गया है कि राज्य द्वारा अलग-अलग परिस्थितियों में दूसरे राज्यों के प्रति किस प्रकार की नीति अपनायी जानी चाहिए। षाड्गुण्य नीति वैदेशिक सम्बन्धों के क्षेत्र में विवेक सम्मत विकल्पों का विवेचन प्रस्तुत करती है। मनु ने राजा को परामर्श दिया है कि विवेक, आवश्यकता एवं परिस्थितियों को ध्यान में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रखते हुए इनमें से कोई भी एक लक्षण को अपनाए। राजा का भी प्रमुख लक्षण यही होता है कि हर प्रकार की नीति अपनाकर अपने राज्य के हितों में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि करे और ऐसा कोई भी कदम न उठाए जिससे राज्य के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो। षाड्गुण्य नीति का विवरण निम्नलिखित रूप से है–

1.11.2.1 सन्धि :– मनु के मतानुसार यदि राजा यह अनुभव करे कि इस राज्य के साथ मित्रता का संबंध स्थापित करने से तत्काल या भविष्य में लाभ हो सकता है तो उसे संबंधित राज्य के साथ मैत्री पूर्ण संबंध स्थापित करना चाहिए। इस मैत्री संबंधों को मनु सन्धि कहता है। सन्धि दो प्रकार की होती है– 1. समान शक्ति के बीच संधि और 2. असमान शक्ति के बीच संधि।

1.11.2.2 विग्रह (युद्ध) :– विग्रह का अर्थ है युद्ध। यदि राजा को किसी अन्य राज्य पर विजय प्राप्त करनी है या प्रताड़ित करना है या उसके पूर्ववर्ती कारनामों का सबक सिखाने के लिए विग्रह का सहारा लेना चाहिए। मनु राजा को परामर्श देता है कि जब अन्य सभी विकल्प असफल हो जाए और परिस्थितियाँ उसके अनुकूल है तो उसे युद्ध का सहारा तत्काल प्रभाव से लेना चाहिए।

1.11.2.3 यान :– एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य पर विजय के लक्षण को ध्यान में रखते हुए किये गये आक्रमण को यान कहते हैं।

1.11.2.4 आसन :– आक्रमण के स्थान पर अवसर की प्रतीक्षा में उपेक्षा धारण करना आसन कहलाता है। इसे अपनाकर राजा अपनी शक्ति को बढ़ा सकता है।

1.11.2.5 द्वैधीभाव :– मनु राजा को परामर्श देता है कि राजा अपने शत्रु को कभी भी खुद से कमजोर न समझे। वह अपनी सेना को दो भागों में बांट ले। एक भाग सेनापति के अधीन जो शत्रु पक्ष को रोकने का कार्य करेगी और दूसरा भाग राजा के अधीन रहकर शक्ति में वृद्धि करें।

1.11.2.6 संश्रय :– आपातकाल में जब एक राजा किसी शक्तिशाली राजा की शरण प्राप्त करता है तो उसे संश्रय कहते हैं।

1.12 मनु का समाज दर्शन

मनु को केवल उनके राजदर्शन के आधार पर ही नहीं जाना जाता है, अपितु समाज–दर्शन से भी उनके विचार महत्त्वपूर्ण हैं। जहाँ मनु ने राजदर्शन के माध्यम से राजाओं के लिए निर्देश दिये और राज्य के राजनीतिक क्रियाकलापों के संबंध में अवगत करवाया है कि किस प्रकार से राज्य अपना वर्चस्व स्थापित कर सकता है। वहीं समाज दर्शन के माध्यम से मनु ने संगठित समाज की परिकल्पना प्रस्तुत की है, जिसमें सामाजिक संगठन के सिद्धान्तों, विभिन्न वर्णो के कर्त्तव्यों तथा सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में राज्य के दायित्वों, आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। मनु स्मृति में उल्लेखित सामाजिक व्यवस्था के दो प्रमुख अंग हैं — 1. वर्ण व्यवस्था और 2. आश्रम व्यवस्था।

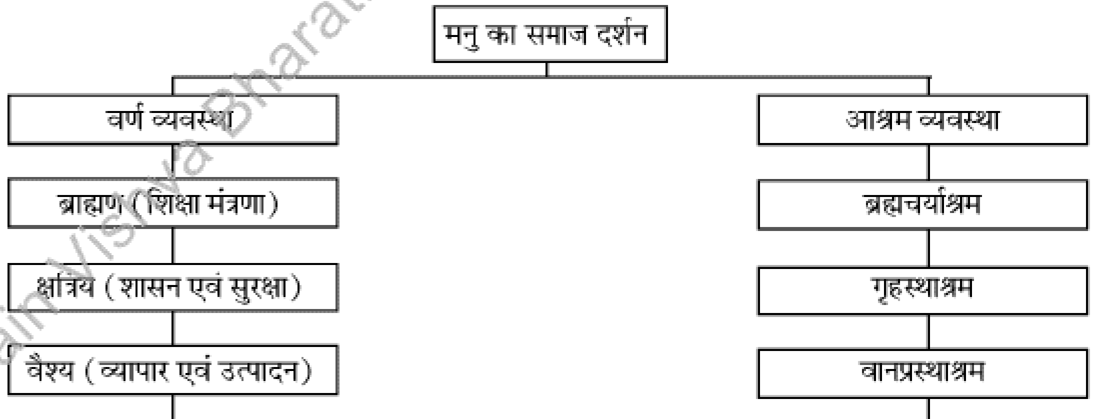

- ❖ वर्ण व्यवस्था को पाश्चात्य राजनीति विचारक प्लेटो न्याय सिद्धान्त के रूप में अपनाता है।
- ❖ समाजदर्शन का मूल उद्देश्य संगठित समाज–व्यवस्था की स्थापना करना है।
- ❖ इसमें प्रत्येक व्यक्ति की योग्यताएँ व कार्य के अनुसार दायित्व सौंपे जाते थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.12.1 वर्ण व्यवस्था

मनु धर्म और कार्य के आधार पर समाज को चार वर्णों- 1. ब्राह्मण 2. क्षत्रिय 3. वैश्य 4. शुद्र में विभाजित करता है।

1.12.1.1 ब्राह्मण :- मनुस्मृति में ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इसीलिए मनु द्वारा प्रतिपादित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक दर्शन का केन्द्र बिन्दु ब्राह्मणों को ही बताया गया है। उसके मतानुसार वे वेदों को धारण करने वाले हैं। अत: ब्राह्मणों को सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी माना गया है। मनुस्मृति में कहा गया है कि- ''ब्राह्मण धर्म की रक्षा करने की अपनी क्षमता के कारण ही सर्वश्रेष्ठ हैं।'' ब्राह्मणों के कर्त्तव्यों के बारे में मनुस्मृति में कहा गया है कि इन्द्रियों पर नियन्त्रण, पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, दान देना और लेना आदि। मनु ने इस वर्ग के ज्ञान का भण्डार बताया है।

1.12.1.2 क्षत्रिय :- क्षत्रियों का प्रमुख कार्य शासन का संचालन करना, प्रजा की रक्षा करना, यज्ञ करना, दान देना, ऋण देना, अध्ययन करना आदि है। ब्रह्म की भुजाओं से उत्पन्न होने के कारण इन्हें शक्ति से संबंधित कार्य सौंपे गये। मनु ने इसे शक्ति का प्रतीक बताया है।

1.12.1.3 वैश्य :- मनु ने आर्थिक व्यवस्था के संचालन एवं आर्थिक विकास का उत्तरदायित्व वैश्य को सौंपा है। उनके प्रमुख दायित्वों में व्यापार करना, पशुओं की रक्षा, पशुपालन, यज्ञ करना, अध्ययन करना, ब्याज लेना, कृषि कार्य, उत्पादन संबंधी कार्य आदि शामिल हैं।

1.12.1.4 शुद्र :- मनु ने अपनी सामाजिक व्यवस्था में सबसे निम्नतम स्थान शुद्रों को दिया है। मनुस्मृति में बताया गया है कि शुद्रों का प्रमुख कार्य अन्य तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) की सेवा करना है। इन्हें वेदों के अध्ययन तथा शिक्षा प्राप्ति से वंचित रखा। उसके इन विचारों के कारण ही वर्तमान में उसकी कड़ी आलोचना की जाती है। उसके विचारों को असामयिक तथा अप्रासंगिक बताया जाता है। दलित वर्ग मनुस्मृति की होली भी जलाते हैं।

1.12.2 आश्रम व्यवस्था

मनु के अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करना है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए मानव जीवन को विभिन्न भागों में विभाजित किया गया। विभाजन में व्यक्ति की आयु के अनुसार आश्रम और दायित्वों का निर्धारण किया गया है। मनु ने मनुष्य की आयु 100 वर्ष मानते हुए 100 वर्ष की आयु को चार आश्रमों में बांटा है। मनु की अवस्था के अनुसार ब्रह्मचर्याश्रम (25 वर्ष की आयु तक), गृहस्थाश्रम (50 वर्ष की आयु तक), वानप्रस्थाश्रम (75 वर्ष की आयु तक), सन्यासश्रम (100 वर्ष की आयु तक)

1.12.2.1 ब्रह्मचर्याश्रम :-मनु ने बताया है कि इस काल में व्यक्ति ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करें, वेदों का अध्ययन करें, आलस्य छोड़े, दूसरों की निन्दा छोड़े, मिथ्या भाषण से बचे, गुरु की आज्ञा का पालन करें, तथा सेवा भावी बने आदि।

1.12.2.2 गृहस्थाश्रम :- गृहस्थ जीवन में परिवार के पालन-पोषण को महत्ता दी है। एक गृहस्थ सभी गुणों से सम्पन्न कन्या से विवाह करने के पश्चात् गृहस्थ-आश्रम में निवास करें।

1.12.2.3 वानप्रस्थाश्रम :- इस अवस्था में व्यक्ति सम्पत्ति, गृह आदि मोह माया के बंधन को त्याग कर अपनी पत्नी सहित या अकेले वानप्रस्थी बने। इसमें इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना आवश्यक हैं।

1.12.2.4 सन्यासाश्रम :- मनु के अनुसार इस आश्रम में प्रवेश करने से पहले मनुष्य को सभी ऋणों अर्थात् देव ऋण, ऋषि ऋण तथा पितृ ऋण से अवश्य मुक्त होना चाहिए। मानव जीवन का यह अन्तिम आश्रम है। व्यक्ति के जीवन का उच्चतम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। यह लक्ष्य आश्रम व्यवस्था के माध्यम से प्राप्त हो सकता है।

1.13 सारांश

इस प्रकार मनु प्राचीन भारतीय राजनीतिक और सामाजिक चिन्तन के पितामह थे। आज के आधुनिक उदार और वैज्ञानिक युग में उनके शूद्र विचार कितने ही अप्रसांगिक क्यों न हो पर यह तथ्य सत्य है कि सही मायने में प्रथम राजनीतिक विचारक मनु ही थे। मनु ने अपने विचारों के माध्यम से मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को छूने का प्रयास किया। मनु प्रतिपादित विचार तत्कालीन शासकों के लिए मार्गदर्शन करने वाला था, साथ में लम्बे समय तक भारतीय समाज पर इसका प्रभाव देखा गया। उनके इन विचारों के कारण ही उन्हें भारत के प्रथम राजशास्त्री की संज्ञा दी जाती है। आधुनिक समय में भी उनके राज्य सम्बन्धी विचारों का अपना महत्त्व निर्विवाद है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. लक्ष्मीदत्त ठाकुर, ''प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन,''
2. डॉ. परमात्मा शरण, ''प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ,''
3. सी.एम. सरस्वती, ''भारतीय राजनीतिक विचारक,'' मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।
4. ओम प्रकाश गाबा, ''राजनीति-चिन्तन की रूपरेखा,'' मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
5. ओम प्रकाश गाबा, ''भारतीय राजनीति विचारक,'' मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
6. डॉ. ए. अवस्थी, डॉ. आर. के. अवस्थी, ''भारतीय राजनीतिक चिन्तन,'' रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
7. पुष्पा बिरवानी, राजेश्वरी सक्सैना, ''भारतीय राजनीतिक विचारक,'' शील सन्स, जयपुर।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.15 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनु द्वारा प्रतिपादित सप्तांग सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए।
2. राजा के कर्त्तव्य या राज्य के कार्य क्षेत्र में मनु के दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए। क्या मनु का राजा निरंकुश है ?
3. मंत्रियों एवं मंत्रिपरिषद् के विषय में मनु के विचारों की व्याख्या कीजिए।
4. मनु के राजकोष संबंधी विचार बताइये।
5. मनु द्वारा प्रतिपादित परराष्ट्र नीति का उल्लेख कीजिए।
6. मनु का समाज वैज्ञानिक के रूप में क्या योगदान है। सिद्ध कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राज्य उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त क्या हैं ?
2. मनु राजा के आवश्यक गुण क्या बताते हैं ?
3. मनु की प्रशासनिक व्यवस्था पर टिप्पणी लिखिए।
4. मनुस्मृति में न्यायाधीशों के लिए क्या योग्यताएं बताई गई हैं।
5. मण्डल सिद्धान्त क्या है ?
6. षाड्गुण्य नीति क्या है ?
7. क्या आज की परिस्थितियों में मनु के समाज दर्शन को उचित कहा जा सकता है ?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मनु की रचना का नाम क्या है ?
2. मनु द्वारा राज्य की उत्पत्ति के संबंध में किस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है ?
3. मनु की पत्नी का क्या नाम था ?
4. मंत्रियों की संख्या के बारे में मनु का क्या मत है ?
5. मंत्रिपरिषद की कार्य प्रणाली क्या है ?
6. मनुस्मृति में राज्य की आय के कौन-कौन से साधन बताए गए हैं ?
7. मनु, न्यायालयों के लिए किस शब्द को काम में लेता है ?
8. परराष्ट्र नीति के सफल कार्यान्वयन हेतु मनु कौनसे दो सिद्धान्त बताते हैं ?
9. विजिगीषु राजा से क्या आशय है ?
10. यान का क्या अर्थ है ?
11. मनुस्मृति में सामाजिक व्यवस्था के कौन-कौन से अंग बताए गए हैं ?
12. मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मणों का प्रमुख दायित्व क्या हैं ?

इकाई - 2 कौटिल्य

संरचना

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 जीवन परिचय
2.4 राज्य के सप्तांग सिद्धान्त
2.4.1 राजा
2.4.2 अमात्य
2.4.3 जनपद
2.4.4 दुर्ग
2.4.5 कोष
2.4.6 सेना या दण्ड
2.4.7 मित्र
2.5 राजा (स्वामी)
2.5.1 राजा की उत्पत्ति
2.5.2 राजा के गुण
2.5.3 राजा की शिक्षा
2.5.4 राजा की दिनचर्या
2.5.5 राजा के कार्य तथा शक्तियाँ
2.5.5.1 प्रजा का कल्याण
2.5.5.2 वर्णाश्रम धर्म को बनाए रखना
2.5.5.3 शांति और व्यवस्था बनाए रखना
2.5.5.4 नियुक्ति करना
2.5.5.5 विधि-निर्माण कार्य
2.5.5.6 न्यायिक कार्य
2.5.5.7 दण्ड की व्यवस्था
2.5.5.8 आर्थिक कार्य
2.5.5.9 आय-व्यय संबंधी कार्य
2.5.5.10 लोक कल्याण संबंधी कार्य
2.5.5.11 युद्ध करना
2.5.6 क्या कौटिल्य का राजा निरंकुश है ?
2.5.6.1 शिक्षा
2.5.6.2 कठोर दिनचर्या
2.5.6.3 प्रजा का सुख ही राजा का सुख
2.5.6.4 प्रजा के हाथ में वित्तीय अधिकार
2.5.6.5 स्थानीय संस्थाएँ
2.5.6.6 धार्मिक नियम एवं रीति-रिवाज

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.5.6.7 ब्राह्मण और पुरोहित
2.5.6.8 मंत्रिपरिषद का नियन्त्रण
2.5.6.9 न्यायिक दण्ड
2.5.6.10 सत्य, न्याय और धर्म
2.5.6.11 जनमत
❍ निष्कर्ष
2.6 मण्डल सिद्धान्त
2.6.1 बारह राज्यों का वृत्त
2.6.1.1 विजिगीषु
2.6.1.2 अरि
2.6.1.3 मित्र
2.6.1.4 अरिमित्र
2.6.1.5 मित्र–मित्र
2.6.1.6 अरिमित्र–मित्र
2.6.1.7 पार्ष्णिग्राह
2.6.1.8 आक्रांद
2.6.1.9 पार्ष्णिग्राहासार
2.6.1.10 आक्रंदासार
2.6.1.11 मध्यम
2.6.1.12 उदासीन
2.6.2 मंडल सिद्धान्त का विश्लेषण
2.6.3 मंडल सिद्धान्त एवं वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय राजनीति
2.6.4 मंडल सिद्धान्त का मूल्यांकन
2.6.4.1 भौगोलिक दृष्टि से महत्त्व समाप्त
2.6.4.2 पड़ौसी देश, एक–दूसरे का शत्रु नहीं
2.6.4.3 केवल सीमा के आधार पर संबंधों का निर्धारण नहीं
2.6.4.4 स्थाई शत्रु या मित्र की धारणा गलत
2.6.5 मंडल सिद्धान्त का महत्त्व
❍ निष्कर्ष
2.7 षाड्गुण्य नीति
2.7.1 षाड्गुण्य नीति की परिभाषा
2.7.2 षाड्गुण्य नीति का प्रयोग
2.7.2.1 संधि
2.7.2.2 विग्रह या युद्ध
2.7.2.3 यान
2.7.2.4 आसन या तटस्थता
2.7.2.5 संश्रय
2.7.2.6 द्वैधीभाव
2.8 शांति–स्थापना की अन्तरराज्यीय नीति के उपाय
2.8.1 साम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.8.2 दाम
2.8.3 दण्ड
2.8.4 भेद
निष्कर्ष
2.9 गुप्तचर–व्यवस्था
2.9.1 गुप्तचरों का वर्गीकरण
2.9.1.1 स्थायी या संस्था गुप्तचर
2.9.1.2 भ्रमणशील गुप्तचर
2.9.2 गुप्तचरों के कार्य
❍ निष्कर्ष
2.10 कौटिल्य के धार्मिक विचार
2.10.1 धर्म का अर्थ
2.10.2 धर्म का प्रयोग
2.10.2.1 सामाजिक कर्त्तव्य के रूप में
2.10.2.2 नैतिक कानून के रूप में
2.10.2.3 नागरिक कानून के रूप में
2.10.3 धर्म तथा राजनीति
2.10.3.1 आन्तरिक नीति
2.10.3.2 विदेश नीति
2.10.3.3 देवताओं को राज्य संरक्षण
2.10.4 राजनीति धर्म से श्रेष्ठ
2.10.4.1 राजाज्ञा धर्म से श्रेष्ठ
2.10.4.2 उच्च पदाधिकारियों को राजा के प्रति भक्तिभाव, धर्म के प्रति नहीं
2.10.4.3 धार्मिक संस्था पर राज्य का नियंत्रण
2.11 कौटिल्य तथा मैकियावेली
2.11.1 कौटिल्य तथा मैकियावेली के विचारों में समानताएँ
2.11.1.1 राजतंत्र का समर्थन
2.11.1.2 राजा सम्प्रभु
2.11.1.3 राज्य की एकता पर बल
2.11.1.4 राज्य का विस्तार
2.11.1.5 युद्ध आवश्यक
2.11.1.6 ऐतिहासिक उदाहरण
2.11.1.7 राजनीतिक पद
2.11.1.8 दृढ़राष्ट्रवादी
2.11.1.9 व्यावहारिक राजनीति
2.11.1.10 पड़ौसी राज्य शत्रु होता है
2.11.1.11 मानव स्वभाव
2.11.1.12 शांति एवं सुरक्षा शक्ति द्वारा स्थापित
2.11.1.13 दूसरे राज्य की सहायता नहीं
2.11.1.14 खर्च

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.11.1.15 विदेशी राज्य पर आधिपत्य
2.11.1.16 गुप्तचर-व्यवस्था
2.11.1.17 धर्म का उपयोग
2.11.2 कौटिल्य तथा मैकियावेली के विचारों में असमानताएँ
2.11.2.1 कौटिल्य का व्यक्तित्व
2.11.2.2 ग्रन्थ की रचना
2.11.2.3 अर्थशास्त्र एवं प्रिंस
2.11.2.4 कौटिल्य का प्रभाव
2.11.2.5 धर्म का आदर
2.11.2.6 मानव स्वभाव
2.11.2.7 राजतंत्र
2.11.2.8 राजदर्शन का उद्देश्य
2.11.2.9 राजा
2.11.2.10 कौटिल्य पूर्ण अनैतिक नहीं
2.11.2.11 ऐतिहासिक उदाहरण नहीं
2.11.2.12 कौटिल्य परम्परावादी
2.11.2.13 न्याय, कानून और दण्ड
2.11.2.14 वित्त और शासन
2.11.2.15 युद्ध और कूटनीति
2.11.2.16 राजदूत
2.11.2.17 विदेश नीति
2.12 राजनीतिक विचारधारा के इतिहास में कौटिल्य का महत्त्व तथा देन
- पृष्ठभूमि
2.12.1 अर्थशास्त्र, सभी विचारों का सार
2.12.2 राजनीति का स्वतन्त्र अध्ययन
2.12.3 राजनीतिक विचारों का व्यावहारिक रूप
2.12.4 सप्तांग सिद्धान्त
2.12.5 राज्य के कार्य
2.12.6 राजा
2.12.7 मंत्रिपरिषद
2.12.8 प्रशासनिक व्यवस्था
2.12.9 कानून
2.12.10 न्याय
2.12.11 दण्ड-व्यवस्था
2.12.12 गुप्तचर-व्यवस्था
2.12.13 राजदूत-व्यवस्था
2.12.14 मंडल-सिद्धान्त
2.12.15 षाड्गुण्य नीति
2.12.16 सामाजिक विचार
2.12.17 आर्थिक विचार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.12.18 धार्मिक विचार

2.13 सारांश

2.14 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

2.15 अभ्यास प्रश्नावली

2.1 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य कौटिल्य के विचारों को जानना और यह सिद्ध करना कि राजनीति विज्ञान के अनेक मूलभूत सिद्धान्त कौटिल्य ने अपनी कृति 'अर्थशास्त्र' में प्रतिपादित किये हैं। कौटिल्य के विचारों का निहित उद्देश्य एक ऐसे राजनीतिक एवं प्रशासनिक तंत्र की स्थापना करना जो राज्य की एकता व अखण्डता को बनाते हुए जन-इच्छाओं एवं आकांक्षाओं पर खरा उतरे। इसके अध्ययन के बाद आप—

- कौटिल्य के राज्य की उत्पत्ति व निर्माण संबंधी विचारों को समझ सकेंगे,
- राजा और राज्य के उद्देश्य से परिचित हो सकेंगे, साथ-साथ आपको यह भी जानने का अवसर मिलेगा कि राजा लोककल्याण को ध्यान में रखकर नीति का निर्धारण करे,
- इस बात की भी जानकारी मिलेगी कि एक राज्य को अपने हितों में अभिवृद्धि करने के लिए प्रभावी कुटनीति अपनानी चाहिए,
- कौटिल्य ने तत्कालीन परिस्थितियों को मद्देनजर रखते हुए यथार्थ के आधार पर विचार प्रस्तुत किये थे, को जान सकेंगे,
- पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तकों ने कौटिल्य के विचारों को अपनाते हुए किस प्रकार राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में अपना स्थान कायम किया,
- कौटिल्य की तुलना मेकियावेली से की जाती है, इसे भी जान सकेंगे,
- राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में कौटिल्य के योगदान को जान सकेंगे, जिसके लिए राजनीति विज्ञान सदैव ऋणी रहेगा.
- कौटिल्य ने भारत को विश्वगुरु का दर्जा दिलाने में जो उल्लेखनीय भूमिका अदा की, उसे भी जान सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में कौटिल्य का अग्रणी स्थान है। विलक्षण प्रतिभा के धनी कौटिल्य (विष्णुगुप्त) अपनी महान कृति 'अर्थशास्त्र' के माध्यम से यह स्थान प्राप्त करता है। उसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि जो स्थान पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन में प्लेटो एवं अरस्तु का है, वही स्थान भारतीय राजनीतिक चिन्तन में कौटिल्य का है। भारत को सदियों से विश्व-गुरु रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जिसमें कौटिल्य जैसी महान् विभूतियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, जिन्होंने अपने चिन्तन एवं दर्शन के माध्यम से मानव सभ्यता को ऐसे सिद्धान्त एवं विचारधाराएँ प्रदान की हैं, जिन्हें अपनाकर मनुष्य अपने जीवन एवं समाज को संगठित स्वरूप दे सका है और आधुनिक व्यवस्थाओं के लिए भी प्रेरणादायी बना हुआ है। कौटिल्य के विचार यथार्थ या वास्तविकता पर आधारित हैं। यद्यपि उसने अपने विचारों का प्रतिपादन अपने समय की आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुसार किया था, जिसका प्रमुख उद्देश्य चन्द्रगुप्त के साम्राज्य को सुदृढ़ करना तथा भारत की खोई हुई प्रतिष्ठा पुन: प्राप्त करना था क्योंकि राजाओं की आपसी फूट के कारण भारत छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित हो गया था और सिकन्दर जैसे विदेशी आक्रमणकारी के आक्रमण जारी थे। इन प्रतिकूल अवस्थाओं ने कौटिल्य को झकझौर कर रख दिया। सर्वप्रथम कूटनीति की चालें-चलकर नन्दवंश का नाश किया और उसके पश्चात् अर्थशास्त्र के माध्यम से अपने विचारों या दर्शन को प्रस्तुत किया। सालेटोर के अनुसार-**''प्राचीन भारत की राजनीतिक विचारधाराओं में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य कौटिल्य की विचारधारा है।''**

कौटिल्य, चाणक्य या विष्णुगुप्त उस महान् विभूति का नाम है, जो किसी राजा या राजवंश का न होकर भी प्राचीन भारत के महान् सम्राट चन्द्रगुप्त का निर्माता तथा गुरु था। वह यथार्थवादी विचारक, कूटनीतिज्ञ, व्यवहारवादी राजनीतिज्ञ, नीतिशास्त्र का सुविख्यात विद्वान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

था। परन्तु यह अत्यन्त दु:ख का विषय है कि सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्र के प्रणेता और महान् विभूति आचार्य कौटिल्य का कोई प्रामाणिक जीवन–चरित्र नहीं मिलता।

कौटिल्य की महानता के पीछे मूल कारण यह नहीं है कि इससे पूर्व राजनीतिक चिन्तक पैदा नहीं हुए अपितु वह प्रथम विचारक था, जिसने राजनीतिक बुद्धिमत्ता तथा शासनकला के सिद्धान्त को व्यवस्थित एवं स्पष्ट किया। इन सभी सिद्धान्तों को एक स्थान पर एकत्रित कर शासनकला के पृथक एवं विशिष्ट विज्ञान की रचना करने का कार्य किया। इस तरह कौटिल्य को शासन कला व कूटनीति का महान प्रतिपादक कहा जा सकता है।

2.3 जीवन परिचय

कौटिल्य का वास्तविक नाम विष्णुगुप्त था। विष्णुगुप्त का जन्म बौद्ध ग्रन्थों एवं अन्य स्रोतों के अनुसार 400 ई.पू. तक्षशिला के 'कुटिल' नामक एक ब्राह्मण वंश में हुआ था। दूसरी ओर कुछ विद्वान नेपाल की तराई और जैन ग्रन्थ मैसूर राज्य स्थित श्रवण बेलगोल को इनका जन्म स्थान मानते हैं। 'कुटिल' वंश में पैदा होने के कारण ही उन्हें कौटिल्य कहा जाता है। मुद्राराक्षस के रचयिता विशाखदत्त के अनुसार उनके पिता को 'चणक' भी कहा जाता था। पिता के नाम के आधार पर इन्हें चाणक्य कहा जाने लगा।

चाणक्य की शिक्षा–दीक्षा नालन्दा विश्वविद्यालय में हुई थी। तत्पश्चात् वह इसी में अध्यापन कार्य भी करने लगे। उन्होंने एक आदर्श और सफल शिक्षक के रूप में अत्यधिक ख्याति अर्जित की। इस दौरान चाणक्य के जीवन को मोड़ देने वाली दो प्रमुख घटनाएं घटित होती हैं, जो उसे व्यावहारिक राजनीति में आने के लिए बाध्य करती हैं। प्रथम–सिकन्दर का भारत पर आक्रमण। इस समय सम्पूर्ण भारत छोटे–छोटे खण्डों या राज्यों में विभक्त हो चुका था। इन राज्यों के पास इतनी सामरिक शक्ति नहीं थी कि विदेशी आक्रमण का मुंह तोड़ जवाब दे सके, इसके विपरीत इन राज्यों के द्वारा सिकन्दर को सहायता पहुँचायी जा रही थी। सिकन्दर के हाथों भारतीयों की पराजय कौटिल्य के लिए दर्दनाक घटना थी। उसके अनुसार हार के मुख्य कारण राष्ट्रीय एकता का अभाव व राजाओं की आपसी फूट थी। कौटिल्य भारत को इस स्थिति से उभारना चाहता था, देशप्रेम और राष्ट्रीय एकता की दृढ़ इच्छा तथा भारत में एक सुदृढ़, विशाल केन्द्रीय शासन की स्थापना के अपने लक्ष्य के कारण वह व्यावहारिक राजनीति की ओर उन्मुख हुए। द्वितीय– एक दन्त कथा के अनुसार, मगध के सम्राट महापद्मनन्द द्वारा भरी सभा में कौटिल्य को अपमानित करना। अत: वह नन्द वंश का नाश करने के लिए प्रयास करता है। इसी दौरान नन्द के अपमानों से पीड़ित चन्द्रगुप्त से कौटिल्य की मुलाकात होती है और दोनों '**दुश्मन का दुश्मन अपना दोस्त**' की नीति का अनुसरण करते हुए अपनी सेना को संगठित करते हैं और अपने अपमानों का बदला लेकर नन्द को परास्त कर देते हैं। इसके पश्चात् चन्द्रगुप्त सम्राट बना और उसने चाणक्य को अपना प्रधानमंत्री बनाया। इस पद पर रहते हुए चाणक्य ने अपनी नीतियों का कार्यान्वयन किया और भारत को एकता के सूत्र में बांधा। चन्द्रगुप्त को महान सम्राट बनाने का गौरव प्राप्त हुआ। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' की रचना की, जिसमें शासन, प्रशासन, कूटनीतिक, राजनयक,अर्थव्यवस्था, सैन्य–व्यवस्था, शासक के गुण, शासक की दिनचर्या, मण्डल सिद्धान्त, सप्तांग सिद्धान्त आदि की विस्तृत व्याख्या एवं विवेचना प्रस्तुत की गई है, जिन्हें न केवल चन्द्रगुप्त ने ही अपनाया वरन् आज तक इन सिद्धान्तों को अपनाया जा रहा हैं।

कौटिल्य की सादगी का चित्रण विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस में इन शब्दों में किया है,–''कुटिया के एक ओर गोबर के उपलों को तोड़ने के लिए पत्थर पड़ा हुआ था, दूसरी ओर विद्यार्थियों द्वारा लायी गई लकड़ियों का गट्ठर पड़ा है, सुखाने के लिए रखी गई लकड़ियों के बोझ से छत दबी जा रही है और इसकी दीवार भी जीर्ण दशा में हैं।'' चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा विशाल साम्राज्य स्थापित करने के पीछे कौटिल्य का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। कूटनीतिक सफलता दिलाने के लिए चन्द्रगुप्त और यूनानी शासक की पुत्री हैलेन की शादी करवायी, जिसने मगध साम्राज्य तथा यूनान के बीच चिरस्थायी अन्तरराष्ट्रीय सहयोग तथा मित्रता की नींव डाली। कौटिल्य के **जीवन का उद्देश्य था– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष** उसका विचार था कि इनको प्राप्त करने के लिए समन्वित प्रयास करना चाहिए।

यद्यपि कौटिल्य ने अपनी कृति 'अर्थशास्त्र' 325 ई.पू. की रचना कर दी थी, परन्तु दुर्भाग्यवश यह 1905 में प्रकाश में आयी जिसकी हस्तलिखित पाण्डुलिपि तन्जौर के एक ब्राह्मण ने मैसूर (कर्नाटक) राज्य प्राच्य पुस्तकालय को भेंट की। अर्थशास्त्र का प्रमुख विषय ''राजनीति'' है, जिसमें विभिन्न पहलूओं का विस्तृत वर्णन 15 अधिकरणों, 180 प्रकरणों, 150 अध्यायों तथा 6000 श्लोकों में किया गया है। इसमें राजनीति के अलावा, अर्थशास्त्र, गुप्तचर शास्त्र, शिक्षा शास्त्र, सैन्यशास्त्र, यौन विद्या, रसायन शास्त्र, इन्जीनियरिंग तथा अन्य विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। इस तरह से यह एक बहुआयामी ग्रन्थ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.4 राज्य के सप्तांग सिद्धान्त

राजनीतिक विज्ञान के जनक अरस्तु की भांति कौटिल्य भी मनुष्य के लिए राज्य को अनिवार्य आवश्यकता मानता है। उनका मत है कि राज्य के अभाव में मानव के समक्ष असुरक्षा का खतरा तो पैदा होता ही है साथ में मानव का विकास भी अवरूद्ध हो जाता है। राज्य की उत्पत्ति के संबंध में कौटिल्य '**सामाजिक समझौता सिद्धान्त**' का समर्थन करता है। असुरक्षा, अराजकता, अशांति, जीवन की क्षणभंगुरता से मुक्ति पाने के लिए मनुष्य मनु को अपना राजा बनाता है।

सप्तांग सिद्धान्त में आंगिक एकता

राजा (स्वामी)	**सिर**
अमात्य (मंत्री)	**आँखें**
जनपद	**जंघाएँ**
दुर्ग (पुर)	**हाथ**
कोष	**मुख**
दण्ड (सेना)	**मस्तिष्क**
मित्र	**कान**

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तकों के द्वारा राज्य के स्वरूप के संबंध में जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है, उसे सप्तांग सिद्धान्त कहा है। जैसा की नामकरण से ही स्पष्ट हो जाता है कि राज्य का निर्धारण आवश्यक सात तत्त्वों (प्रकृतियों) से होता है। जिस प्रकार वर्तमान समय में राज्य के निर्माणकतत्त्वों के रूप में चार तत्त्व- जनसंख्या, निश्चित भू-भाग, सरकार एवं सम्प्रभुता है लेकिन सप्तांग सिद्धान्त के सातों तत्त्व इनमें विद्यमान हैं। कौटिल्य से पूर्व मनु, शुक्र और भीष्म ने भी सप्तांग सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस तरह यह सावयव सिद्धान्त पर आधारित है। जिस प्रकार मानव शरीर विभिन्न अंगों से मिलकर बनता है और सभी अंगों का अपना विशेष महत्त्व होता है, एक अंग में व्यवधान आने पर सम्पूर्ण शरीर प्रभावित होता है, ठीक उसी प्रकार सप्तांग सिद्धान्त की सातों प्रकृतियों का महत्त्व है। यह सिद्धान्त पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन से आयात किया हुआ न होकर वरन् यह शुद्ध रूप से भारतीय है। इसका उद्‌गम स्थल ऋग्वेद का पुरुष सूक्त है। शुक्रनीति में राज्य के इन अंगों को मानव शरीर से तुलना करते हुए कहा गया है- "**इस शरीर रूपी राज्य में राजा सिर के समान है, अमात्य आंख है, जनपद जंघाएँ, कोष मुख है, सैन्य बल मन है, दुर्ग हाथ है और मित्रकान हैं।**" कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के छठे अधिकरण के पहले अध्याय में राज्य के सात अंगों या प्रकृतियों का निम्न उल्लेख किया है-

2.4.1 राजा

सप्तांग सिद्धान्त में सर्वप्रथम स्थान राजा को दिया गया है। राजा की महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण उसे स्वामी नाम दिया गया है। स्वामी का अर्थ होता है, आदेश देने वाला अर्थात् राजा प्रशासन की मुख्य धुरी होता है। उसका प्रत्येक आदेश सर्वोच्च एवं अन्तिम होता है, जिसकी अनदेखी राज्य की परिधि में कोई भी नहीं कर सकता। कौटिल्य अपने राजा को राज्य का केवल एक शासक ही नहीं देखना चाहते, बल्कि वह तो उसे राजर्षि के रूप में देखना चाहते हैं।

कौटिल्य ने राजा के गुणों पर विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि- राजा को महाकुलीन, दैव बुद्धि सम्पन्न, धैर्यवान, दूरदर्शी, धार्मिक, सत्यवादी, कृतज्ञ, उच्चाभिलाषी और दृढ़बुद्धि गुण-सम्पन्न परिवार वाला तथा शास्त्रबुद्धि से युक्त होना चाहिए।

जिस प्रकार प्लेटो अपनी कृति 'रिपब्लिक' में जिस 'दार्शनिक राजा' की अवधारणा प्रतिपादित करता है, उसमें राजा की विशेष शिक्षा पर बल देता है। ठीक उसी प्रकार कौटिल्य भी राजा की शिक्षा पर बल देता है। उनका कथन है कि- "**जिस प्रकार घुन लगी हुई लकड़ी शीघ्र नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार जिस राजकुल के राजकुमार शिक्षित नहीं होते, वह राजकुल बिना किसी**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

युद्ध आदि के नष्ट हो जाता है।'' कौटिल्य ने राजा के लिए जिन आवश्यक विद्याओं का उल्लेख किया हैं, वे हैं– दण्डनीति, सैनिक शिक्षा, मानवशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास और धर्मशास्त्र आदि। इस तरह राज्य की सम्प्रभुता की सम्पूर्ण शक्ति राजा में ही निवास करती है। जिसका आदेश अन्तिम व सर्वोच्च होता है।

2.4.2 अमात्य

कौटिल्य के अनुसार अमात्य से तात्पर्य मंत्री एवं प्रशासनिक अधिकारियों से होता है। अमात्य राज्य का दूसरा अंग है जो प्रशासन संचालन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कौटिल्य इसके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि,– **''एक पहिए की भांति राजकाज भी बिना सहायता-सहयोग से नहीं चलाया जा सकता। इसलिए राजा को चाहिए कि वह सुयोग्य अमात्यों की नियुक्ति कर उनके परामर्शों को हृदयंगम करें।''**

कौटिल्य का मत है कि अमात्यों के चरित्र की परीक्षा के बाद ही उनकी नियुक्ति होनी चाहिए। धर्मोंपधा, अर्थोंपधा और भयोपधा अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और भय द्वारा परीक्षित पवित्र अमात्यों को, उनकी कार्यक्षमता के अनुसार कार्यभार सौंपना चाहिए। कौटिल्य का कहना है कि स्वामी को चाहिए कि वह अमात्यों को अपनी आवश्यकता एवं सुविधानुसार नियुक्त करें। योग्य एवं प्रभावी अमात्य होने की स्थिति में प्रशासन एवं साम्राज्य सफलता के उच्च शिखर पर पहुँच सकता है।

2.4.3 जनपद

राज्य के सप्तांग सिद्धान्त का तीसरा प्रमुख अंग जनपद है। वर्तमान राजनीतिक विचारक राज्य के निर्माण तत्त्वों के रूप में जनसंख्या एवं निश्चित भू-भाग को पृथक-पृथक तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हैं लेकिन कौटिल्य ने इन दोनों तत्त्वों के लिए जनपद शब्द का प्रयोग किया है। जनपद का अर्थ है– **जनता युक्त भूमि।** जनपद के बिना राज्य की कल्पना तक नहीं की जा सकती है। कौटिल्य का मत है कि,–''मनुष्यों से रहित प्रदेश जनपद नहीं कहला सकता और जन पद रहित भूमि राज्य नहीं कहला सकती। अत: यदि जनपद न होगा तो राज्य किस पर किया जाएगा।''

जनपद का संगठन

गांवों की संख्या	इकाई का नाम
800	स्थानीय
400	द्रोणमुख
200	खार्वटिक
10	संग्रहण
1	गांव

इस प्रकार जनपद संगठन की सर्वोच्च इकाई है और सबसे छोटी एवं निचले स्तर पर गांव है। जिनको मिलाकर अन्य इकाईयाँ अस्तित्त्व में आती हैं। कौटिल्य ने जनपद के भू-भाग एवं जनसंख्या के संबंध में कुछ भी नहीं कहा है जो एक आदर्श राज्य का रूप ले सके। लेकिन जनपद को आदर्श एवं खुशहाल बनाने के लिए गुणवत्ता और चारित्रिक श्रेष्ठता पर बल दिया है जो इस प्रकार है–

1. समुचित निवास स्थान प्रदान कर सकें,
2. राज्य की शत्रुओं से रक्षा कर सकें,
3. उपयुक्त व्यवसाय प्रदान कर सकें,
4. पड़ौसी राज्यों पर निगरानी रख सकें,
5. जंगली जानवरों द्वारा सम्भावित उत्पात से रक्षा कर सकें,
6. चारागाह उपलब्ध करा सकें,
7. कृषि योग्य भूमि, खानों तथा वनों से समृद्ध हो,
8. आन्तरिक संचार के लिए नदियों, जलमार्गों तथा स्थलमार्गों से युक्त हो,
9. जिसका व्यापार विविध प्रकार का तथा मूल्यवान हो, तथा
10. जनकल्याण के लिए आवश्यक संसाधनों से भरपूर हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कौटिल्य ने जनता के विषय में लिखा है कि जनता निष्ठावान, स्वाभिमानी और सम्पन्न होनी चाहिए। इसके अलावा वह सरल हृदय वाली हो। राजा द्वारा लगाए करों को चुकाने की क्षमता रखती हो तथा उन्हें स्वेच्छा से अदा करती हो। जनता में शासक की आज्ञाओं का स्वाभाविक रूप से पालन करने की प्रवृत्ति होनी चाहिए।

2.4.4 दुर्ग

कौटिल्य ने दुर्ग को उतना ही महत्त्वपूर्ण माना है जितना जनपद या राजा को। दुर्ग राज्य रक्षात्मक शक्ति तथा आक्रमण शक्ति दोनों का प्रतीक है। राज्य को अपनी सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए दुर्ग बनाने चाहिए। जिनमें सेना के लिए अच्छी मोर्चाबंदी, पानी, भोजन सामग्री, बारूद आदि का यथोचित प्रबन्ध हो। जनपद की चारों दिशाओं में राजा युद्धोचित प्राकृति दुर्ग का निर्माण करवाए। कौटिल्य के अनुसार दुर्ग चार प्रकार के हैं-

1. **औदिक दुर्ग :**- चारों और पानी से घिरा हुआ टापू के समान गहरे तालाबों से आवृत स्थल औदिक दुर्ग कहलाता है।
2. **पार्वत दुर्ग :**- बड़ी-बड़ी चट्टानों अथवा पर्वत की कन्दराओं के रूप में निर्मित दुर्ग पार्वत दुर्ग कहलाता है।
3. **धान्वन दुर्ग :**- जल और घास आदि से रहित अथवा सर्वथा ऊखर भूमि में निर्मित दुर्ग धान्वन दुर्ग कहलाता है।
4. **वन दुर्ग :**- चारों और दलदल से घिरा हुआ अथवा कांटेदार सघन झाड़ियों से परिवृत दुर्ग वन दुर्ग कहलाता है।

इस प्रकार सुदृढ़ एवं साधन सम्पन्न दुर्ग होने पर राज्य भी सुरक्षित एवं सुदृढ़ बन सकता है इसलिए प्राचीन काल में राजाओं के द्वारा दुर्ग निर्माण पर विशेष बल दिया जाता था।

2.4.5 कोष

राज्य एवं प्रशासनिक व्यवस्था के संचालन के लिए धन की आवश्यकता होती है। जिसके बिना कोई भी कार्यवाही नहीं की जा सकती। इसलिए राज्य का महत्त्वपूर्ण आधार कोष होता है। राजा का प्रथम कर्त्तव्य है कि वह कोष में वृद्धि करने की हर सम्भव कोशिश करें। अर्थशास्त्र में अर्थ की प्रधानता है। कौटिल्य का मत है कि- धर्म, अर्थ और काम इन तीनों में अर्थ की प्रधानता है। कौटिल्य का मत है कि कोष में धर्मपूर्वक साधनों से वृद्धि करनी चाहिए। कोष की प्रचुर मात्रा होनी चाहिए, ताकि हर स्थिति का बिना किसी संकट के सामना किया जा सके। कोष सोना, चांदी, बहुमूल्य रत्नों से भरा होना चाहिए। प्रजा राजा को अन्न का छठा, व्यापार का दसवाँ और सोना भी दे। इस प्रकार कोष संकट एवं शांति दोनों में, उपयोगी है।

2.4.6 सेना या दण्ड

कौटिल्य के अनुसार दण्ड का अर्थ सेना से है। सेना राज्य की सुरक्षा की प्रतीक है। शक्तिशाली सेना होने पर कोई भी राज्य आक्रमण करने का दुस्साहस नहीं कर सकता बल्कि मित्र तो मित्र बने ही रहते है अपितु शत्रु भी मित्रता के लिए हाथ बढ़ाने के लिए विवस हो जाते हैं। कौटिल्य का मत है कि सेना में भर्ती के लिए क्रमश-क्षत्रिय, वैश्य व शुद्र को प्राथमिकता देनी चाहिए। कौटिल्य ने यथा सम्भव ब्राह्मण को सेना में भर्ती न किये जाने का परामर्श दिया है। सैनिकों को स्वामिभक्त होना चाहिए। उन्हें सदा राजा की आज्ञा का पालन करना चाहिए।

दूसरी ओर, राजा का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह सैनिकों को अच्छा वेतन और उनके परिवारों की सुख-सुविधा पर पूरा ध्यान देकर उन्हें संतुष्ट तथा प्रसन्न रखें। ऐसा करने से सैनिक राजा की आज्ञा का पालन कर सकेंगे और शत्रु का भी डटकर मुकाबला कर सकेंगे।

2.4.7 मित्र

राज्य का सातवाँ अंग मित्र है। कौटिल्य के अनुसार राज्य की प्रगति के लिए और आपत्ति के समय राज्य की सहायता के लिए मित्रों की आवश्यकता होती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि राजा अपने ऐसे मित्र बनाकर रखें, जो समय पर उसकी सहायता कर सके। मित्र वंश-परम्परागत, विश्वासी, स्थायी और हितैषी हो। इसके साथ ही राजा अपने मित्रों को सदैव अपने वश में रखे और उनसे समय पर काम लें। इसी को आधार मानकर उन्होंने पर राष्ट्र नीति के संबंध में विचार प्रस्तुत किये ताकि राज्य अपने हितों में अभिवृद्धि कर सके।

कौटिल्य ने स्पष्ट शब्दों मे मित्र के गुण पर लिखा है कि- **''मित्र ऐसे होने चाहिए, जो वंश-परम्परागत हो, स्थायी हो, अपने वश मे रह सकें, जिनसे विरोध की सम्भावना न हो, प्रभुमन्त्र, उत्साह आदि शक्तियों से युक्त हो, समय आने पर सहायता कर सकें। मित्रों में इन गुणों का होना मित्र सम्पन्न कहा जा सकता है।''**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस प्रकार कौटिल्य के सप्तांग सिद्धान्त में सातों तत्त्वों का सापेक्षित महत्त्व है। एक तत्त्व के कमजोर होने पर अन्य सभी तत्त्व प्रभावित होते हैं और इनके परस्पर सहयोग से ही राज्य की व्यवस्थाओं का सफल संचालन हो सकता है।

2.5 राजा (स्वामी)

कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित अर्थशास्त्र के सप्तांग सिद्धान्त में राजा को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। अर्थशास्त्र के अनुसार राज्य में वर्णाश्रम धर्म का पालन कराने के लिए दण्ड शक्ति का होना आवश्यक है। दण्ड के द्वारा समाज में फैली हुई अराजकता और अव्यवस्था को दूर करके व्यक्ति को उसके धर्मपालन के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इस दण्ड का संचालन करने वाली सत्ता राजा और उसका राजपद कही गयी है। कौटिल्य के अनुसार राजा, राज्य की कार्यपालिका का सर्वोच्च अधिकारी है। राजा दण्ड का प्रतीक है और निर्धारित नियमों के अनुसार उसका निर्माता है। राजा का मुख्य ध्येय प्रजा का कल्याण करना है। प्रजा के कल्याण में ही राजा का कल्याण विहित है। राजा को चाहिए कि वह जनता के समक्ष उच्च चारित्रिक आदर्श प्रस्तुत करें ताकि उससे जनता को नवीन सीख मिले।

2.5.1 राजा की उत्पत्ति

राजा शब्द की उत्पत्ति राजन शब्द से हुई है और इसके मूल राट् का शब्दार्थ शासक है। कौटिल्य राजतन्त्रीय शासन को सर्वोच्च मानते हुए, राजा को ही सर्वोच्च अंक माना है। उनके अनुसार शासन की सफलता योग्यता और शक्ति पर निर्भर करती है। इस प्रकार राजा शासन की धूरी एवं शासन को वांछित गति प्रदान करने वाला होता है। कौटिल्य के शब्दों में,– **''यदि राजा सम्पन्न हो तो उसकी खुशहाली में प्रजा भी सम्पन्न होती है। राजा का जो शील है, वही शील प्रजा का भी होता है। यदि राजा उद्यमी और उत्थानशील होता है, तो प्रजा में भी गुण आ जाते हैं, यदि राजा प्रमादी हो तो प्रजा भी वैसी ही हो जाती है। अतः राज्य में केन्द्रीभूत स्थान राजा को ही प्राप्त है।''**

2.5.2 राजा के गुण

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के छठे अधिकरण के प्रथम अध्याय में राजा के आवश्यक गुणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। राजा को कुलीन, स्वस्थ और शास्त्रों का अनुसरण करने वाला होना चाहिए। उसे अभिगामिक गुणों प्रज्ञा गुणों, उत्साह गुणों और आत्म–संयत गुणों से विभूषित होना चाहिए। अभिगामिक गुणों के अनुसार राजा महाकुलीन, देवबुद्धि, धैर्य सम्पन्न, दूरदर्शी, धार्मिक, सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ, कृतज्ञ, उच्चाभिलाषी, उत्साही, शीघ्र निर्णय लेने वाला, सामन्तों को वंश में करने वाला, दृढ़ बुद्धिगुण सम्पन्न परिवार वाला और शास्त्र बुद्धि से युक्त हो।

2.5.3 राजा की शिक्षा

प्लेटो की भांति कौटिल्य भी राजा के लिए शिक्षा की आवश्यकता पर बल देता है। कौटिल्य का मत है कि उपर्युक्त गुणों से युक्त राजा आसानी से नहीं मिलते हैं, कुछ गुण तो स्वाभाविक होते है और कुछ गुण केवल शिक्षा से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। अतः राजकुमार का शिक्षित होना परम आवश्यक है। उनके शब्दों में– ''जिस प्रकार घुन लगी हुई लकड़ी शीघ्र नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार जिस राज्य के राजकुमार शिक्षित नहीं होते, वह बिना किसी युद्ध आदि के स्वयं ही नष्ट हो जाता है।'' कौटिल्य ने जिन आवश्यक विद्याओं का उल्लेख किया है, वे हैं– दण्ड नीति, सैनिक शिक्षा, मानवशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र तथा धर्मशास्त्र आदि।

2.5.4 राजा की दिनचर्या

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के पहले अधिकरण के अठारवें अध्याय में राजा की व्यस्त दिनचर्या का वर्णन किया है। इसके पीछे मूल उद्देश्य राजा को जन कल्याण के लिए सचेत करते हुए अपने दायित्वों का भली प्रकार से निर्धारण करना और जितना हो सके उतना राजा को भोग विलास की प्रवृतियों से दूर रखना था। कौटिल्य ने राजा के दिन–रात के कार्यक्रम को 24 घण्टों को 16 घड़ियों में बांटता है। इस तरह प्रत्येक घड़ी 1.30 घण्टे की है।

दिनचर्या

प्रथम घड़ी – प्रजा की रक्षा, व्यवस्था और हिसाब–किताब की जाँच।
द्वितीय घड़ी – ग्राम व नगरवासियों का प्रशासन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तीसरी घड़ी – ज्ञान, भोजन, स्वाध्याय।
चतुर्थ घड़ी – वित्त विभाग का निरीक्षण, नियुक्ति एवं स्थानांतरण।
पांचवी घड़ी – मंत्रियों तथा गुप्तचरों से मंत्रणा।
छठी घड़ी – मनोरंजन।
सातवीं घड़ी – घोड़े, हाथी, अस्त्र–शस्त्रों का निरीक्षण।
आठवीं घड़ी – सेनापति से मंत्रणा।
रात्रिचर्या
पहली घड़ी – गुप्तचरों द्वारा दिनभर की एकत्रित रिपोर्ट।
दूसरी घड़ी – ज्ञान, भोजन, स्वाध्याय।
तीसरी घड़ी – गायन वादन।
चौथी घड़ी – निद्रा।
पांचवी घड़ी – निद्रा।
छठी घड़ी – दिन के कार्यक्रम पर विचार।
सातवीं घड़ी – गुप्तचरों से परामर्श।
आठवीं घड़ी – पुरोहित आचार्य आदि से भेंट।

इस प्रकार राजा का जीवन एक तपस्वी के समान होना चाहिए। कौटिल्य की विचारधारा को व्यक्त करते हुए श्री भगवानदास केला लिखते है,– **''राजपद का ऐश्वर्य कांटों के मुकुट के समान हैं, जिसे सेवाभाव से ही ग्रहण किया जा सकता है।''** यह दिनचर्या अत्यन्त कठोर है। इसका पालन करके राजा आदर्श शासक होगा। लेकिन कौटिल्य का मत है कि राज्य आवश्यकता, समय एवं परिस्थितियों के अनुसार इसमें परिवर्तन भी कर सकता है।

2.5.5 राजा के कार्य तथा शक्तियाँ

यद्यपि कौटिल्य का राजा राजतन्त्र का प्रतीक है, उसी में सम्प्रभुता निहित है। इस तरह का राजा सर्वोच्च एवं सर्वशक्तिमान है। कौटिल्य के अनुसार राजा निम्नलिखित शक्तियों एवं कार्यों को सम्पादित करता है–

2.5.5.1 प्रजा का कल्याण :– कौटिल्य के अनुसार राजा का प्रथम कर्त्तव्य यह है कि वह तत्परता के साथ लोक कल्याण की दिशा में सार्थक कदम उठाए। उसे एक उत्तम पिता के समान प्रजा को पुत्रवत समझना चाहिए। कौटिल्य के शब्दों में – ''प्रजा के सुख में राजा का सुख और प्रजा के हित में राजा का हित है। अपने आपको अच्छे लगने वाले कार्यों को करने में राजा का हित नहीं, बल्कि उसका हित तो प्रजाजनों को अच्छे लगने वाले कार्यों के सम्पादन करने में हैं।''

2.5.5.2 वर्णाश्रम धर्म को बनाए रखना :– प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रम का धर्म है कि वह किसी भी प्रकार की हिंसा न करें, सत्य बोले, पवित्र बने, किसी से ईर्ष्या न करें, दयावान और क्षमाशील बना रहे। कौटिल्य का मत है कि– अपने धर्म का पालन करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है । राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रजा को धर्म के मार्ग से भ्रष्ट न होने दें।

2.5.5.3 शांति और व्यवस्था बनाए रखना :– राजा एवं राज्य की स्थापना समाज में व्याप्त अशांति, अराजकता, अव्यवस्था एवं जीवन तथा सम्पत्ति की क्षणभंगुरता से मुक्ति पाने के लिए की गई है। अतः राजा का दायित्व बनता है कि– वह आन्तरिक एवं बाहरी दोनों ही स्तरों पर शांति–व्यवस्था बनाए रखे। इसके प्रतिकूल तत्त्वों पर तत्काल प्रभाव से अंकुश लगाए।

2.5.5.4 नियुक्ति करना :– राजा प्रशासन की धुरी एवं कार्यपालिका का प्रधान होने के कारण व्यवस्था के कुशल संचालन को सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न प्रकार के अधिकारियों की नियुक्ति करता है, जिनमें अमात्य, सेनापति, गुप्तचर आदि होते हैं। वह सभी कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण करता है तथा योग्य कर्मचारियों की पदोन्नति करता है और आवश्यकता पड़ने पर सुविधानुसार कर्मचारियों का स्थानान्तरण करता है।

2.5.5.5 विधि–निर्माण कार्य :– राजा राज्य की विधि–निर्माण का मूल स्रोत होता है, उसके द्वारा बनाया गया कानून अन्तिम एवं सर्वोच्च होता है, जिन्हें किसी भी प्रकार की चुनौती नहीं दी जा सकती। राजा विधि का निर्माण धर्म, व्यवहार, चरित्र, शासन के आधार पर करता है, जिसका मुख्य ध्येय जनता के सुखों में वृद्धि करना होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.5.5.6 न्यायिक कार्य :- राजा न्याय की मूर्ति होता है। अपील की दृष्टि से राजा ही सर्वोच्च न्यायालय है। राजा विभिन्न न्यायालयों की स्थापना करता है। वह किसी भी मामले के निर्णय में अपनी मनमानी नहीं कर सकता। राज्य में प्रचलित विधियों के अनुसार ही वह निर्णय देता है। उसका निर्णय धर्म, लोकाचार, व्यवहार और न्याय पर आधारित होता है।

2.5.5.7 दण्ड की व्यवस्था :- राजा न्यायपालिका के द्वारा दोषी व्यक्तियों को दण्ड देने की व्याख्या करता है। दण्ड व्यवस्था का उद्देश्य जो प्राप्त नहीं है उसे प्राप्त करवाना, प्राप्त किये हुए की रक्षा करना, जिसकी रक्षा की गई उसमें वृद्धि करना और जिसमें की गई है, उसका उचित पात्रों मे वितरण करना आदि। समाज और सामाजिक व्यवस्था दण्ड पर ही निर्भर करती है। उचित दण्ड देना राजा का पुनीत कर्त्तव्य होता है। दण्ड का उचित प्रयोग न होने की स्थिति में अराजकता को बढ़ावा मिलता है। अत: राज्य में दण्ड की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

2.5.5.8 आर्थिक कार्य :- आर्थिक क्रियाकलापों का सीधा संबंध राज्य के विकास और उन्नति के साथ जुड़ा हुआ है। अत: राजा का यह दायित्व बनता है कि आर्थिक क्षेत्र में समृद्धि के लिए हर सम्भव प्रयास करें। इसके लिए व्यापार एवं वाणिज्य का विस्तार करें, खेती और उद्योग-धन्धे को प्रोत्साहन दे, पशु-नस्ल सुधार आदि का प्रबन्ध करें। आर्थिक समृद्धि के बल पर राज्य प्रत्येक क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धि अर्जित कर सकता है।

2.5.5.9 आय-व्यय संबंधी कार्य :- राजा को आय-व्यय का पूरा लेखा और प्रबन्ध रखना चाहिए। आय-व्यय का उचित प्रबन्ध न होने की स्थिति राज्य को आर्थिक दुरावस्था की ओर ले जाती है, जिसका परिणाम सम्पूर्ण व्यवस्था को झेलना पड़ता है। राजा को यह कार्य अपनी सामर्थ्य के अनुसार करना चाहिए। राज्य का सन्तुलित बजट होना चाहिए। अत्यधिक घाटे का बजट राज्य का विनाश करता है और प्रजा को गरीब बना देता है।

2.5.5.10 लोककल्याण संबंधी कार्य :- राज्य और राजा का प्रादुर्भाव जनता के कष्टों का निवारण हेतु हुआ है। अत: राजा का दायित्व बनता है कि वह तत्परता के साथ यह कार्य करें। इसके तहत् राजा केवल सुरक्षा सम्बन्धी कार्य नहीं करेगा अपितु वे सभी कार्य करेगा जिनका संबंध आम नागरिक के कल्याण के साथ जुड़ा हुआ है। जो दिखने में तो बहुत साधारण हैं लेकिन व्यापक महत्त्व लिए हुए हैं। इसके अन्तर्गत राजा दान देगा और अनाथ, वृद्ध तथा असहाय लोगों के पालन-पोषण की व्यवस्था करेगा। वह असहाय गर्भवती स्त्रियों के लिये उचित व्यवस्था करेगा, उनके बच्चों का भरण-पोषण करेगा।

2.5.5.11 युद्ध करना :- कौटिल्य के अनुसार युद्ध करना राजा का एक प्रमुख कार्य है। उसके अर्थशास्त्र का केन्द्र एक ऐसा विजिगीषु राजा है, जिसका उद्देश्य निरन्तर नई भूमि प्राप्त कर अपने क्षेत्राधिकार वृद्धि करना है। वह राज्य के सभी आर्थिक और अन्य संस्थाओं की महत्ता इसी मापदण्ड से निश्चित करता है कि वे राज्य को किस सीमा तक सफल युद्ध के लिए तैयार करते हैं। इसके अलावा अर्थशास्त्र के अधिकांश अधिकरणों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से युद्ध का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार कौटिल्य राजा को व्यापक शक्तियाँ और कार्य देता है, जो उसकी सर्वोच्चता को सिद्ध करती है।

2.5.6 क्या कौटिल्य का राजा निरंकुश है ?

राजा की शक्तियाँ और कार्यों के आधार पर कुछ विद्वानों का मत है कि कौटिल्य के राजा में निरंकुशता की छाया दिखाई देती है। उनका कहना है कि जिस रूप में राजा को स्थान दिया गया है वह आगे चलकर निरंकुश में परिणित होता है, लेकिन यह धारणा सही नहीं है, यद्यपि प्राचीन भारत में राजतन्त्र ही प्रमुख शासन प्रणाली थी लेकिन कोई भी राजनीतिक विचारक निरंकुश शासन का समर्थक नहीं था। सभी ने राजा की निरंकुशता को रोकने के लिए ठोस उपाय सुझाये हैं। कौटिल्य ने भी अपनी अर्थशास्त्र में ऐसे प्रतिबन्धों का उल्लेख किया है, जो राजा की निरंकुशता पर अंकुश लगाने में सहायक हैं, जो इस प्रकार है-

2.5.6.1 शिक्षा :- कौटिल्य ने राजा की निरंकुशता पर एक प्रभावशाली प्रतिबन्ध राजा के व्यक्तित्व और उसे प्रदान की गई शिक्षा के आधार पर लगाया है। उन्होंने राजा के लिए अनेक मानसिक और नैतिक गुण आवश्यक बताए हैं। इस प्रकार सर्वगुण सम्पन्न राजा अपने स्वभाव से ही निरंकुश नहीं हो सकता। कौटिल्य ने राजा की शिक्षा पर भी बल देकर उसमें ऐसे संस्कार डालने चाहें हैं कि वह निरंकुशता का मार्ग न अपनाकर लोकहित के कार्यों में ही लगा रहे।

2.5.6.2 कठोर दिनचर्या :- कौटिल्य ने अपने राजा के लिए एक ऐसी व्यस्त और कठोर दिनचर्या का उल्लेख किया है जो उसे निरंकुश होने का समय प्रदान नहीं करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.5.6.3 प्रज्ञा का सुख ही राजा का सुख :- कौटिल्य का मत है कि जिस कार्य या नीति के लागू करने से जनता को सुख की अनुभूति होती है, उसी में राजा का सुख एवं हित निहित है। अगर राजा प्रजा के प्रति अपने दायित्वों की अनदेखी करता है, प्रजा के सुख के स्थान पर स्वयं के सुख की अभिलाषा रखता है तो राजा अपने अधिकारों से वंचित कर दिया जाएगा और प्रजा उसे राजा के पद से पदच्युत कर देगी। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है कि- **''प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है। प्रजा के हित में ही उसका हित है, राजा का अपना प्रिय या सुख कुछ नहीं है। प्रजा का सुख ही उसका सुख है।''** इस प्रकार, कौटिल्य का राजा निरंकुश नहीं बन सकता।

2.5.6.4 प्रजा के हाथ में वित्तीय अधिकार :- कौटिल्य का विचार है कि प्रजा राजा को धन-धान्य की सहायता इसलिए देती है कि राजा उनके सुखों में अभिवृद्धि करेगा और कष्टों का निवारण करेगा। अत: राजा प्रजा के धन का उपयोग निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए खर्च नहीं कर सकता। कौटिल्य के अनुसार राजा को प्रजा पर, उसकी पूर्व अनुमति के बिना कर लगाने, तत्संबंधी धन संचय करने तथा उसका व्यय करने का अधिकार नहीं है। यदि वह सार्वजनिक धन का दुरुपयोग करता है तो नरक का भागी होगा। राजा की स्थिति वेतन भोगी सैनिक के समान ही होती है। वह राजकोष से निश्चित वेतन ही ले सकता है। इसके अतिरिक्त राजा धर्मपूर्ण नीति से राजकोष में वृद्धि कर सकता है, अधर्म पूर्ण नीति से नहीं। इस प्रकार कौटिल्य वित्तीय संसाधन जिनकी आड़ में राजा तानाशाह बन सकता है पर भी जनता का उचित नियन्त्रण स्थापित करता है।

2.5.6.5 स्थानीय संस्थाएँ :- भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय संस्थाओं का अस्तित्व रहा है। इन संस्थाओं को पर्याप्त मात्रा में शक्ति प्राप्त थी। इनके द्वारा जो कार्य संचालित किये जाते थे, उनका सीधा संबंध स्थानीय लोगों के साथ जुड़ा हुआ होता था। अत: ये संस्थाएँ भी राजा की निरंकुशता पर अंकुश लगाने में सहायक थी।

2.5.6.6 धार्मिक नियम एवं रीति-रिवाज :- राजा धार्मिक नियमों और रीति-रिवाजों से घिरा हुआ था। वह इनका पालन करने के लिए बाध्य था। इन नियमों के उल्लंघन करने से प्रजा क्षुब्ध हो जाती थी। तत्कालीन जीवन में धर्म और परलोक की भावना बहुत प्रबल होने के कारण नरक का भय भी राजा को मनमानी करने से रोकता था। उसकी निजी नैतिक, धार्मिक और सामाजिक भावना उसे निरंकुश बनने से रोकती थी।

2.5.6.7 ब्राह्मण और पुरोहित :- ब्राह्मण और पुरोहित भी अपनी मंत्रणाओं द्वारा राजा पर काफी नियंत्रण रखते थे। कौटिल्य लिखता है कि- ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है कि वे राजा को समय-समय पर उसके कर्त्तव्य का स्मरण दिलाते रहे ताकि वह अपने दायित्वों के मार्ग से भटक न सकें।

2.5.6.8 मंत्रिपरिषद का नियंत्रण :- राजा की शक्ति पर मंत्रिपरिषद का उचित नियन्त्रण था। कौटिल्य के अनुसार राजा रूपी रथ के दो चक्र-राजा और मंत्रिपरिषद् हैं। इसलिए मंत्रिपरिषद का अधिकार राजा के बराबर है। इस प्रकार, मंत्रिपरिषद् राजा की शक्ति पर नियन्त्रण रख, उसे निरंकुश बनने से रोकती थी।

2.5.6.9 न्यायिक दण्ड :- कौटिल्य के अनुसार राजा को न्याय-संबंधी सर्वोच्च अधिकार प्राप्त है लेकिन, राजा विधि के अनुसार ही दण्ड दे सकता है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के चौथे अधिकरण के तेरहवें अध्याय में स्पष्ट लिखा है कि- **''जो राजा अदण्डनीय व्यक्ति को दण्ड दे, प्रजा को चाहिए कि उस दण्ड का तीस गुणा दण्ड राजा से वसूल करें।''** ऐसा करने से राजा के पापों की शुद्धि होती है। इस प्रकार राजा अपनी न्यायिक शक्ति का उपयोग भी स्वेच्छाचारी रुप से नहीं कर सकता।

2.5.6.10 सत्य, न्याय और धर्म :- राजा अपनी शक्तियों का प्रयोग स्वेच्छा से नहीं, बल्कि सत्य, न्याय और धर्म के अनुसार करता है। सत्य, न्याय और धर्म राजा की निरंकुशता पर रोक लगाती है।

2.5.6.11 जनमत :- यद्यपि राजतन्त्र में जनमत का कोई महत्त्व नहीं होता है परन्तु सत्य, न्याय, नैतिकता और धर्म पर आधारित राजा हमेशा जनमत का सम्मान करता है। वह ऐसे कदम उठाने से बचेगा जो जनमत में आक्रोश भड़काते हों। अत: जनमत की शक्ति भी राजा पर नियंत्रण रखती है।

❍ निष्कर्ष

इस प्रकार कौटिल्य राजा को सर्वोच्च शक्ति प्रदान करता है, फिर भी राजा पूर्णरूप से निरंकुश नहीं बन सकता। प्रो. अल्तेकर का मत है कि-**''कौटिल्य का राजा बहुत से लौकिक, सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक बंधनों से मर्यादित है।''**

श्री कृष्णाराव का कथन है कि- ''कौटिल्य का राजा अत्याचारी नहीं हो सकता, चाहे वह कुछ बातों में स्वेच्छाचारी रहे क्यों कि वह धर्म शास्त्र और नीतिशास्त्र से सुस्थापित नियमों के अधीन रहता है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि– यद्यपि कौटिल्य ने राजा को सर्वोच्च शक्तियाँ प्रदान की है, फिर भी वह राजा की निरंकुशता का समर्थन नहीं हैं। राजा सदैव प्रजा के हित में कार्य करेगा। प्रजा के सुख में ही राजा का सुख निहित है। इस प्रकार कल्याणकारी राजा कभी भी स्वेच्छाचारी, अत्याचारी और निरंकुश नहीं बन सकता।

2.6 मंडल-सिद्धान्त

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तकों के द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। जो न केवल उस समय की राजनीतिक व्यवस्था के लिए अत्यधिक आवश्यक एवं समयानुकूल भी थे, अपितु इन सिद्धान्तों का आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था में महत्त्व स्वीकार किया जा रहा है। एक सम्प्रभु राज्य को केवल आन्तरिक प्रशासन पर निगरानी की आवश्यकता नहीं होती है अपितु बाहरी मामलों अर्थात् अन्तरराज्यीय संबंधों पर उचित ध्यान देना पड़ता है ताकि कोई अन्य राज्य उस पर आक्रमण कर उसकी एकता, अखण्डता एवं सम्प्रभुता का अपहरण न कर सके। वर्तमान् समय में भी प्रत्येक देश (राज्य) अपनी विदेश नीति को आधार मानकर संबंधों का निर्धारण करता है जिसका मूलभूत आधार होता है, 'राष्ट्रीय हित' इसलिए यह कहा जाता है कि अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में स्थाई शत्रु या स्थाई मित्र नहीं होते, अपितु स्थाई होते हैं राष्ट्रीय हित।

भारतीय राजतन्त्र का एक प्रमुख सिद्धान्त मण्डल सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। अन्तरराज्यीय संबंधों में, राज्य को उसकी भौगोलिक स्थिति के आधार पर मित्र–राष्ट्र या शत्रु राष्ट्र की संज्ञा दी गई है। इस सिद्धान्त की शुरुआत कब हुई यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। वैदिक तथा ब्राह्मणिक साहित्य में भी इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है लेकिन मनुस्मृति तथा महाभारत में इसका विस्तार से विवेचन किया गया है। राज्य की सुरक्षा तथा अस्तित्व को संरक्षित रखने के उद्देश्य से कौटिल्य द्वारा अपने अर्थशास्त्र के छठे अधिकरण के दूसरे अध्याय में मंडल सिद्धान्त की विवेचना प्रस्तुत की गई है। कौटिल्य द्वारा अन्तरराज्यीय संबंधों का यह सिद्धान्त आदर्शों तथा वास्तविकता दोनों को ध्यान में रखकर इतना परिपूर्ण है कि यह सभी युगों में प्रासंगिक रहे। राज्यों के पारस्परिक संबंधों का स्वरूप निर्धारित करते हुए कौटिल्य ने मण्डल सिद्धान्त की स्थापना की।

मंडल का अर्थ है – राज्यों का वृत्त। मंडल–सिद्धान्त भारत के अनेक राज्यों को दृष्टि में रखकर ही प्रतिपादित किया गया है। यह सिद्धान्त एक राजा को विजय की आकांक्षा रखने वाला समझकर उसके चतुर्दिक अन्य राज्यों के मंडल की रचना करता है।

2.6.1 बारह राज्यों का वृत्त

मंडल–सिद्धान्त बारह राज्यों के वृत्त पर आधारित है। इस सिद्धान्त में मंडल का केन्द्र ऐसा राजा होता है, जो पड़ौसी राज्यों को जीत कर अपने में मिलाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। कौटिल्य ने ऐसे राजा को विजिगीषु राजा कहा है। मंडल में कुल बारह राज्य होते हैं– विजिगीषु, अरि, मित्र, अरि–मित्र, मित्र–मित्र, अरिमित्र–मित्र, पार्ष्णिग्राह, आक्रंद, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रंदासा, मध्यम और उदासीन।

अर्थशास्त्र के अनुसार राज्य मंडल की संरचना

10 अरिमित्र मित्र	
9 पार्ष्णिग्राहासार	
8 आक्रंद	
7 पार्ष्णिग्राहा	
1 विजिगीषु	11. मध्यम
2 अरि	
3 मित्र	
4 अरिमित्र	
5 मित्र–मित्र	12. उदासीन
6 अरिमित्र–मित्र	

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भौगोलिक दृष्टि से विजिगीषु मंडल के मध्य में रहता है। अरि, मित्र, अरिमित्र, मित्र-मित्र और अरिमित्र-मित्र ये पांच राज्य विजिगीषु के सामने तथा पार्ष्णिग्राह, आक्रांद, पार्ष्णिग्राहासार और आक्रंदासार-ये चार राज्य उसके पीछे रहते हैं। शेष दो राज्य-मध्यम और उदासीन-बगल में कहीं भी रह सकते हैं।

कौटिल्य के शब्दों में,- ''विजिगीषु राजा की विजय-यात्रा में आगे क्रमश: शत्रु, मित्र, अरिमित्र, मित्र-मित्र और अरिमित्र मित्र-ये पांच राजा आते हैं। इसी प्रकार उसके पीछे क्रमश: पार्ष्णिग्राह, आक्रांद, पार्ष्णिग्राहसार और आक्रंदासार-ये चार राजा होते हैं। विजिगीषु राजा के सहित आगे-पीछे के राजाओं को मिलाकर एक राजमंडल कहलाता है।''

मंडल के बारह राज्यों का उल्लेख निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है-

2.6.1.1 विजिगीषु :- अपने राज्य के विस्तार की आकांक्षा रखने वाला राजा विजिगीषु कहलाता है। इसका स्थान मंडल के बीच में होता है।

2.6.1.2 अरि :- विजिगीषु के सामने की ओर उसके साथ लगा हुआ राज्य उसका शत्रु होता है। इसलिए वह अरि कहलाता है। भारत-पाकिस्तान, भारत-चीन, इजराइल-अरब देश आदि इस दृष्टि से एक-दूसरे के शत्रु है।

2.6.1.3 मित्र :- अरि के सामने का राज्य मित्र कहलाता है, जो विजिगीषु का मित्र और अरि का शत्रु होता है। पाकिस्तान और चीन की मित्रता भी इसी कारण है कि दोनों भारत को अपना अरि मानते हैं।

2.6.1.4 अरिमित्र :- मित्र के सामने वाला राज्य अरिमित्र कहलाता है। क्योंकि वह अरि का मित्र होता है और इसलिए विजिगीषु के साथ भी उसे मित्रता होती है।

2.6.1.5 मित्र-मित्र :- अरिमित्र के सामने वाला राज्य मित्र-मित्र कहलाता है, वह मित्र राज्य का मित्र होता है और इसलिए विजिगीषु के साथ भी उसे मित्रता होती है।

2.6.1.6 अरिमित्र-मित्र :- मित्र-मित्र सामने वाला राज्य अरिमित्र-मित्र कहलाता है। क्योंकि, वह अरिमित्र राज्य का मित्र होता है और इसलिए अरि राज्य के साथ भी उसका संबंध मैत्रीपूर्ण होता है।

2.6.1.7 पार्ष्णिग्राह :- विजिगीषु के पीछे जो राज्य रहता है, वह पार्ष्णिग्राह कहलाता है। अरि की तरह विजिगीषु का शत्रु ही होता है।

2.6.1.8 आक्रांद :- पार्ष्णिग्राह के पीछे जो राज्य होता है, उसे आक्रंद कहा जाता है। वह विजिगीषु का मित्र होता है।

2.6.1.9 पार्ष्णिग्राहासार :- आक्रंद के पीछे वाला राज्य पार्ष्णिग्राहासार कहलाता है और यह पार्ष्णिग्राह का मित्र होता है।

2.6.1.10 आक्रंदासार :- पार्ष्णिग्राहासार के पीछे वाला राज्य आक्रंदासार कहलाता है और यह आक्रंद का मित्र होता है।

2.6.1.11 मध्यम :- मध्यम ऐसा राज्य है, जिसका प्रदेश विजिगीषु और अरि राज्य दोनों की सीमा से लगा हुआ रहता है। वह विजिगीषु और अरि दोनों से अधिक शक्तिशाली होता है। वह दोनों की सहायता भी करता है और आवश्यकता पड़ने पर दोनों का अलग-अलग मुकाबला भी करता है।

2.6.1.12 उदासीन :- उदासीन राजा का प्रदेश विजिगीषु, अरि और मध्यम इन तीनों राज्यों की सीमाओं से परे होता है। यह बहुत शक्तिशाली राज्य होता है। उपर्युक्त तीनों के परस्पर मिले होने की दशा में वह उनकी सहायता कर सकता है, उनके परस्पर न मिले होने की दशा में वह प्रत्येक का मुकाबला भी कर सकता है।

इस प्रकार कौटिल्य कहता है कि राजा को राज्य की दृष्टि और स्थिति को ध्यान में रखकर नीति का निर्धारण करना चाहिए, ऐसा करने से राज्य के हितों में उत्तरोत्तर वृद्धि हो सकती है और राज्य एक शक्ति के रूप में उभरकर अपनी पहचान कायम कर सकता है।

2.6.2 मंडल सिद्धान्त का विश्लेषण

मंडल सिद्धान्त की उपर्युक्त विवेचना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं —

प्रथम, यद्यपि मंडल शब्द बारह राज्यों के समूह के एक वृत्ताकार क्षेत्र की ओर संकेत करता है, तथापि उन राज्यों के स्थान की कल्पना एक सीधी रेखा में भी की जा सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

द्वितीय, मंडल सिद्धान्त में राज्यों का नामकरण किया गया है। ये सभी नाम परिस्थितियों और समयानुसार बदल सकते हैं। एक ही राज्य परिवर्तित स्थिति के कारण विजिगीषु या अरि या मित्र भी हो सकता है।

तृतीय, मंडल के निर्माण के लिए बारह राज्यों का होना आवश्यक नहीं है। काल और परिस्थितियों के अनुसार राज्यों की संख्या में कमी या वृद्धि हो सकती है। संख्या बारह तो केवल इस बात का सूचक है कि यदि कोई राज्य अपने समीप स्थित राज्य को युद्ध द्वारा अधीनस्थ करना चाहे, तो वैसी स्थिति में बारह संभावित संबंधों की कल्पना की जा सकती है।

चतुर्थ, मध्यम और उदासीन राज्यों को छोड़कर मंडल के अन्य सभी राज्यों की शक्ति प्राय: समान होती है। इस प्रकार, मंडल शक्तिशाली राज्यों का एक समूह होता है, जो दो विरोधी गुटों में विभक्त रहता है और जहाँ एक गुट का नेता समस्त मंडल पर सर्वोच्चता स्थापित करने का प्रयत्न करता है।

पंचम, मंडल सिद्धान्त शक्ति सन्तुलन के सिद्धान्त पर आधारित है, डॉ. अल्तेकर का मत है कि– ''प्राचीन विचारक यह जानते थे कि युद्धों को पूर्ण रूप से समाप्त नहीं किया जा सकता। अत: उन्होंने इसके खतरों को कम करने के लिए एक ऐसे सिद्धान्त का समर्थन किया, जिसके अनुसार देश में विद्यमान अनेक छोटे नए राज्यों में शक्ति का विवेकपूर्ण सन्तुलन बना रह सके और युद्ध न हों।''

षष्ठ, दुर्बल राज्यों को अपने पड़ौसी शक्तिशाली राज्यों से सतर्क रखने और उनकी विस्तार नीति से अपनी रक्षा हेतु समान राज्यों से मैत्री स्थापित करने के लिए मंडल बनाने की सलाह दी है।

सप्तम, मंडल सिद्धान्त के अनुसार एक राज्य अपने पड़ौसी का शत्रु और उसके पड़ौसी का मित्र होता है। मित्र के बाद अरिमित्र, उसके आगे मित्र–मित्र तथा उसके पश्चात् अरिमित्र–मित्र रहते हैं।

2.6.3. मंडल सिद्धान्त एवं वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय राजनीति

कौटिल्य द्वारा प्रस्तुत मंडल सिद्धान्त न केवल उस समय के राजाओं के लिए तैयार किया गया था अपितु इस सिद्धान्त का आज भी महत्त्व बना हुआ है। वर्तमान एक ध्रुवीय विश्व राजनीति में संयुक्त राज्य अमरीका का वर्चस्व देखा जा सकता है, जिसकी कल्पना हम कौटिल्य के विजिगीषु राज्य से कर सकते हैं, जो अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में अपना उत्तरोत्तर प्रभाव बढ़ा रहा है।

2.6.4 मंडल सिद्धान्त का मूल्यांकन

मंडल सिद्धान्त के व्यापक महत्त्व के बावजूद इसकी निम्नलिखित रूप से आलोचनाएँ की जाती हैं–

2.6.4.1 भौगोलिक दृष्टि से महत्त्व समाप्त :– आलोचकों का मत हैं कि भौगोलिक दृष्टि से आज मंडल–सिद्धान्त का महत्त्व समाप्त हो गया है, क्योंकि, यह सिद्धान्त भारत के अनेक राज्यों को दृष्टि में रखकर रचा गया है, जबकि वर्तमान में सारा भारत एकता के सूत्र में बंधा हुआ है।

2.6.4.2 पड़ौसी देश एक–दूसरे का शत्रु नहीं :– मंडल सिद्धान्त के अनुसार पड़ौसी राज्य एक–दूसरे का शत्रु होता है लेकिन आधुनिक समय में स्थिति विपरीत है आज प्रत्येक प्रभावशाली राज्य की प्राथमिकता अपने पड़ौसी राज्यों से मित्रतापूर्वक संबंध स्थापित करने की रही है। जैसे–भारत जो अपने पड़ौसी देशों के साथ संबंधों में सुधार करने की हर सम्भव पहल कर रहा है। चाहे पड़ौसी देश कितनी भी उसके प्रति नकारात्मक सोच क्यों न रखते हों। इस संबंध में यद्यपि भारत का प्रत्येक प्रधानमंत्री का प्रयास उल्लेखनीय रहा है लेकिन इन्द्रकुमार गुजराल द्वारा इस संबंध में जो नीति अपनायी उसे 'गुजराल सिद्धान्त' के नाम से पुकारा जाता है और अटल बिहारी वाजपेयी ने भी इस संबंध में सफल प्रयास किये वर्तमान प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहनसिंह भी इस दिशा में सकारात्मक प्रयास कर रहे हैं।

2.6.4.3 केवल सीमा के आधार पर संबंधों का निर्धारण नहीं :– वर्तमान समय में, जबकि व्यापारिक तथा आर्थिक हित और विचारधारा संबंधी भेद भी संघर्ष के कारण होने लगे हैं। ऐसी स्थिति में, केवल सीमा के आधार पर राज्यों के पारस्परिक संबंधों की व्याख्या नहीं की जा सकती।

2.6.4.4 विजिगीषु राज्य का कोई स्थान नहीं :– आज के युग में विजिगीषु राज्य का कोई स्थान नहीं है। उसकी विस्तार नीति और युद्ध नीति को किसी भी कीमत पर अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था स्वीकार नहीं कर सकती। यदि कोई देश ऐसा करने का प्रयास करता है तो उसे व्यापक अन्तरराष्ट्रीय प्रतिरोध का सामना करना पड़ सकता है और आवश्यकता पड़ने पर उसे अन्तरराष्ट्रीय बिरादरी से भी बाहर कर प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.6.4.5 स्थाई शत्रु या मित्र की धारणा गलत :- वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के संबंध में यह कहा जाता है कि स्थाई शत्रु या स्थाई मित्र नहीं होते, बल्कि स्थाई होता हैं राष्ट्रीय हित और इसे ही आधार मानकर एक राष्ट्र अपनी नीति का निर्धारण करता है। इसमें एक राष्ट्र अपने शत्रु के भी इतना निकट चला जाता है जिसकी कल्पना हम कर ही नहीं सकते, जैसे संयुक्त राज्य अमरीका और चीन या भारत के बीच नवें दशक तक संबंध कड़वाहट भरे रहे लेकिन दोनों पक्षों को अन्तरराष्ट्रीय बाध्यताओं के चलते संबंधों में मधुरता लानी पड़ी। इस प्रकार मण्डल सिद्धान्त के चिर मित्र या चिर शत्रु की धारणा नाकारा सिद्ध हो रही है।

2.6.5 मंडल सिद्धान्त का महत्त्व

उपर्युक्त आलोचनाओं से यह नहीं समझना चाहिए कि कौटिल्य के मंडल सिद्धान्त का कोई महत्त्व नहीं है। वस्तुत: यदि मंडल सिद्धान्त का मूल्यांकन तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में करें, तो कौटिल्य के मंडल सिद्धान्त की सार्थकता सिद्ध होगी।

❍ निष्कर्ष

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मंडल सिद्धान्त कौटिल्य की विदेश-नीति संबंधी सूझ-बूझ और व्यावहारिक राजनीति में उसकी दक्षता तथा दूरदर्शिता का परिचायक है। मंडल-सिद्धान्त अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के मूलभूत सिद्धान्तों और वास्तविक तथ्यों तथा घटनाओं पर आधारित है। कौटिल्य का मंडल-सिद्धान्त आज भी विदेश नीति का स्थायी प्रकाश स्तम्भ है।

2.7 षाड्गुण्य नीति

कौटिल्य अपने राजा को केवल राज्य की सीमा के भीतर प्रभावशाली नहीं बनाना चाहता था, अपितु उनकी सोच व्यापकता लिये हुए थी। कौटिल्य के विचार में राजा को अन्तरराज्यीय संबंधों को कुशलता एवं दूरदर्शिता के साथ लागू करना चाहिए। सफल कूटनीति के होने से राजा अपना प्रभाव बिना किसी युद्ध के बढ़ा सकता है।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के सप्तम् अधिकरण में विदेश नीति या परराष्ट्र नीति विदेशी राज्यों के प्रतिव्यवहार के संबंध में षाड्गुण्य नीति अर्थात् छहलक्षणों वाली नीति का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त में प्राचीन भारत की राजनीति में अधिराज और अधीनस्थ राज्यों के संबंधों को संचालित करने की समस्या पर विशेष ध्यान दिया गया है। इसे कौटिल्य के राज्य शिल्प की कुंजी कहा जा सकता है। इस संदर्भ में, कौटिल्य, प्लेटो, अरस्तु, मेकियावैली और दूसरे पाश्चात्य विचारकों से भी आगे हैं। आचार्य मनु द्वारा भी मनुस्मृति में षाड्गुण्य नीति का उल्लेख किया गया है।

कौटिल्य के राजनीतिक चिन्तन में कूटनीति और राज्य शिल्प की नींव भौगोलिक और आर्थिक तत्त्वों के आधार पर रखी गई हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि भारत के विस्तृत मैदानी इलाके पर बड़े-बड़े राज्यों के विकास की सम्भावना थी, फिर भी प्राचीन काल में संचार और परिवहन के उन्नत साधनों के अभाव में कोई केन्द्रीय सरकार अधिक दूर तक अपना नियंत्रण नहीं रख सकती थी। अत: यह देश प्राय: छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था और प्रत्येक राज्य अपने पड़ौसी राज्य को हड़पने के लिए तैयार रहता था। राज्य के विस्तार की आकांक्षा शक्तिशाली राज्यों का लक्षण थी, जबकि कम शक्तिशाली राज्य अपनी स्वाधीनता कायम रखने के लिए अधिक शक्तिशाली राज्यों के साथ समझौता कर लेते थे। शक्तिशाली राजा अपने अधिपत्य की आकांक्षा की पूर्ति के लिए कूटनीति का प्रयोग करते थे। जिसकी विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

2.7.1 षाड्गुण्य नीति की परिभाषा

कौटिल्य ने षड्गुणों को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया है - ''उनमें दो राजाओं का कुछ शर्तों पर मेल हो जाना संधि, शत्रु का कोई अपकार करना विग्रह, उपेक्षा करना आसन, चढ़ाई करना यान, आत्मसमर्पण करना संश्रय और संधि विग्रह दोनों से काम लेना द्वैधीभाव कहलाता है- यही छहगुण हैं।''

2.7.2 षाड्गुण्य का प्रयोग

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में उन तथ्यों का भी उल्लेख किया है कि इसका प्रयोग कब करना चाहिए ? इस संबंध में कौटिल्य ने कहा है कि, ''शत्रु की तुलना में अपने की निर्बल समझने पर संधि कर लेनी चाहिए। शत्रु की तुलना में स्वयं को बलवान समझने पर विग्रह कर लेना चाहिए, शत्रु बल और आत्मबल में कोई अन्तर न समझे तो आसन को अपना लेना चाहिए। यदि स्वयं को सर्व सम्पन्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

षाड्गुण्य नीति

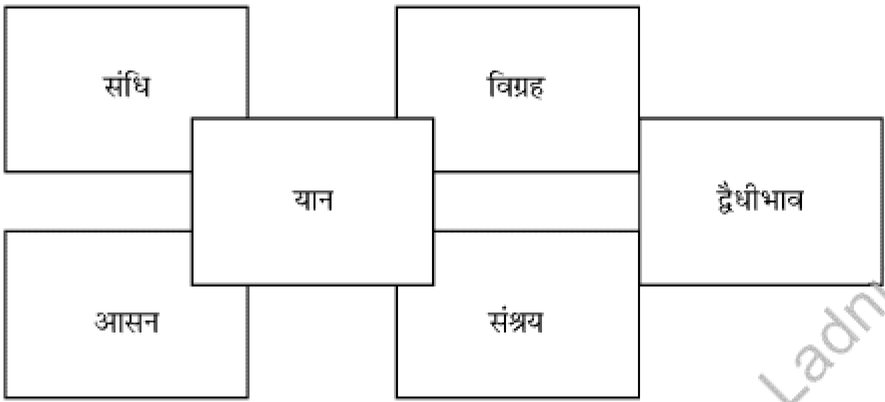

- ❖ राज्य के हितों के अभिवृद्धि करने वाले प्रमुख साधन हैं।
- ❖ राजा से अपेक्षा की जाती है कि वह इन साधनों का प्रयोग सावधानी पूर्वक करेगा।
- ❖ विग्रह का प्रयोग अन्तिम विकल्प के रूप में ही होना चाहिए।

और शक्ति सम्पन्न समझें तो चढ़ाई (यान) कर देना चाहिए और अपने को निरा अशक्त समझने पर संश्रय से काम लेना चाहिए। यदि सहायता की अपेक्षा समझे तो द्वैधीभाव को अपनाना चाहिए।''

कौटिल्य आगे यह भी कहता है कि देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार इस षाड्गुण्य नीति में परिवर्तन किया जा सकता है। इन सभी का मूल उद्देश्य राज्य द्वारा अपने हितों की अभिवृद्धि करना है।

2.7.2.1 संधि :- संधि दो राजाओं के बीच हुए समझौते को कहते हैं। कौटिल्य के अनुसार किसी भी राजा के लिए संधि करने की नीति का उद्देश्य अपने शत्रु राजा की शक्ति को नष्ट करना और स्वयं को शक्तिशाली बनाना होता है। उराके अनुशार शत्रु रो भी उरा समय संधि कर ली जानी चाहिए, जब शत्रु पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती हो और स्वयं को सबल तथा शत्रु को निर्बल करने के लिए कुछ समय प्राप्त करना आवश्यक हो। इसके अलावा कौटिल्य अर्थशास्त्र में अनेक प्रकार की संधियों का उल्लेख करता है।

2.7.2.2 विग्रह या युद्ध :- विग्रह का अर्थ युद्ध है। इस नीति का अनुसरण राजा को तभी करना चाहिए जब वह अपनी शक्ति के बारे में पूर्णतया आश्वस्त हो और शत्रु को कमजोर देखे, उसके सैनिकों तथा राज्य की जनता में शत्रु के विरूद्ध युद्ध करने के लिए उत्साह हों, राष्ट्र भक्त की भावना अपने चरम उत्कर्ष पर हो, राज्य की युद्ध संबंधी व्यवस्थाएं पूर्ण हो, राज्य की आक्रामक तथा प्रतिरक्षात्मक तैयारियों में कोई कम न हो। युद्ध की नीति का अनुसरण करने से पूर्व राज्य मण्डल के मित्र-राज्यों की सहायता के बारे में भी राजा को पूर्णतया आश्वस्त हो जाना चाहिए। विग्रह की नीति अपनाते हुए शत्रु भूमि के भागों पर तुरन्त निन्यत्रण स्थापित करना चाहिए। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के सातवें अधिकरण के छठे अध्याय में युद्ध के तीन प्रकार बताये हैं। (क) प्रकाश युद्ध (ख) कूट युद्ध (ग) तृष्णीं युद्ध।

2.7.2.3 यान :- यान का अभिप्राय: वास्तविक आक्रमण है। इस नीति का उपयोग तभी करना चाहिए, जबकि राजा अपनी शक्ति को सुदृढ़ देखे और उसे यह विश्वास हो जाए कि शत्रु का नाश करना आवश्यक है और बिना आक्रमण किये शत्रु को वश में करना सम्भव नहीं है।

2.7.2.4 आसन या तटस्थता :- किसी समय की प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे रहना आसन अर्थात् तटस्थता कहलाता है। अपनी वृद्धि के लिये चुपचाप बैठे रहना भी आसन कहलाता है। राजा आसन की नीति तभी अपनाता है, जब वह यह समझता है कि इतना समय नहीं है कि शत्रु का नाश कर सके और न ही शत्रु इतना प्रबल कि उसका नाश किया जा सके। आसन की नीति अपनाते हुए उसे अपनी शक्तियों में अभिवृद्धि करने की चेष्टा रखनी चाहिए। यदि राजा आसन की आड़ में हाथ-पर हाथ धरे बैठा रहे और अन्य अन्तरराज्यीय घटनाओं को मूक दर्शक की भाँति देखता है तो उससे कमजोर और कायर राजा कोई और नहीं हो सकता। आसन के दो प्रकार होते हैं-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(क) विग्रह आसन :- जब विजिगीषु और शत्रु दोनों ही संधि करने की इच्छा रखते हों और परस्पर एक-दूसरे को नष्ट करने की शक्ति न रखते हों तो कुछ काल युद्ध कर चुपचाप बैठ जाते हैं।

(ख) सन्धाय आसन :- जब संधि करके चुप बैठते हैं।

2.7.2.5 संश्रय :- संश्रय का अर्थ है बलवान राजा का शरण लेना। यदि राजा शत्रु को हानि पहुँचाने की क्षमता नहीं रखता, साथ ही यदि वह अपनी रक्षा करने में भी असमर्थ हो, तो उसे बलवान राजा की शरण लेनी चाहिए। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस राजा की शरण ले रहे हैं, वह शत्रु से अधिक शक्तिशाली हो। लेकिन, कौटिल्य का मत है,-''यदि ऐसा बलवान राजा कोई न मिले तो अपने शत्रु राजा का ही आश्रय लेना चाहिए।''

2.7.2.6 द्वैधीभाव :- द्वैधीभाव की नीति से कौटिल्य का अभिप्राय किसी राजा द्वारा एक के साथ संधि और दूसरे के साथ विग्रह करने से है। यदि राजा यह समझे की इस नीति का अनुसरण करने से यदि वह अपने को बलवान तथा शत्रु को निर्बल बना सके तो अपनाना चाहिए ताकि वह अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ा सके तथा शत्रु का अपकार करने में समर्थ हो सके।

2.8 शांति-स्थापना की अन्तरराज्यीय नीति के उपाय

अन्तरराज्यीय संबंधों के सफल संचालन के लिए प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारकों के द्वारा सात उपायों की गणना की है। इनमें 'साम', 'दाम', 'दण्ड', 'भेद', 'माया', 'उपेक्षा', तथा 'इन्द्रजाल' को शामिल किया गया है। कौटिल्य ने इनमें से चार उपायों को महत्त्व प्रदान किया है। तदनुसार, मंडल के तहत, राजनीति का संचालन जिन साधनों के द्वारा किया जाना था, उनमें साम, दाम, दण्ड तथा भेद चारों थे। जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

2.8.1 साम

'साम' अर्थात् शांति की नीति। अपने से अधिक शक्तिशाली राजा के प्रति यही नीति उपयुक्त है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि अधिक शक्तिशाली राजा से युद्ध मोल लेकर अपना सर्वनाश ही किया जा सकता है, हित नहीं किया जा सकता।

2.8.2 दाम

'दाम' अर्थात् धन देकर अपने से शक्तिशाली राजा को संतुष्ट करने का तरीका ताकि वह आक्रमण के लिए तत्पर न हो।

2.8.3 दंड

'दंड' अर्थात् बल प्रयोग। अपने से निर्बल राजा से युद्ध करके या उस पर दबाव डालकर आधिपत्य कायम करने की नीति।

2.8.4 भेद

'भेद' अर्थात् आसपास के राजाओं के बीच आपस में फूट डाल देने की नीति ताकि वे आपस में ही उलझे रहें, एक-दूसरे की शक्ति का उन्मूलन करते रहें और उनमें भेद पैदा करने वाला उन पर सुख पूर्वक राज्य करें।

❍ निष्कर्ष

कौटिल्य ने लिखा है कि निर्बल राजा को 'साम' और 'दाम' की नीति का प्रयोग करना चाहिए, जबकि बलवान राजा को 'दण्ड' और 'भेद' की नीति से बहुत लाभ होगा। कुछ भी हो, कूटनीति की ये सारी विधियाँ साधारण नैतिकता की कसौटी पर खरी नहीं उतरती है। इस तरह कौटिल्य ने राजनीति को साधारण नैतिकता के बंधनों से मुक्त रखा है। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत यूरोपीय दार्शनिक मेकियावैली (1469-1527) के विचारों का पूर्व संकेत मिलता है। कौटिल्य ने छलकपट और छिपकर मंत्रणा देने की विधि को भी राज्य शिल्प का वैध तरीका स्वीकार किया है। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि कौटिल्य तथा अन्य प्राचीन भारतीय विचारकों ने केवल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उन लोगों के साथ छल-कपट की नीति अपनाने का समर्थन किया है जो राज्य के विध्वंस पर तुले हों। इस तरह उनकी दृष्टि में छल-कपट राजनीति का एक मात्र तरीका नहीं था, बल्कि यह '**आपद्धर्म**' का मार्ग था, अर्थात् केवल आपत्ति या संकट के समय यह रास्ता अपनाने की अनुमति दी गई थी।

2.9 गुप्तचर-व्यवस्था

गुप्तचर-व्यवस्था राजा एवं राज्य दोनों के लिए लाभप्रद होती है, क्यों कि जब कभी कोई इनके विरूद्ध षड्यत्र रचने का प्रयास करते है तो तत्काल उसे दबाया जा सकता है। इसलिए गुप्तचर-व्यवस्था भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग रही है। ऋग्वेद और अर्थवेद में गुप्तचरों का उल्लेख मिलता है। तरुण और अग्नि के अनेक गुप्तचर थे। रामायण और महाभारत में भी गुप्तचरों का वर्णन किया गया है। प्राचीन काल में अनेक राजनीतिक समस्याओं का समाधान गुप्तचरों के माध्यम से किया जाता था। लेकिन, कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के प्रथम अधिकरण के दसवें और ग्यारहवें अध्याय में गुप्तचर-व्यवस्था का सविस्तार वर्णन किया है।

2.9.1 गुप्तचरों का वर्गीकरण

कौटिल्य के अनुसार गुप्तचर दो प्रकार के होते हैं- 1. स्थायी गुप्तचर और 2. भ्रमणशील गुप्तचर

2.9.1.1 स्थायी गुप्तचर :- संस्था-गुप्तचर:- कौटिल्य ने स्थायी गुप्तचर को पाँच श्रेणियों में विभक्त किया है- 1. कापटिक 2. उदास्थित 3. गृहपतिक 4. वैदेहक और 5. तापस

1. कापटिक गुप्तचर :- दूसरों के रहस्यों को जानने वाला, बड़ा दबंग और विद्यार्थी की वेश-भूषा में रहने वाला गुप्तचर कापटिक कहलाता है।

2. उदास्थित गुप्तचर :- बुद्धिमान, सदाचारी, सन्यासी के वेष में रहने वाले गुप्तचर का नाम उदास्थित था।

3. गृहपतिक गुप्तचर :- बुद्धिमान, पवित्र हृदय और गरीब किसान के वेष में रहने वाले गुप्तचर को गृहपतिक कहते हैं।

4. वैदेहक गुप्तचर :- बुद्धिमान, पवित्र हृदय और गरीब व्यापारी के वेष में रहने वाले गुप्तचर को वैदेहक गुप्तचर कहते हैं।

5. तापस गुप्तचर :- जीविका के लिए सिर मुंडाए या जटा धारण किए हुए, राज का कार्य करने वाला गुप्तचर तापस कहलाता है।

2.9.1.2 भ्रमणशील गुप्तचर-संचार गुप्तचर :- कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के पहले अधिकरण के ग्यारहवें अध्याय में गुप्तचर का वर्णन किया है। वे हैं- 1. सत्री 2. तीक्ष्ण 3. रसद तथा 4. परिव्राजिका

उपर्युक्त गुप्तचरों के अलावा कौटिल्य ने राजा को विषकन्या रखने का भी परामर्श दिया है। विषकन्या विष खिलाकर पाली जाती थी। शत्रु के पास उसे भेजा जाता था और वह अपने रूप, यौवन, मुस्कान तथा हावभाव से आकर्षित कर उसे विषय-भोग के लिए तैयार कर लेती थी। जब शत्रु विष कन्या से संभोग करता था तो तड़प-तड़प कर मर जाता था।

कौटिल्य ने गुप्तचरों के प्रमुख कार्यों का निम्नलिखित रूप से उल्लेख किया है -

2.9.2 गुप्तचरों के कार्य

1. मूल्यवान सूचनाएँ प्राप्त करना, अफवाहों तथा वास्तविकता को जानना तथा उन्हें राजा तक पहुंचाना।
2. राज्य व्यवस्था में बाधक अवांछनीय तथा षड्यन्त्रकारी तत्त्वों का पता लगाना अर्थात् सुदृढ़ता व सामाजिक मेल-मिलाप को बनाये रखना।
3. अपने देश में शत्रुओं की गतिविधियों का पता लगाना तथा उनकी योजनाओं को विफल करना।
4. अमात्यों की शत्रुता की जांच करना।
5. प्रजा की मन: स्थिति का पता लगाना-स्वस्थ जनमत का निर्माण करना।
6. दुष्ट लोगों का पता लगाना।
7. राजनीतिक हत्याएँ करवाना।
8. शत्रु देश में भेद उत्पन्न करवाना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9. गुप्तचरों से प्राप्त सूचनाओं का सत्यापन।

10. गुप्तचर उच्च-अधिकारियों और समस्त राज्य कर्मचारियों के आचरण की शुद्धता का पता लगाकर राजा को सूचित करता रहता है।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के पहले अधिकरण के दसवें अध्याय में स्पष्ट कहा है कि- ''राज्य में कर्मचारियों और प्रजा की शुद्धता जानने के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति की जाए। राजा धन और मान द्वारा गुप्तचरों को सदा सन्तुष्ट रखें।''

❍ निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में गुप्तचर-व्यवस्था का विश्लेषण बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से किया है। स्थायी गुप्तचर और भ्रमणशील गुप्तचर की श्रेणियाँ अपना विशेष महत्त्व रखती हैं। कौटिल्य ने गुप्तचरों के महत्त्वपूर्ण कार्यों को स्पष्ट किया है। वह उनकी पैनी दृष्टि का परिचायक है। उसकी दृष्टि में राज्य की सुरक्षा के लिए एक सुसंगठित गुप्तचर व्यवस्था अति आवश्यक है। इस प्रकार आधुनिक राज्य की गुप्तचर व्यवस्था कौटिल्य के विचारों पर आधारित है।

2.10 कौटिल्य के धार्मिक विचार

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के अनेक प्रसंगों में धर्म शब्द का प्रयोग किया है। उसने धर्म की परिभाषा दायित्वों के ऐसे केन्द्र तथा आचार संहिता के रूप में की जो समाज तथा राज्य दोनों को पोषित करती है। इन सबकी जानकारी उनकी राजनैतिक विचारधारा को समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। धर्म भारतीय समाज और राजनीति का महत्त्वपूर्ण पहलू हमेशा से रहा है, ऐसा माना जाता है कि संगठित समाज की संरचना में धर्म का व्यापक योगदान रहा है, जिससे लोगों को नैतिकता, अनुशासन एवं कर्त्तव्यों के बारे में जानकारी मिलती है।

2.10.1 धर्म का अर्थ

धर्म शब्द मूल धृ से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ धारण करना होता है। दूसरे शब्दों में धर्म वह सार है, जो किसी वस्तु का पोषण करता या जीवित रखता है। इस प्रकार धर्म मनुष्य को सही दिशा प्रदान करते हुए जीना सिखाता है।

2.10.2 धर्म का प्रयोग

कौटिल्य ने धर्म का प्रयोग तीन अर्थों में किया है-

2.10.2.1 सामाजिक कर्त्तव्य के रूप में :- सामाजिक कर्त्तव्य के रूप में कौटिल्य का विचार है कि एक आदर्श राजा को धर्मनिष्ठ होना चाहिए और उसे धर्म की रक्षा करनी चाहिए। धर्म का उल्लंघन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को दण्डित करना चाहिए, क्योंकि धर्म के नाश होने से राजा पर विपत्ति आती है। कौटिल्य ने लिखा है कि अपने धर्म का पालन करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए राजा का कर्त्तव्य बनता है कि वह प्रजा को धर्म और कर्म के मार्ग से भ्रष्ट न होने दें।

2.10.2.2 नैतिक कानून के रूप में :- कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के तीसरे अधिकरण के प्रथम अध्याय में धर्म को सत्य पर आधृत नैतिक कानून के रूप में प्रयोग किया है। उसके अनुसार किसी विवाद का निर्णय चार उपायों द्वारा किया जा सकता है- धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजाज्ञा। उनमें धर्म सच्चाई में, व्यवहार साक्षियों में, चरित्र समाज के जीवन में और राजाज्ञा राजकीय शासन में स्थित रहती है। जहाँ भी व्यवहार व चरित्र का धर्म के साथ विरोध होता है, वहां धर्म को ही प्रमाण माना जाता है, क्योंकि कौटिल्य का कथन है कि-धर्मपूर्वक प्रजा पर शासन करना ही राजा का निजी धर्म है। वही उसको स्वर्ग तक ले जा सकता है। इसके विपरीत प्रजा की रक्षा न कर उसको पीड़ा पहुँचाने वाला राजा कभी सुखी नहीं रहता। धर्म, व्यवहार, चरित्र और न्यायपूर्वक शासन करता हुआ राजा सारी पृथ्वी का स्वामित्व प्राप्त करता है। इस प्रकार यहां कौटिल्य ने धर्म का प्रयोग नैतिक कानून के रूप में भी किया है।

2.10.2.3 नागरिक कानून के रूप में :- कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के तीसरे अधिकरण का नाम ही धर्मस्त्रीय रखा है। इसके अन्तर्गत उसने विवाह, तलाक, ऋण, उत्तराधिकार, क्रय-विक्रय, चोरी-डकैती, मार-पीट आदि नागरिक कानूनों का वर्णन किया गया है। इन नागरिक कानूनों की व्याख्या करने वाले न्यायाधीशों को कौटिल्य ने धर्मशास्त्र की संज्ञा दी है। इस प्रकार, उसने धर्म का प्रयोग नागरिक कानून के रूप में किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.10.3 धर्म तथा राजनीति

कौटिल्य ने धर्म तथा राजनीति के घनिष्ठ एवं अटूट संबंधों का उल्लेख किया है और राजनीतिक सिद्धान्तों एवं व्यवस्थाओं को धर्म के अनुसार चलाने पर बल दिया हैं। जिसका उल्लेख निम्नलिखित शीर्षकों द्वारा किया जा सकता है-

2.10.3.1 आन्तरिक नीति :- कौटिल्य के अनुसार राज्य की आन्तरिक नीति धर्म से प्रभावित रहती है। आन्तरिक नीति के क्षेत्र में कौटिल्य का राज्य वेदों पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने का प्रयास करता है। धर्म क्या है ?अधर्म क्या है ?इस का निर्धारण तीनों वेदों द्वारा किया जा कसता है। प्रत्येक वर्ण स्वधर्म का पालन करता है, जो उसका उल्लंघन करना है, उसे राज्य दण्ड देता है। जो प्रजा वर्ण और आश्रम के नियमों का पालन करती है और जो वैदों के अनुसार चलती है, वह प्रजा सदा सुखी रहती है और उसका कभी भी नाश नहीं होता। विवादों का निर्णय भी धर्म के अनुसार होता है। कौटिल्य का मत है कि धर्म पर आधारित राज्य ही स्थायी और सुदृढ़ होता है।

2.10.3.2 विदेश नीति :- विदेश नीति के निर्धारण में भी धर्म का प्रभाव पड़ता है। नए राज्य प्राप्त करने पर विजिगीषु सदा अपने धर्म, कर्म, अनुग्रह, करमाफी, दान, सम्मान आदि श्रेष्ठ कार्यों से प्रजा की भलाई करें। राजा अपने प्रजाजनों के समान ही शील, वेष, भाषा और आचरण का व्यवहार करें और प्रजा के विश्वासों की तरह राष्ट्र देवता, समाजोत्सव तथा विहारों से अपनी भक्ति भावना रखें। विजिगीषु राजा, समुचित राज-भाग, कर माफी और सुख सुविधाएँ देकर प्रजा की रक्षा करें। वह सभी धर्मों के देवताओं और आश्रमों की पूजा कराए तथा विद्वानों, वक्ताओं तथा धर्मपरायण व्यक्तियों को भूमि तथा द्रव्य देकर उनसे किसी भी प्रकार का राजकर वसूल न करें।

2.10.3.3 देवताओं को राज्य संरक्षण :- कौटिल्य के अनुसार अनेक देवताओं को राज्य का संरक्षण प्रदान किया गया है और उनकी पूजा की व्यवस्था की गई है। राजधानी के उत्तरी भाग में नगर देवता, राजकुल देवता और ब्राह्मणों का वास स्थान होना चाहिए। कौटिल्य ने लिख है कि- दुर्गा, विष्णु, जयन्त, इन्द्र शिव, वरुण, अश्विनी कुमार, लक्ष्मी और मदिरा- इन देवताओं की स्थापना करनी चाहिए। प्रत्येक दिशा के मुख्य द्वार पर उसके अधिष्ठता देवता की स्थापना की जाए। उत्तर का देवता ब्रह्मा, पूर्व का इन्द्र दक्षिण का यम और पश्चिम का सेनापति होता है।

2.10.4 राजनीति धर्म से श्रेष्ठ

कौटिल्य अपने राजनीतिक विचारों को धर्म पर आधारित बनाता है लेकिन अनेक मामलों मे वे राजनीति को धर्म से श्रेष्ठ मानते हैं। जिसका विवेचन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है।

2.10.4.1 राजाज्ञा धर्म से श्रेष्ठ :- कौटिल्य का मत है कि यदि किसी बात पर राजा के धर्मानुकूल शासन का धर्मशास्त्र के साथ विरोध पैदा हो जाए, तो वहाँ राज-शासन को ही प्रमाण मानना चाहिए। क्योंकि, ऐसा करने से धर्मशास्त्र का इकाई मात्र ही नष्ट होता है। अत: राजा का आदेश धर्मशास्त्र के वचन से भी श्रेष्ठ होता है। राजनीति धर्म से सदा आबद्ध नहीं होती।

2.10.4.2 उच्च पदाधिकारियों को राजा के प्रति भक्तिभाव, धर्म के प्रति नहीं :- कौटिल्य का विचार है कि उच्च पदाधिकारियों को राजा के प्रति ही भक्तिभाव रखना चाहिए, किसी धर्म के प्रति नहीं। उन्हीं व्यक्तियों की नियुक्ति उच्च पदों पर होनी चाहिए, जिन्हें राजा में पूर्ण विश्वास हो और उसके प्रति पूरी भक्ति भावना हो। कौटिल्य ने पदाधिकारियों की जांच के लिए 'धर्मोपधा विधि' का वर्णन किया है।

2.10.4.3 धार्मिक संस्थाओं पर राज्य का नियन्त्रण :- अर्थशास्त्र में धार्मिक संस्थाओं पर नियन्त्रण के कुछ संकेत मिलते हैं। जैसे- राजा मंदिरों और धार्मिक संस्थाओं की देखरेख के लिए 'देवताध्यक्ष' नामक अधिकारी की नियुक्ति करता है। देवाध्यक्ष राज्य में स्थित सभी मंदिरों से प्राप्त दान को एकत्रित कर राजकोष में जमा करवाता है और जिसका उपयोग राज्य के विकास के लिए किया जाता है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्य का राजा उसी हद तक धर्म का पालन करेगा जिस हद तक उसे मूल उद्देश्य प्राप्त करने में किसी प्रकार की बाधाएँ न आये और यदि धर्म विभिन्न प्रकार की बाधाएं उत्पन्न करता है तो राजा को धर्म से पूर्ण अलग एवं स्वतंत्र अस्तित्व कायम कर लेना चाहिए।

2.11 कौटिल्य तथा मैकियावेली

कौटिल्य को भारत का मैकियावेली कहा जाता है। मैकियावेली अपनी व्यावहारिक राजनीति के लिए प्रसिद्ध है। उनका महान्

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ग्रन्थ 'दि प्रिन्स' कौटिल्य की अर्थशास्त्र की भांति शासक और जनता के मार्गदर्शन का कार्य करता है। ये दोनों, शासनकला तथा कूटनीति के मान्य पण्डित थे। दोनों ने अपनी विवेचना में उन्होंने लौकिक शैली को अपनाया। दोनों के बीच अनेक राजनीतिक विचारों में समानता देखी जा सकती है। दोनों ने राजतंत्र का समर्थन किया है। दोनों ही विचारक जनता की भावना के प्रति सहानुभूति रखते है। दोनों ने राज्य के हित की पूर्ति के लिए शक्ति, धोखा, छलकपट आदि सभी आवश्यक साधनों के प्रयोग का समर्थन किया है। कौटिल्य व मैकियावेली के विचारों के अध्ययन से हमें न केवल वर्तमान् समस्याओं के बारे में जानकारी मिलती है, अपितु इन समस्याओं के समाधान के उपाय मिलते हैं। इस प्रकार कौटिल्य तथा मैकियावेली दोनों के विचारों की समानताएं एवं असमानताएं निम्नलिखित हैं-

2.11.1 कौटिल्य तथा मैकियावेली के विचारों में समानताएँ

कौटिल्य तथा मैकियावेली के विचारों में निम्नलिखित समानताएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :-

2.11.1.1 राजतंत्र का समर्थन :- कौटिल्य एवं मैकियावेली दोनों ही राजतंत्र के प्रबल समर्थक हैं। उनका मत है कि राजतंत्र से ही राज्य की सुरक्षा एवं जन कल्याण संभव हो सकता है।

2.11.1.2 राजा सम्प्रभु :- दोनों ही विचारक सम्प्रभुता का अधिवास राजा में करवाने पर बल देते हैं। इस तरह वे असीमित, सर्वोच्च एवं अखण्डित संप्रभुता का समर्थन करते हैं।

2.11.1.3 राज्य की एकता पर बल :- राज्य के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए एकता का होना बहुत जरूरी है। इसके अभाव में राज्य बालू से बने रेत के घरोंदें के समान नष्ट हो जाएगा। अत: दोनों ने इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए न केवल राज्य की एकता पर बल दिया, अपितु इस दिशा में सुदृढ़ कदम उठाने की भी बात कही।

2.11.1.4 राज्य का विस्तार :- दोनों विचारकों ने राष्ट्र या राज्य की उन्नति, अभिवृद्धि और विस्तार पर बल दिया है। राज्य का उद्देश्य अपनी सीमा का विस्तार करना है।

2.11.1.5 युद्ध आवश्यक :- दोनों विचारकों ने युद्ध को राजनीति का आवश्यक अंग माना है। प्रत्येक राजा को युद्ध के लिए सदा तैयार रहना चाहिए। यदि युद्ध में कभी राजा को दूसरे शक्तिशाली राज्य के सामने आत्मसमर्पण करने, संधि करना पड़े, तो कर लेनी चाहिए और फिर सुअवसर आने पर उसे तुरन्त शत्रु पर आक्रमण करना चाहिए।

2.11.1.6 ऐतिहासिक उदाहरण :- दोनों विचारकों ने इतिहास के अध्ययन के लिए समान दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया है। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनेक स्थानों पर भूतकालीन राजाओं का उदाहरण देता है। दूसरी ओर मैकियावेली भी अपनी मान्यताओं की पुष्टि रोम के प्राचीन इतिहास से करता है।

2.11.1.7 राजनीतिक पद :- दोनों ही विचारक अपने-अपने देश के मुख्य राजनीतिक पदों पर प्रतिष्ठित थे। कौटिल्य चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रधानमंत्री था। मैकियावेली ने अनेक वर्षों तक इटली के प्रधान सचिव और यूरोप के अनेक राज्यों में राजदूत के पद को सुशोभित किया था।

2.11.1.8 दृढ़ राष्ट्रवादी :- कौटिल्य और मैकियावेली दोनों दृढ़ राष्ट्रवादी थे। वे अपने राज्य की एकता स्थापित करने के लिए कटिबद्ध थे। कौटिल्य द्वारा अर्थशास्त्र की रचना करने के पीछे मुख्य उद्देश्य एक विशाल एवं शक्तिशाली भारत का निर्माण करना था, क्योंकि उस समय भारत विभिन्न खण्डों में विभक्त था। मैकियावेली ने इटली की एकता स्थापित करने के दृष्टिकोण से 'दी प्रिंस' की रचना की। दोनों का उद्देश्य एकता स्थापित करते हुए अपने-अपने देश को विदेशियों के प्रभाव से मुक्त करने का प्रयास था।

2.11.1.9 व्यावहारिक राजनीति :- दोनों विचारकों ने प्रमुख रूप से शासनकला का निरूपण किया है तथा व्यावहारिक राजनीति पर जोर दिया है, राजदर्शन के काल्पनिक सिद्धान्तों पर नहीं। दोनों ने ही राज्य की एकता और विस्तार के दृष्टिकोण से सोचा तथा लिखा है। अर्थशास्त्र और दी प्रिंस शासकों तथा राजनीतिज्ञों के लिए समान रूप से पथ प्रदर्शक ग्रंथ हैं।

2.11.1.10 पड़ौसी राज्य शत्रु होता है :- दोनों विचारकों का कथन है कि पड़ौसी राज्य एक-दूसरे के शत्रु होते हैं और उनमें परस्पर शत्रुता की भावना होती है। एक राज्य दूसरे राज्य के विकास एवं उन्नति को कभी भी सहन नहीं कर सकता। उनकी नीतियाँ भी एक-दूसरे के विरोध पर आधारित होती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.11.1.11 मानव स्वभाव :- दोनों विचारकों की यह धारणा है कि मनुष्य में विवेक की अपेक्षा मनोवेग अधिक होता है जिसके कारण वह गलत कार्य करने से भी नहीं हिचकता। अत: मानव के स्वभाव पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए उचित दण्ड की व्यवस्था होना आवश्यक है।

2.11.1.12 शांति एवं सुरक्षा शक्ति द्वारा स्थापित :- कौटिल्य एवं मैकियावेली का मत है कि राज्य की स्थापना शांति एवं सुरक्षा के लिए की गई है। अत: राज्य का यह दायित्व बनता है कि वह इस दिशा में सार्थक कदम उठाए, इनमें से केवल शक्ति है जो शांति एवं सुरक्षा स्थापित कर सकती है।

2.11.1.13 दूसरे राज्य की सहायता नहीं :- दोनों का मत है कि एक राज्य को दूसरे राज्य की उन्नति में सहायता नहीं करनी चाहिए तथा पड़ौसी राज्य की उन्नति को संदेह की दृष्टि से देखना चाहिए।

2.11.1.14 खर्च :- दोनों ने शासकों के वित्त के खर्च के प्रश्न पर सतर्कता रखने को कहा है। वे जनता पर कम कर लगाने के पक्ष में है।

2.11.1.15 विदेशी राज्य पर आधिपत्य :- कौटिल्य तथा मैकियावेली का मत है कि किसी विदेशी राज्य पर आधिपत्य स्थापित करने के बाद, राजा को वहाँ के लोगों के प्रभावों, रीति-रिवाजों, परम्पराओं और धार्मिक व्यवहारों का आदर करना चाहिए। ऐसा करने से वहाँ की जनता राजा का सम्मान करेगी और प्रशासन को स्थायित्व मिलेगा।

2.11.1.16 गुप्तचर-व्यवस्था :- दोनों विचारकों ने सुदृढ़ गुप्तचर-व्यवस्था पर बल दिया है। उनका कहना है कि गुप्तचरों का कार्य केवल आन्तरिक एवं बाहरी सूचनाएं प्रदान करना नहीं है, अपितु उनका महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि वे दूसरे राज्यों के भेद प्राप्त करें एवं उस राज्य में अशान्ति को जन्म देकर उस राज्य को दुर्बल बनाने के प्रयत्नों का समर्थन करें।

2.11.1.17 धर्म का उपयोग:- दोनों धर्म का उपयोग राज्य के उद्देश्य के लिए करना चाहते हैं। इस अर्थ में दोनों ने धर्म को राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए साधन मात्र माना है।

2.11.2 कौटिल्य तथा मैकियावेली के विचारों में असमानताएँ

कौटिल्य तथा मैकियावेली के विचारों में निम्नलिखित असमानताएँ दृष्टिगत होती हैं :

2.11.2.1 कौटिल्य का व्यक्तित्व :- कौटिल्य धर्म धुरन्धर नालन्दा और तक्षशिला का आचार्य, नीतिशास्त्र विशारद, दार्शनिक तथा ब्रह्मचारी था। वह सादा जीवन और उच्च विचार का समर्थक था। दूसरी और मैकियावेली न तो धर्म का पंडित था और न कौटिल्य जैसा सन्यासी। वह कोई प्रभावशाली व्यक्तित्व नहीं रखता था।

2.11.2.2 ग्रन्थ की रचना :- कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र की रचना तब की, जब वह अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त कर चुका था तथा भारत के छोटे-बड़े राज्यों को एक सूत्र में बांध चुका था, अपने देश को उन्नति के चरम शिखर पर पहुंचा चुका था। वह एक सफल राजनीतिज्ञ सिद्ध हुआ। दूसरी ओर मैकियावेली को अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। उसने दी प्रिंस की रचना तब की जब वह निराश हो चुका था तथा राजनीतिक जीवन से निष्कासित हो चुका था। वह एक असफल कूटनीतिज्ञ सिद्ध हुआ।

2.11.2.3 अर्थशास्त्र एवं दी प्रिंस :- मैकियावेली का दी प्रिंस केवल राजनीति से ही संबंध रखता है। लेकिन, कौटिल्य के अर्थशास्त्र में न केवल राजनीति वरन् सम्पूर्ण मानव जीवन का अध्ययन किया गया है। अर्थशास्त्र राजनीति के साथ-साथ मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और मंत्रशास्त्र का भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

2.11.2.4 कौटिल्य का प्रभाव :- कौटिल्य की अपने समय की राजनीति पर व्यापक पकड़ थी। उसके प्रयासों से चन्द्रगुप्त मौर्य राजा बन सका, जिसने कौटिल्य को अपना महामंत्री नियुक्त किया। कौटिल्य की बदौलत नन्द वंश का नाश हो सका। इसके विपरीत मैकियावेली को जीवन में असफलताएँ मिली।

2.11.2.5 धर्म का आदर :- कौटिल्य राज्य का संचालन धर्म के अनुसार करने को कहता है। राजा को पुरोहित का सम्मान और धार्मिक विधियों की मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए लेकिन, मैकियावेली धर्म का विरोधी है और वह धर्म को राज्य की उन्नति में बाधक मानता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.11.2.6 मानव स्वभाव :- कौटिल्य मानव को उतना दुष्ट नहीं मानता, जितना कि मैकियावेली। मैकियावेली मानव स्वभाव को निम्न स्तर का मानता है।

2.11.2.7 राजतंत्र :- कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में केवल राजतंत्र का वर्णन किया है, लेकिन मैकियावेली ने राजतंत्र के अतिरिक्त गणतंत्र जैसी अन्य प्रणालियों का उल्लेख किया है।

2.11.2.8 राजदर्शन का उद्देश्य :- मैकियावेली के राजदर्शन का मूलभूत उद्देश्य राज्य के सुरक्षा सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना था, जबकि कौटिल्य का उद्देश्य एक व्यापक राज्य और शासन-व्यवस्था का प्रतिपादन करना था। कौटिल्य ने कहा कि- राजनीतिक दर्शन का उद्देश्य प्लेटो और अरस्तु की तरह व्यक्ति को पूर्णता का जीवन प्रदान करना है। इस आधार पर दोनों के विचारों में समानता नहीं है।

2.11.2.9 राजा :- कौटिल्य का राजा सच्चरित्र, गुणवान, बुद्धिमान और विद्वानों का आदर करने वाला था, लेकिन मैकियावेली का प्रिंस सच्चरित्र होने का ढ़ोंग करता है। कौटिल्य राजा के लिए कठोर दिनचर्या की व्यवस्था करता है, जबकि मैकियावेली ऐसा कुछ उल्लेख नहीं करता।

2.11.2.10 कौटिल्य पूर्ण अनैतिक नहीं :- कौटिल्य ने मैकियावेलीकी तरह नैतिकता को पूर्ण रूपेण उपेक्षा नहीं की है। मैकियावेली प्रत्येक कार्य में राजा की अनैतिक साधनों को अपनाने का सुझाव देता है। लेकिन, कौटिल्य केवल राज्य के शत्रुओं के प्रति अनैतिक साधनों के प्रयोग का परामर्श देता है। राज्य के आज्ञाकारी तथा निष्ठावान प्रजा के प्रति नहीं। इसलिए कौटिल्य पूर्ण अनैतिक नहीं था।

2.11.2.11 ऐतिहासिक उदाहरण नहीं :- जिस प्रकार मैकियावेली ने अपनी कृतियों में रोम के प्राचीन इतिहास के उदाहरणों का उल्लेख किया है, उतने विस्तृत रूप में कौटिल्य ने भारतीय इतिहास की घटनाओं का वर्णन नहीं किया है। यह सच है कि कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में यत्र-तत्र अपने विचारों की पुष्टि के लिए ऐतिहासिक उदाहरणों का प्रयोग नहीं किया।

2.11.2.12 कौटिल्य परम्परावादी :- कौटिल्य परम्परावादी थे वहीं मैकियावेली आधुनिक। उसने राजतंत्र का समर्थन किया वहीं मैकियावेली ने राष्ट्रवाद का बीजारोपण किया।

2.11.2.13 न्याय, कानून और दण्ड :- कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में न्याय, कानून और दण्ड पर काफी विस्तारपूर्वक विचार प्रस्तुत किये जबकि मैकियावेली इनकी उपेक्षा करता है।

2.11.2.14 वित्त और प्रशासन :- कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में वित्त और प्रशासन पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है। उसने राज्य के विभिन्न आर्थिक स्त्रोतों पर भी विचार किया है जबकि मैकियावेली ने ऐसा नहीं किया।

2.11.2.15 युद्ध और कूटनीति :- कौटिल्य युद्ध एवं कूटनीति पर स्पष्ट प्रकाश डालता है। उसने राजा को बाहरी आक्रमण से बचने, सामयिक दृष्टि से शक्तिशाली बनने के लिए मजबूत सेना की आवश्यकता को स्वीकार करने को कहा है और कूटनीति के द्वारा राज्यों में अपना प्रभाव बढ़ाने को कहा है।

2.11.2.16 राजदूत :- कौटिल्य ने राजदूत व्यवस्था का उल्लेख किया है, जबकि मैकियावेली ने नहीं।

2.11.2.17 विदेश नीति :- कौटिल्य ने अन्तरराष्ट्रीय संबंध को स्पष्ट करते हुए कहा है कि राजा को प्रभावशाली तरीके से विदेश नीति संचालन करना चाहिए। इसके लिए कौटिल्य मण्डल सिद्धान्त एवं षाड्गुण्य नीति का प्रतिपादन करता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कौटिल्य तथा मैकियावेली महान् राजनीतिज्ञ चिन्तक थे। दोनों को ही यथार्थवादी चिन्तक की संज्ञा दी जा सकती है।

2.12 राजनीति विचारधारा के इतिहास में कौटिल्य का महत्त्व तथा देन

भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में कौटिल्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इसलिए कौटिल्य को राजदर्शन का जनक कहा जाता है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती लेखकों के असंगत-विसंगत साहित्य को ध्यान में रखते हुए, राजनीति विज्ञान का पुनर्निर्माण किया। कौटिल्य ने जो राजनीतिक सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं वे न केवल उस समय के शासकों का मार्गदर्शन कर रहे थे,अपितु आज भी उनकी प्रासंगिकता बनी हुई है। सालेटोर का कथन है कि प्राचीन भारत की राजनीतिक विचारधाराओं में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य कौटिल्य की विचारधारा है। डॉ. राधाकृष्ण चौधरी के मतानुसार, दण्डित, बान, सामवेद सूरी, मनु याज्ञवल्क्य तथा कात्यायन जैसे अनेक पाश्चात्य भारतीय विचारकों को कौटिल्य के इस ग्रंथ ने प्रभावित किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

डॉ. घोषाल के अनुसार,– महाभारत में जो राजधर्म के महत्त्वपूर्ण गुणों का वर्णन किया गया है तथा स्मृति–परम्परा में जिस प्रकार अर्थशास्त्र में उल्लिखित अनेक सिद्धान्तों व रणनीतियों का खुलकर समावेश किया गया है वे सब कौटिल्य के अर्थशास्त्र के महत्त्वपूर्ण योगदान का ही आभास कराते हैं।

2.12.1 अर्थशास्त्र सभी विचारों का सार

कौटिल्य ने स्वयं लिखा है कि उसका ग्रन्थ अर्थशास्त्र सभी पूर्वगामी राजनीतिक विचारों का है। कौटिल्य द्वारा इन सभी विचारों को संगृहित कर विषय का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया गया।

2.12.2 राजनीति का स्वतन्त्र अध्ययन

कौटिल्य के पूर्व भारत में जो राजनीतिक विचारक हुए, उन्होंने धर्म और नैतिकता की पृष्ठभूमि में राजनीतिक विचारों का अध्ययन किया लेकिन, कौटिल्य प्रथम राजनीतिक विचारक था जिसने राजनति का स्वतन्त्र अध्ययन किया।

2.12.3 राजनीतिक विचारों का व्यावहारिक रूप

कौटिल्य ने न केवल राजनीतिक विचारों का प्रतिपादन किया, वरन् अपने व्यावहारिक कार्यों के आधार पर देश को एक सुदृढ़ और केन्द्रीकृत शासन प्रदान किया। उसने विशाल मौर्य साम्राज्य की स्थापना की और साम्राज्य के महामंत्री के रूप में अपने प्रशासनिक सिद्धान्तों को सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया। इस दृष्टि से कौटिल्य राजनीति का प्रकांड पण्डित ही नहीं, वरन् भारत महानायक के रूप में सामने आया।

2.12.4 सप्तांग सिद्धान्त

कौटिल्य की सबसे बड़ी देन है–सप्तांग सिद्धान्त। उसने राज्य की सात प्रकृतियों का उल्लेख किया है। जैसे–स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र। इनका आज भी महत्त्व बना हुआ है। आधुनिक राजनीतिशास्त्र में राज्य की उत्पत्ति के जिन तत्त्वों का उल्लेख किया जाता है, वे इसी तरह के ही हैं।

2.12.5 राज्य के कार्य

कौटिल्य राज्य के कार्य पर सविस्तार प्रकाश डालता है। उसके अनुसार राज्य को सुरक्षा, शांति और व्यवस्था, प्रजा की रक्षा, पशु, पक्षियों का कल्याण और संवर्द्धन, व्यापार, वन, खानें, करखाना, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और परोपकार जैसे कार्यों का सम्पादन करना चाहिए। इससे यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्य राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप का चित्रण करते हैं।

2.12.6 राजा

कौटिल्य के राजनतिक विचारों का केन्द्र बिन्दु राजा है। इसलिए वह राजतंत्रीय व्यवस्था का समर्थन करते है। उन्होंने राजा के गुणों, शिक्षा, दिनचर्या और शक्तियों का उल्लेख किया है। उसका राजा ईमानदार, सत्यवादी, न्यायी, ज्ञानी और सभी गुणों से युक्त प्लेटों के दार्शनिक राजा के समान होता है। वस्तुत: प्रजा का सुख एवं हित राजा का हित एवं सुख है और इस दिशा में राजा को तत्परता के साथ कार्य करना चाहिए। इस प्रकार कौटिल्य राजा को सर्वोच्च, निरंकुश तथा सर्वशक्तिमान बनाने के बावजूद वह जनकल्याण के दायित्व से मुक्त नहीं करता है।

2.12.7 मंत्रिपरिषद

कौटिल्य का मत है कि राजा स्वयं शासन नहीं चला सकता। अत: उसे समय–समय पर उचित मार्गदर्शन देने के लिए मंत्रिपरिषद का होना आवश्यक है। कौटिल्य यह भी कहता है कि मंत्रियों की नियुक्ति योग्यता के अनुसार होना चाहिए ताकि उनकी योग्यता एवं अनुभव का अधिक से अधिक लाभ राज्य को मिल सके।

2.12.8 प्रशासनिक व्यवस्था

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में प्रशासनिक व्यवस्था पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला है। उसने अठारह प्रशासनिक अधिकारियों का उल्लेख किया है, जैसे–मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, दोवारिक, प्रशास्ता, समाहर्ता, आयुक्त, नायक, दण्डपाल, दुर्गपाल, अंतपाल, आटविक आदि। इस तरह कौटिल्य प्रशासनिक व्यवस्था के महत्त्व को स्वीकार करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.12.9 कानून

कौटिल्य ने शासन संचालन हेतु कानून को आवश्यक समझा है। उसका कानून अनुभववाद और अध्यात्मवाद पर आधारित है। उसने कानून को राज्य का आदेश माना है। उसने कानून के उद्देश्य, स्त्रोत, परिभाषा एवं विभिन्न प्रकारों का वर्णन किया है। उसने विवाह, संपत्ति और अन्य सामाजिक कानूनों का उल्लेख किया। राज्य में शांति और व्यवस्था की स्थापना हेतु तथा कल्याणकारी सामाजिक जीवन बनाने के लिए इन कानूनों का होना नितान्त आवश्यक है।

2.12.10 न्याय

कौटिल्य ने न्याय का भी विशुद्ध रूप से वर्णन किया है। उसके अनुसार न्याय का उद्देश्य प्रजा के जीवन और संपत्ति की रक्षा करना तथा असामाजिक तत्त्वों और अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले व्यक्तियों को दण्डित करना है। उसने न्यायाधीशों की नियुक्ति, न्यायपालिका के संगठन, न्यायालय के प्रकारों और उनकी कार्य पद्धति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उसके अनुसार न्याय निष्पक्ष और निर्भय होना चाहिए। उसने राजा को अपील का अन्तिम न्यायालय माना है। उसने प्रजा, न्याययाधीशों पदाधिकारियों और यहां तक कि राजा के दंड पर भी विचार किया है।

2.12.11 दण्ड-व्यवस्था

कौटिल्य ने कानून के साथ-साथ दंड का भी उल्लेख किया है। उसने दंड के उद्देश्य, स्वरूप, दण्ड निर्धारण के सिद्धान्तों और विभिन्न प्रकारों का विशुद्ध रूप से विवेचन किया है। उसने मृत्युदंड पर भी विचार किया है। उसने कानून के अनुरूप दंड पर भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। कौटिल्य की दण्ड-व्यवस्था आदर्शवादी की अपेक्षा व्यावहारिक अधिक है।

2.12.12 गुप्तचर-व्यवस्था

कौटिल्य ने स्थायी गुप्तचर और भ्रमणशील गुप्तचर का उल्लेख किया है। उसके अनुसार स्थायी गुप्तचर पांच प्रकार के होते हैं- कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक और तापस। भ्रमणशील गुप्तचर में सत्री, तीक्ष्ण, रसद और परिव्राजिका है। उसने उभय वेतनभोगों विष कन्या, गुप्तचरों की नियुक्ति, पदस्थापना, कार्यों आदि पर भी विचार किया है। कौटिल्य के दृष्टि में राज्य सुरक्षा के लिए संगठित गुप्तचरों का होना बहुत जरूरी है।

2.12.13 राजदूत-व्यवस्था

कौटिल्य ने राज्य के लिए राजदूत-व्यवस्था को आवश्यक बताया है। राजदूत विदेशों में राजा का प्रतिनिधित्व करता है। उसने राजदूतों की नियुक्ति, योग्यताएँ, प्रकारों और कार्यों का वर्णन किया है। उसके अनुसार राजदूत तीन प्रकार के होते हैं- निसृष्टार्थ, परिमितार्थ और शासनहार। राजदूत विदेशों में राज्य के हितों का पूरा ध्यान रखते हैं तथा आवश्यक सूचनाओं से राजा को समय-समय पर अवगत करवाते रहते हैं।

2.12.14 मंडल-सिद्धान्त

अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में कौटिल्य की सबसे बड़ी देन मंडल-सिद्धान्त और षाड्गुण्य नीति है। उसने पड़ौसी राज्यों के लिए मंडल-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। पड़ौसी राज्य एक-दूसरे के शत्रु होते हैं। उसके अनुसार मंडल सिद्धान्त में कुल बारह राज्य होते हैं- विजिगीषु, अरि, मित्र, अरि-मित्र, मित्र-मित्र, पार्ष्णिग्राह, आक्रंद, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रंदासार, मध्यम और उदासीन। विद्वानों का मत है कि मंडल-सिद्धान्त कौटिल्य की विदेश नीति संबंधी सूझ-बूझ और व्यावहारिक राजनीति में उसकी दक्षता तथा दूरदर्शिता का परिचायक है।

2.12.15 षाड्गुण्य नीति

कौटिल्य ने विदेशी राज्यों के लिए षाड्गुण्य नीति अर्थात् छह लक्षणों वाली नीति का प्रतिपादन किया है। उसने विदेश नीति की आधारशिला को छह गुणों से युक्त बताया है- संधि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव। उसने साम, दाम, भेद और दंड पर विचार किया है। इस तरह कौटिल्य की षाड्गुण्य नीति वास्तविकता पर आधारित है। जो आधुनिक समय में विभिन्न देशों की विदेश नीति का अंग बनी हुई है।

2.12.16 सामाजिक विचार

कौटिल्य ने सामाजिक व्यवस्था पर भी विचार व्यक्त किया। उसने वर्णाश्रम धर्म का समर्थन किया है। उसने विवाह-विच्छेद, वेश्यावृत्ति, शराब, जुआ, गोहत्या, ऋण, सूदखोरी, दास प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों पर भी प्रकाश डाला है। उसने विवाह, तलाक, विधवा विवाह आदि पर जो विचार व्यक्त किये हैं, वो आज भी मान्य हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.12.17 आर्थिक विचार

कौटिल्य ने राज्य की अर्थ-व्यवस्था पर भी विचार किया है। उसने कृषि, जमीन, सिंचाई, पशुपालन, व्यापार और वाणिज्य, खान और उद्योग जैसे आर्थिक पहलूओं पर विचार किया है। उसने राज्य की कर-नीति पर भी प्रकाश डाला है। उसके अनुसार नागरिकों पर कम से कम कर लगाना चाहिए। उसने कहा है कि अमीरों पर अधिक और गरीबों पर कम कर लगाना चाहिए। यह सत्य पर आधारित है। वर्तमान समय में भी उसकी कर-नीति और अर्थ-व्यवस्था अपने आप में महत्त्व रखती है।

2.12.18 धार्मिक विचार

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में धार्मिक विचार भी यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। उसने धर्म का प्रयोग तीन अर्थों में किया है-

1. सामाजिक कर्त्तव्य के रूप में,
2. सत्य पर आधृत नैतिक कानून के रूप में और
3. नागरिक कानून के रूप में।

2.13 सारांश

राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में ऐसे बहुत कम विचारक हुए हैं जिन्हें अपने द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को अपने जीवन काल में व्यावहारिक रूप से लागू करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो जो ऐसा करने में सफल रहा उसे अग्रणी स्थान मिला। कौटिल्य का दृष्टिकोण भी सिद्धान्त की अपेक्षा व्यवहारिकता पर अधिक आधारित था। इसी के लिए उन्होंने अपना सम्पूर्ण वैभव को किस तरह पुन: बहाल किया जाए, इसमें वे निश्चित तौर से सफल तो हुए ही अपितु उनके विचार राजनीति शास्त्र एवं अर्थशास्त्र के आधार स्तम्भ बन गये। वर्तमान समय में अनेक नीतियों पर उनका प्रभाव देखा जा सकता है। इस प्रकार कौटिल्य के विचार निश्चित तौर पर उच्च कोटि के हैं। जिनसे न केवल तत्कालीन राजाओं को मार्गदर्शन मिला, अपितु आज भी राजनीतिक चिन्तन में अपना उल्लेखनीय स्थान रखते हैं।

2.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वाचस्पति गैरोला, ''कौटिल्य अर्थशास्त्र'', चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
2. गोपाल दामोदर तामसकर, ''कौटिल्य अर्थशास्त्र'', इण्डियन प्रेस लि. प्रयाग।
3. जगन लाल गुप्त, भगवानदास केलर, ''कौटिल्य के आर्थिक विचार'', भारत ग्रन्थ माला, तीसरा संस्करण, प्रयाग, 1947
4. राधाकृष्ण चौधरी, ''प्राचीन भारतीय राजनीति और शासन व्यवस्था'', भारत भवन, पटना, प्रथम संस्करण, 1973
5. चाणक्य, ''चाणक्य नीति दर्पण'', अनुवादक पं. काशीनाथ शर्मा, आदित्य प्रकाशन, वाराणसी
6. विशाखदत्त, ''मुद्राराक्षस'', चौखम्बा संस्कृत सिरीज ऑफिस, वाराणसी, 1961
7. भगवानदास केलर, ''कौटिल्य की ज्ञान पद्धति'', भारत ग्रंथ माला, प्रयाग
8. उदयवीर शास्त्री (अनुवादक), ''कौटिलीय अर्थशास्त्र'', दिल्ली 1968
9. प्राणनाथ विद्यालंकार (अनुवादक), ''कौटिलीय अर्थशास्त्र''
10. रामतेज शास्त्री, (अनुवादक), ''कौटिलीय अर्थशास्त्रम्'', काशी, 1964
11. चंद्रदेव प्रसाद, ''महान राजनीतिक विचारक कौटिल्य'', भारती भवन, पटना, 1988
12. पुष्पा बिरवानी, राजेश्वरी सक्सैना, ''भारतीय राजनीतिक विचारक'', शील सन्स, जयपुर, 2000
13. डॉ. ए. अवस्थी, डॉ. आर. के. अवस्थी, ''भारतीय राजीतिक चिन्तन'', रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर
14. ओम् प्रकाश गाबा, ''भारतीय राजनीतिक विचारक'', मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 2003
15. डॉ. पुखराज जैन, ''भारतीय राजनीतिक विचारक'', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2003
16. सी.एम. सरस्वती, ''भारतीय राजनीतिक विचारक'', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
17. राम रतन, रूचि त्यागी, ''भारतीय राजनैतिक चिन्तन'', मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 1999
18. ओम् प्रकाश गाबा, ''राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा'', मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 2003
19. बी.आर. पुरोहित, ''भारतीय राजनीतिक चिन्तन का इतिहास'', राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.15 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. कौटिल्य द्वारा प्रस्तुत राज्य के सप्तांग सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए।
2. राजा के संबंध में कौटिल्य के विचार को बताते हुए यह सिद्ध कीजिए कि क्या कौटिल्य का राजा निरंकुश है ?
3. मण्डल सिद्धान्त पर एक लेख लिखिए।
4. षाड्गुण्य नीति क्या है ?इसके प्रमुख सिद्धान्त बताओ।
5. कौटिल्य के धार्मिक विचारों पर प्रकाश डालिए।
6. कौटिल्य तथा मैकियावेली के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
7. भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में कौटिल्य का क्या योगदान है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कौटिल्य के मण्डल सिद्धान्त के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
2. कौटिल्य के जीवन परिचय पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. कौटिल्य के सप्तांग सिद्धान्त में जनपद का क्या महत्त्व है ?
4. कौटिल्य ने राजा के लिए किन आवश्यक गुणों का उल्लेख किया है ?
5. कौटिल्य ने राजा की क्या दिनचर्या बतलाई है ?
6. क्या कौटिल्य का राजा निरंकुश है ?
7. मण्डल सिद्धान्त का वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में क्या महत्त्व है ?
8. शांति–स्थापना की अन्तरराज्यीय नीति के कौन–कौन से उपाय कौटिल्य ने बताए हैं ?
9. कौटिल्य ने गुप्तचरों के क्या कार्य बताए हैं ?
10. धर्म–राजनीति के संबंध में कौटिल्य के क्या विचार है ?
11. कौटिल्य ने दुर्ग के किन प्रकारों पर प्रकाश डाला है ?
12. कौटिल्य के अनुसार धर्म राजनीति से सर्वश्रेष्ठ क्यों है ?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. कौटिल्य की महान कृति का क्या नाम था ?
2. सप्तांग सिद्धान्त क्या है ?
3. सप्तांग सिद्धान्त आधुनिक राज्य उत्पत्ति के सिद्धान्त से किस प्रकार मेल खाता है ?
4. कौटिल्य ने राजा के किन गुणों का उल्लेख किया है ?
5. अन्तरराज्यीय नीति के सफल कार्यान्वयन हेतु कौटिल्य ने किन दो सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है ?
6. मंडल सिद्धान्त में कितने राज्यों का वर्णन है ?
7. मंडल सिद्धान्त किस राज्य पर केन्द्रीत है ?
8. षाड्गुण्य नीति के कौन–कौन से सिद्धान्त हैं ?
9. सप्तांग सिद्धान्त के तत्त्वों का उल्लेख कीजिए ?
10. मैकियावेली की प्रमुख रचना का क्या नाम है ?
11. राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कौटिल्य किस सिद्धान्त का समर्थन करता है ?
12. आंगिक एकता सिद्धान्त क्या है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-3 महावीर

संरचना

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 जीवन परिचय

- 3.3.1 परिवार परिचय
- 3.3.2 विवाह
- 3.3.3 चिन्तन के बढ़ते चरण
- 3.3.4 आत्म-विकास के पथ पर

3.4 वर्धमान महावीर के सिद्धान्त

- 3.4.1 निवृत्ति की प्रधानता
- 3.4.2 व्यक्ति की स्वतंत्रता पर बल
- 3.4.3 अनेकान्तवाद
- 3.4.4 स्यादवाद
- 3.4.5 अनीश्वरवादिता और सृष्टि की नित्यता
- 3.4.6 द्वैतवादी तत्त्व-ज्ञान
- 3.4.7 आत्मवादिता
- 3.4.8 कर्म और पुनर्जन्म
- 3.4.9 निर्वाण
- 3.4.10 त्रिरत्न
- 3.4.11 ज्ञान
  - 3.4.11.1 मति ज्ञान
  - 3.4.11.2 श्रुति ज्ञान
  - 3.4.11.3 अवधि ज्ञान
  - 3.4.11.4 मनःपर्यव ज्ञान
  - 3.4.11.5 कैवल्य ज्ञान
- 3.4.12 पंच अणुव्रत
  - 3.4.12.1 अहिंसा
  - 3.4.12.2 सत्य
  - 3.4.12.3 अस्तेय
  - 3.4.12.4 अपरिग्रह
  - 3.4.12.5 ब्रह्मचर्य
- 3.4.13 पंचमहाव्रत
- 3.4.14 व्रत, उपवास और तपस्या
- 3.4.15 नैतिक सदाचारमय जीवन
- 3.4.16 अहिंसा
- 3.4.17 नारी की स्वतन्त्रता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.5 विश्व शांति और उसका मार्ग
3.5.1 विश्व शांति के साधन
3.6 जातिवाद का निवारण
3.7 नारी उत्थान
3.8 दासप्रथा पर प्रहार
3.9 लोककल्याण के सन्दर्भ में
3.10 सारांश
3.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
3.12 अभ्यास प्रश्नावली

3.1 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य भगवान महावीर के जीवन को जानते हुए उनके प्रमुख आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा धर्मिक विचारों को जानना। इसके अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे —

- इससे आप महावीर के अनेकान्तवद, स्वतन्त्रता, निर्वाण, त्रिरत्न, पंच अणुव्रत, अहिंसा, विश्वशांति तथा मानवीय कल्याण के उनके दृष्टिकोण को जानकर उन्हें आत्मसात करने का अवसर मिलेगा ताकि मानवीय जीवन खुशहाल एवं उन्नतिशील बन सके तथा मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हो सके।
- भगवान महावीर ने विश्वशांति के साधन बताए हैं, उन्हें भी जान सकेंगे तथा उनके ये साधन आज भी प्रासंगिक हैं।
- सामाजिक सरोकारों का ध्यान में रखते हुए महावीर ने दास प्रथा का विरोध, नारी स्वतंत्रता व गरिमा पर बल तथा जाति व्यवस्था के निराकरण पर बल दिया है, उसे भी जान सकेंगे जिनकी हमारे समाज को आज भी आवश्यकता है।
- भगवान महावीर ने राज्य के लोककल्याणकारी स्वरूप का प्रतिपादन किया है, जो इस बात का द्योतक है कि राज्य हर समय जनता के कष्टों का निवारण करेगा, इसे भी जान सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

श्रमण-परंपरा ने भारत के प्राचीन महापुरुषों के जीवन और चिन्तन को विरासत के रूप में संजोया है। इनमें भगवान महावीर भी प्रमुख हैं। महावीर ने अपने विचारों एवं चिन्तन के माध्यम से समाज के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्र को प्रभावित किया।

तीर्थंकर महावीर विश्ववंद्य महापुरुष हैं। उनका जन्म राजकुल में हुआ। जगत में आंख खोलते ही उन्होंने अपने चारों ओर अपार वैभव पाया। वैभव में पल-पुस कर वे बड़े हुए। युवा हुए तो राजमुकुट उनकी बाट जो रहा था। उनके देह लक्षणों को पढ़कर ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी कर दी थी कि यह राजकुमार चक्रवर्ती सम्राट बनेगा लौकिक दृष्टि से सुखद वर्तमान् और स्वर्णिम भविष्य महावीर के सम्मुख उपस्थित था। परन्तु महावीर ने जीवन की परम उपादेयता को लोक की आंख से नहीं देखा। उन्होंने अपनी आत्मदृष्टि से जीवन की परम उपादेयता का अध्ययन और मनन किया। परिणामत: उन्होंने पाया कि जीवन का श्रेयस भोग से नहीं योग से ही साधा जा सकता है। योग ही वह विधि है जो आत्मा में अनंतकाल से आवृत्त परमात्मा को अनावृत्त कर सकती है। योग ही वह राजमार्ग है जिस पर यात्रा करके जीवन यात्रा तीर्थयात्रा का परम और चरम अर्थ रूपांतरित कर सकती है।

3.3 जीवन परिचय

महावीर का जन्म वैशाली गणतन्त्र में हुआ था। गणतन्त्र की प्रणाली में शासन पात्र मानव होता है। वैशाली में ऐसे ही शासक सिद्धार्थ थे, जिनके यहां रानी त्रिशला से ई.पू. 599, 30 मार्च (चैत्र शुक्ला त्रयोदशी) को महावीर का जन्म हुआ था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

महावीर का जन्म बिहार में वैशाली के भग्नावशेषों के निकट वासुकुण्ड नामक गांव में हुआ था। वासुकुण्ड का यही स्थान महावीर की जन्म स्थली कुंडलपुर था। वैशाली गणतन्त्र उस समय का अत्यन्त समृद्ध, सुव्यवस्थित और प्रतिष्ठित गणराज्य था। वहां के शासक लिच्छवी थे, जिनमें चेटक प्रभावकारी राजा थे। इनकी पुत्री अथवा बहिन त्रिशला का विवाह कुण्डलपुर के राजा ज्ञातवंशीय सिद्धार्थ से हुआ था। रानी त्रिशला राजा सिद्धार्थ को बहुत प्रिय थी।

एक रात्रि को रानी त्रिशला ने गर्भावस्था में मंगलकारीशुभ स्वप्न देखे। इन स्वप्नों का फल जानने के लिए वह उत्कण्ठित हुई। उसे स्वप्नों का फल बताया गया कि वह एक सौभाग्यशाली, बलवान, तेजस्वी, अतिशयज्ञानी, कुलदीपक, सौम्य आकृतिधारी पुत्र की माँ बनने वाली है। गर्भकाल पूरा होने पर रानी त्रिशला ने चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन प्राची से होने वाले सूर्योदय की भांति एक अनुपम तेजस्वी व सुन्दर पुत्र को जन्म दिया।

महावीर का जन्म हुआ जानकर देवताओं ने भी विविध मंगलोत्सव मनाये तथा इन्द्र ने माता त्रिशला की स्तुति में कहा कि **'हे माता, तू जगत माता है। तेरा पुत्र विश्व का कल्याण करेगा। जगत में भ्रम और अज्ञान को दूर करके विश्व का पथ प्रदर्शक बनेगा। तू धन्य है इस जगत् में तुझ जैसी भाग्यशालिनी माता कोई और नहीं है।'**

नामकरण की वेला आयी। शिशु के गर्भ में आने के दिन से ही कुंडलपुर में धन-धान्य की अपूर्व वृद्धि हुई थी। फलत: शिशु को वर्द्धमान गुणनिष्पन्न नाम दिया गया। समय की गति के साथ वर्द्धमान बड़ा होने लगा।

3.3.1 परिवार-परिचय

वर्द्धमान के पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम देवी त्रिशला था। उनके चुल्लपिता का नाम सुपार्श्व, बड़े भाई का नाम नन्दिवर्धन, बहन का नाम सुदर्शना और भाभी का नाम सुज्येष्ठाल्ण। भरे-पुरे और सम्पन्न परिवार में वर्द्धमान जन्मे थे। माता त्रिशला वैशाली के महाराज गणाध्यक्ष चेटक की बहन थी। भारतवर्ष में गणतन्त्र प्रणाली का प्रथम प्रयोग महाराज चेटक ने ही किया था।

3.3.2 विवाह

महाराज सिद्धार्थ के पास कुमार वर्धमान के लिए अनेक राजाओं की ओर से वैवाहिक प्रस्ताव आए तब पिता सिद्धार्थ उनमें से ने कलिंग नरेश अजातशत्रु का प्रस्ताव स्वीकार किया और उनकी पुत्री यशोदा से परिणय सूत्र में बंध गए। कालान्तर में यशोदा ने एक पुत्री को जन्म दिया, जिसे प्रियदर्शिनी नाम दिया गया। युवावस्था में प्रियदर्शनी का विवाह जमाली नामक क्षत्रिय युवक से किया गया।

3.3.3 चिन्तन के बढ़ते चरण

महावीर की किशोर-अवस्था के बढ़ने के साथ ही साथ उनके चिन्तन की शक्ति का भी विस्तार हो रहा था। महावीर उन्होंने अपने जनपद के लोगों के धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन को भी निकट से देखा था। उन्होंने अनुभव किया कि सामाजिक जीवन में वर्गभेद और आर्थिक विषमता ने मानव-मानव के बीच प्रेम और सौहार्द के स्थान पर घृणा और शोषण की भावना पैदा कर दी है। एक ओर वह जन-सामान्य है, जिसे दलित वर्ग कहा जाता है और दूसरी ओर वह समाज है, जो ऐश्वर्य के मद में इस दलित वर्ग को तिरस्कृत कर चुका है। उसके मन में सामान्य नारी के प्रति आदर भाव नहीं हैं। उसने उसे समान अधिकारों से वंचित कर रखा है। मूकप्राणियों के प्रति समाज में दया का भाव उठ गया है। इन सब परिस्थितियों ने महावीर के चिन्तन को गहराई प्रदान की। इन सब समस्याओं का आधारभूत समाधान खोजने के लिए उनका मन व्याकुल हो उठा। इसके लिए उन्होंने आत्मानुभूति के मार्ग को प्राथमिकता देना उचित समझा। क्योंकि उनका मत था कि आध्यात्मिक विकास के बाद से ही सामाजिक विषमता का अन्त किया जा सकता है।

आत्म-विकास के पथ पर :-

महावीर को ऐसा लगा कि राजभवनों में रहकर जनहित की बात करना प्रभावकारी नहीं हो सकता। इसके लिए उन्हें अपने चिन्तन की परिधि को विस्तृत करना होगा। प्राणीमात्र के कल्याण की बात सोचनी होगी। अत: उन्होंने श्रमण-दीक्षा लेने का स्वयं संकल्प कर लिया। माता-पिता ने उन्हें इस तरुण अवस्था में दीक्षित होने से बहुत रोका तथा राजपाट भोगने को कहा, माता पिता के देहावसान के बाद उन्होंने भाई नन्दीवर्द्धन के कहने पर दीक्षा लेने के कार्यक्रम को कुछ समय के लिए स्थगित किया। अन्त में वे तीस वर्ष की अवस्था में दीक्षित होकर अध्यात्म-विकास के मार्ग पर चल पड़े।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.4 वर्धमान महावीर के सिद्धान्त

वर्धमान महावीर ने जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया उन्हें ही जैन धर्म के मूल सिद्धान्त माने जाते हैं। उनके उपदेशों में जैन धर्म के सभी सिद्धान्त निहित हैं। जैन अर्हतों के केवल्य ज्ञान और उनके उपदेशों व सिद्धान्तों का संग्रह बारह आगम ग्रन्थों में है।

महावीर के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

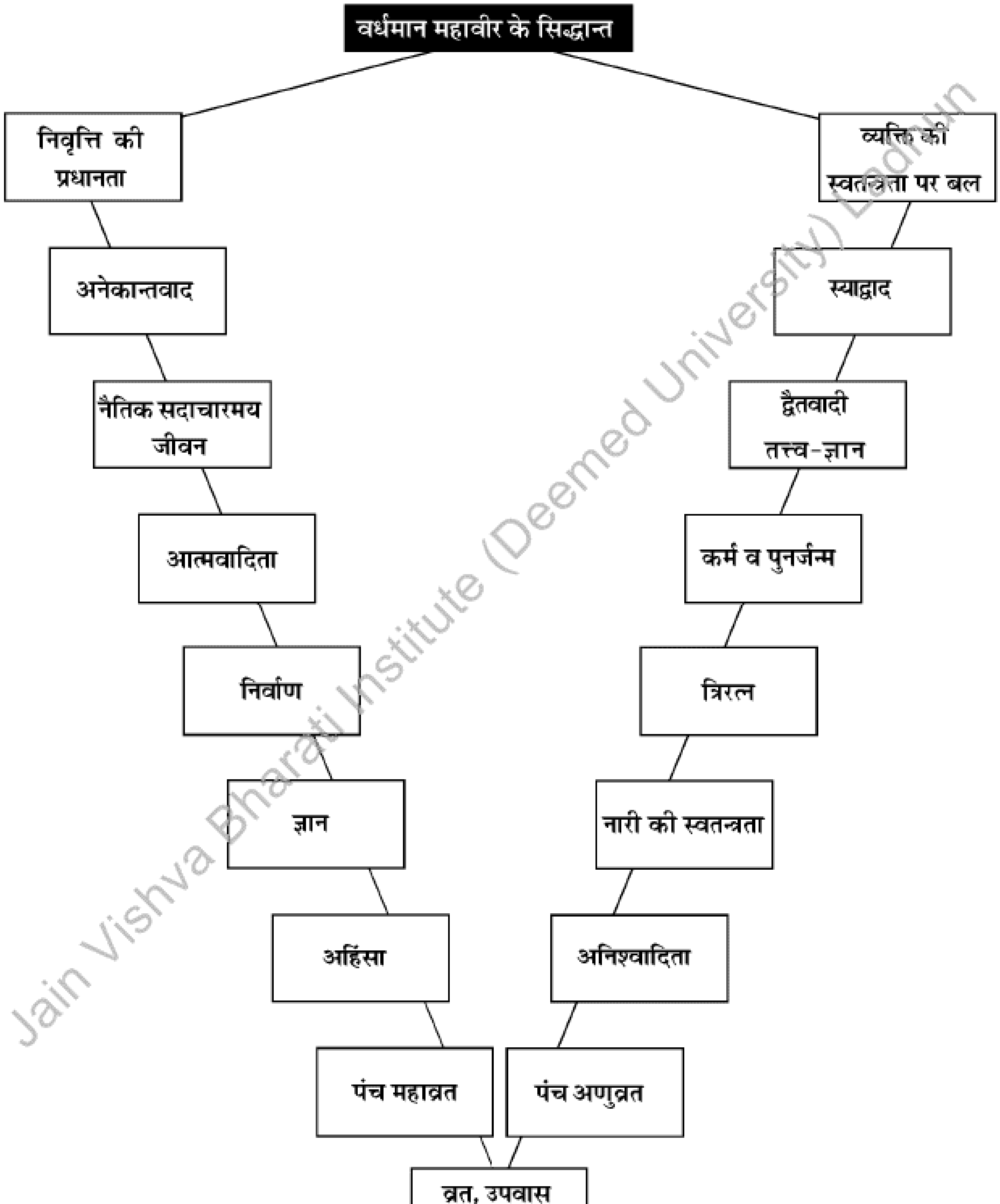

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.4.1 निवृत्ति की प्रधानता

संसार में मनुष्य अनेक दु:खों से पीड़ित है। मानव जीवन में सुख-शांति नहीं है। समस्त जीवन विविध तृष्णाओं, वासनाओं और कामनाओं से भरा पड़ा है। ये निरन्तर परिवर्द्धित होती रहती हैं और कभी भी सन्तुष्ट नहीं होती हैं। इनसे सदा दु:ख और कष्ट उत्पन्न होते रहते हैं। अत: विश्व की मूल समस्या दु:ख और दु:ख का विरोध है। इसलिए संसार को त्याग कर, सांसारिक बन्धनों का मोह छोड़कर भिक्षु बनकर इन्द्रिय निग्रह कर तपस्या द्वारा केवल ज्ञान की प्राप्ति की जाय। इस प्रकार महावीर के सिद्धान्त में निवृत्ति की प्रधानता है।

3.4.2 व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर बल

भगवान महावीर ने मनुष्य को कर्म के अधीन माना है। वह स्वयं ही अपना भाग्य-विधाता है। निर्वाण प्राप्ति और सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने के लिए उसे विविध कर्मकाण्ड और किसी प्रकार के पुरोहिती वर्ग पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। वह अपने अणुव्रतों, सदाचारमय जीवन और काया-क्लेश से कर्मों का क्षय कर निर्ग्रन्ल बन सकता है। वह अपना मार्ग निर्दिष्ट करने के लिए स्वतन्त्र है। इसके अतिरिक्त महावीर ने जैन धर्म में नारियों को भी स्वतन्त्रता का भी समर्थन किया। उनका मत था कि स्त्रियाँ निर्वाण प्राप्ति की अधिकारिणी हैं। उन्होंने महिलाओं के लिए जैन धर्म और संघ के द्वार खोल दिए। फलत: जैन धर्म में कई स्त्रियाँ दीक्षित हुई और उनमें कई विदुषी भी थी।

3.4.3 अनेकान्तवाद

अनेकान्त भगवान महावीर की मौलिक देन है। इसका अर्थ यह नहीं है कि महावीर से पूर्व किसी ने अनेकान्त का अनुभव नहीं किया। वस्तुत: जो भी व्यक्ति सत्य की साधना कर लेता है वह अनेकान्त में प्रतिष्ठित हो जाता है। अनेकान्त का अर्थ है, सत्य को समग्रता से स्वीकार करना। व्यक्ति जब सत्य को समग्रता और सर्वांगीणता से स्वीकार करता है तभी वह सत्य की आत्मा को जीत पाता है। अनेकान्त-दृष्टि व्यक्ति को अनाग्रही बनाती है। एकान्त से बन्धकर ही व्यक्ति आग्रही बनता है। अनेकान्त का अर्थ है, वस्तु में रहे हुए समस्त गुणधर्मों को स्वीकार करना। सत्यद्रष्टा वस्तु को उसके समस्त गुणधर्मों के साथ स्वीकार करता है। यही उसका अनेकान्त है। इसलिए जब तक कोई कहता है कि मधु कटु है तो वह उसका विरोध नहीं करता है, क्योंकि वह जानता है कि मधु में कटुता भी विद्यमान है। इसलिए अनेकान्त दृष्टि-सम्पन्न साधक समग्र रूप से समन्वय और अनाग्रह में जीता है।

अनेकान्त तृतीय चक्षु है। इस तृतीय चक्षु को अनावृत्त कर भगवान महावीर परम समन्वय में स्थिर बन गए। अनुरोध और विरोध के समस्त पयावरोधों से वे मुक्त हो गये। अपने मुनियों और श्रावकों को भगवान महावीर ने अनेकान्त को साधने और जीने का उपदेश दिया।

3.4.4 स्यादवाद

भगवान महावीर ने आत्मवादियों और नास्तिकों के एकान्तवादी मतों को त्यागकर मध्यम मार्ग अपनाया। इसे जैन धर्म का एकान्तवाद या स्यादवाद कहते हैं। इसके अनुसार भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखने से सत्य भिन्न-भिन्न हो सकता है। सत्य के विभिन्न पहलू हो सकते हैं, और मनुष्य को परिस्थिति भेद से उसका आंशिक ज्ञान ही उपलब्ध हो सकता है।

3.4.5 अनीश्वरवादिता और सृष्टि की नित्यता

जैन धर्म ईश्वर में विश्वास नहीं करता है। ईश्वर का अस्तित्व जैन सिद्धान्त के लिए, अप्रासंगिक था। महावीर इस बात में विश्वास नहीं करते थे कि इस विश्व का सृष्टा है और वह इस पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है। ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता के रूप में स्वीकार नहीं किया गया। इसीलिए जैन धर्म को अनीश्वरवादी कहा गया है। जैन धर्म के अनुसार सृष्टि अनादि और अनन्त है। सृष्टि निरन्तर चलती रहती है। सृष्टि एक शाश्वत नियम के अनुसार कार्य करती है और निरन्तर उत्थान-पतन की लहरों के दौरे से गुजरती रहती है। सृष्टि के विधान में ईश्वर की सहायता व नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है।

3.4.6 द्वैतवादी तत्त्व-ज्ञान

महावीर ने द्वैतवादी तत्त्व-ज्ञान का प्रसार किया। उनका मत था कि प्रकृति और आत्मा केवल दो तत्त्व है जो सदैव रहते हैं। दूसरे शब्दों में, कह सकते हैं कि मनुष्य का व्यक्तित्व भौतिक और आध्यात्मिक दो अंशों से बना है। भौतिक तत्त्व मनुष्य को बुरे कर्मों में फंसाकर नीचे की ओर दबाये रखता है और आध्यात्मिक तत्त्व अनन्त और विकासशील है। जब निर्वाण प्राप्त होता है तब भौतिक तत्त्व

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नष्ट हो जाता है और आत्मिक तत्त्व सद्कार्यों के कारण चिर-शाश्वत होकर ऊपर चढ़ते हैं। अंत में, वे मनुष्य को सांसारिक बन्धनों से मुक्त कर देते हैं। इसलिए आध्यात्मिक प्रवृत्ति का अनुसरण करना चाहिए।

3.4.7 आत्मवादिता

महावीर अनात्मवादी नहीं थे। वे आत्मा की अमरता में विश्वास करते थे। जिसको जड़ कहा जाता उसमे भी वे जीव का अस्तित्व मानते थे। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में चाहे भौतिक हो या अभौतिक, आत्मा होती है और जीवन का उद्देश्य आत्मा की शुद्धि है। आत्मा की शुद्धि के लिए सम्यक् जीवन की आवश्यकता है। जैन धर्म के अनुसार जीवन केवल मनुष्यों और पशु पक्षियों में नहीं, अपितु पेड़-पौधो, पत्थरों और जल में भी है। भगवान महावीर के अनुसार छ: जीव श्रेणियाँ है-पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति और घास।

3.4.8 कर्म और पुनर्जन्म

सांसारिक विषय-वासनाओं और तृष्णाओं से मनुष्य जो कार्य करता है, उसकी आत्मा उसके इन कर्मों के बंधन से बंध जाती है। ये कर्म आठ प्रकार के होते हैं —

3.4.8.1 ज्ञानावरणीय कर्म (आत्मा के ज्ञान को रोकने वाले कर्म)

3.4.8.2 दर्शनावरणीय कर्म (आत्मा की सम्यक् दर्शन शक्ति को अवरूद्ध करने वाले कर्म)

3.4.8.3 वेदनीय कम (दु:ख-सुख के सम्यक् ज्ञान को रोकने वाले)

3.4.8.4 आयुष्य कर्म (मनुष्य की उम्र को कम करने और निर्दिष्ट करने वाले)

3.4.8.5 नाम कर्म (मनुष्य की परिस्थिति, उसके शरीर आदि को अवरुद्ध करने वाले)

3.4.8.6 मोहनीय कर्म (आत्मा को माया मोह में फंसाने वाले कर्म)

3.4.8.7 गोत्र कर्म (मनुष्य के गोत्र और समाज में ऊंचे नीचे स्तर को निर्दिष्ट करने वाले कर्म)

3.4.8.8 अन्तराय कर्म (सद् कार्यों को रोकने वाले कर्म)

अनेक जन्मों में निरन्तर होने वाले ऐसे कर्मों के बन्धन आत्मा को बांधे हुए हैं। इस जन्म के कर्मों का नहीं, अपितु पूर्वजन्मों के कर्मों का बन्धन भी आत्मा पर है। सभी मनुष्य अपने-अपने संचित कर्मों के कारण संसार में भ्रमण करते हैं, उन्हीं के अनुसार भिन्न-भिन्न यौनियों में बार-बार जन्म लेते हैं और कर्मों का फल भोगते हैं। कर्म ही पुर्नजन्म का कारण है। अत: कर्म के बन्धनों से आत्मा को मुक्त करने का प्रयास करना चाहिए।

3.4.9 निर्वाण

जब मनुष्य इस जन्म में किसी प्रकार का कर्म-फल संग्रहित नहीं करता है, और सत्कर्मों से पूर्व जन्मों के कर्म फलों का नाश कर लेता है तब उसे निर्वाण प्राप्त होता है। पुनर्जन्म के कर्म फल से विमुक्ति ही निर्वाण है। कर्म की शक्तियों का विनाश और विकेन्द्रीकरण ही जीवन की अन्तिम मुक्ति है। तप करने तथा शरीर को कठोर यन्त्रणाओं के अनुशासन में रहने के लिए नवीन कर्मों का निर्माण नहीं होता और पहले से संचित कर्म भी धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं। कर्म के इस प्रकार के विनाश से आत्मा जीवन-मरण के चक्कर और भौतिक तत्त्वों से मुक्त हो जाती है। मनुष्य को निर्वाण प्राप्त होता है। निर्वाण आत्मा के भौतिक अंश के विनाश का नाम है।

3.4.10 त्रिरत्न

कर्म के बन्धनों का अन्त करने के लिए या केवल्य ज्ञान प्राप्त करने क लिए महावीर ने तीन साधनों का अनुसरण करने का आदेश दिया। जैन धर्म में इन्हें त्रिरत्न कहते हैं- 1. सम्यक् दर्शन, 2. सम्यक् ज्ञान, 3. सम्यक् चरित्र। सम्यक् दर्शन से तात्पर्य है जैन तीर्थंकरों में विश्वास करना और सत्य के प्रति श्रद्धा रखना। सम्यक ज्ञान से तात्पर्य है, सच्चा और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना। यह तीर्थंकरों के उपदेशों के गहन अध्ययन से प्राप्त होता है। सम्यक् चरित्र से अर्थ है इन्द्रियों और कर्मों पर पूर्ण नियन्त्रण। सब प्रकार के इन्द्रियों-विषयों में अनासक्त होना, उदासीन होना, जीवन में सम दु:ख सुख होना सम्यक् आचरण है।

3.4.11 ज्ञान

जैन धर्म के अनुसार ज्ञान पांच प्रकार का होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.4.11.1 मति ज्ञानः– यह इन्द्रियों से उपलब्ध होता है।

3.4.11.2 श्रुति ज्ञानः– यह दूसरों के वर्णनों को सुनकर प्राप्त किया जाता है।

3.4.11.3 अवधि ज्ञानः– यह दिव्य ज्ञान है। इसके द्वारा मनुष्य किसी भी समय, किसी भी स्थान, किसी भी वस्तु या व्यक्ति का ज्ञान उपलब्ध कर सकता है।

3.4.11.4 मनः पर्याय ज्ञानः– इस ज्ञान के द्वारा दूसरे व्यक्तियों के मन, मस्तिष्क और हृदय की बातों और विचारों को जाना जा सकता है।

3.4.11.5 केवल्य ज्ञानः– यह पूर्ण महान् ज्ञान है जो महान आत्माओं निर्ग्रन्थों और जितेन्द्रियों को उपलब्ध होता है। जब मनुष्य को यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो उसके कर्म–बंधन क्षय हो जाते हैं, भौतिक तत्त्वों का नाश हो जाता है और आत्मा के वास्तविक गुणों की उत्तरोत्तर अभिव्यक्ति होती है।

3.4.12 पंच अणुव्रत

भगवान महावीर द्वारा पंच अणुव्रत का उल्लेख किया गया है। सभी लोग संसार त्याग कर तप नहीं कर सकते और कर्मों के बन्धनों के विनाश के लिए निवृत्ति मार्ग नहीं अपना सकते। अतः महावीर ने गृहस्थों या श्रावकों के लिए पांच व्रत बताये हैं ।

3.4.12.1 अहिंसाः– प्राणीमात्र के प्रति मन, वचन और कर्म से हिंसा न की जाए।

3.4.12.2 सत्यः– सदा सत्य बोलना, पर यह सत्य भाषण, मधुर और सुन्दर होना चाहिए। क्रोध, लोभ और भय के समय मौन रहना चाहिए।

3.4.12.3 अस्तेयः– बिना आज्ञा के किसी की वस्तु या धन नहीं लेना चाहिए। बिना अनुमति के किसी के गृह में न तो प्रवेश करना चाहिए और न ही रहना चाहिए। दूसरों की सम्पत्ति की चोरी नहीं करनी चाहिए।

3.4.12.4 अपरिग्रहः– न तो कोई वस्तु और न किसी प्रकार की संपत्ति का संग्रह ही करना चाहिए, क्योंकि इससे मन में आसक्ति की भावना उत्पन्न होती है। धन–धान्य, वस्त्र, आभूषण आदि की लोलुपता से मनुष्य कर्मों के बन्धनों में अधिकाधिक जकड़ता है।

3.4.12.5 ब्रह्मचर्यः– सभी प्रकार की विषय–वासनाओं का त्याग। इन्द्रिय विषय वासना की बात न तो मन में लाये और न इस विषय मे बातचीत करें।

ये पांच दैनिक व्यावहारिक जीवन के नैतिक नियम हैं।

3.4.13 पंच महाव्रत

महावीर ने भ्रमण करने वाले जैन भिक्षु–भिक्षुणियों के लिए पांच महाव्रतों का उपदेश और आदेश दिया। ये अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य हैं। भिक्षु–भिक्षुणियों के लिए गृहस्थों की अपेक्षा इन पांच नियमों की कठोरता से पालन करने का उपदेश दिया। इन नियमों के अतिरिक्त और भी कठोर नैतिक नियम और उपनियम है। भिक्षु जीवन अत्यन्त ही नियमित, अनुशासित, मर्यादित और अनासक्त बना दिया गया था।

3.4.14 व्रत, उपवास और तपस्या

जैन धर्म में व्रत, उपवास और तपस्या पर अधिक बल दिया गया है। स्वयं महावीर ने भी इनका महत्त्व बतलाया। इनके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है और निर्वाण मिलता है। जैन साधना में तपस्या दो प्रकार की है– प्रथम बाह्य तपस्या और द्वितीय आभ्यन्तर तपस्या। प्रथम तपस्या में व्रत, उपवास, अनशन, भिक्षाचर्या, रसों का परित्याग और शरीर की यातनाएँ और कायाक्लेश सम्मिलित हैं। द्वितीय प्रकार की तपस्या में प्रायश्चित, विनय, सेवा, स्वाध्याय, ध्यान और शरीर त्याग है।

3.4.15 नैतिक सदाचारमय जीवन

महावीर ने जटिल धार्मिक क्रिया विधियों और कर्मकाण्ड को निरर्थक बताकर विशुद्ध नैतिक आचारण पर अधिक बल दिया था। वे सांसारिक विषय–वासनाओं के प्रति राग भाव का उन्मूलन करने के उपदेश देते थे। उनका कथन था कि– ''जो चरित्राचार के गुणों से संयुक्त है, जो सर्वोत्तम संयम का पालन करता है, जिसने समस्त आश्रवों को रोक दिया है, जिसने कर्मों का नाश कर दिया है, वह विपुल, उत्तम और ध्रुवगति मोक्ष को जाता है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.4.16 अहिंसा

भगवान महावीर ने अहिंसा पर अत्यधिक बल दिया गया है। अनका विश्वास है कि सभी वस्तुओं-जड़ और चेतन, दोनों में जीव है। महावीर के अनुसार छ: प्रकार के जीव हैं- पृथ्वीकाय, जलकाय, वायुकाय, अग्निकाय, वनस्पतिकाय और सजीव। ये आघात पहुंचाने, छेदने, बांधने, अत्यधिक बोझ लादने, भोजन, पानी रोकने आदि से कष्ट का अनुभव करते हैं। प्रति-हिंसा होती है। अत: प्राणीमात्र के प्रति मन, वचन और कर्म से संयमपूर्ण और दया का व्यवहार किया जाना चाहिए। छोटे से छोटे जीव के प्रति चाहे उसका विकास कितना ही निम्न क्यों न हो, किसी प्रकार से हिंसा नहीं पहुँचानी चाहिए।

3.4.17 नारी की स्वतन्त्रता

महावीर नारी स्वतन्त्रता के समर्थक थे। वे नारियों के सामाजिक और धार्मिक अधिकारों के पक्षधर थे। उन्होंने स्त्रियों के लिए धर्म के द्वार खोल दिये। उन्होंने पुरुषों के समान स्त्रियों को भी निर्वाण-प्राप्ति की अधिकारिणी बतलाया और जैन धर्म के संघ के द्वार स्त्रियों के लिए खोल दिये। इससे जैन धर्म में स्त्रियों के दो वर्ग हो गए-श्रमणी और श्राविका।

3.5 विश्व शांति और उसका मार्ग

''सब जीवों को आयुष्य और सुखप्रिय है-दु:ख और वध अप्रिय है, इसलिए किसी भी प्राणी का वध नहीं करना चाहिए, सताना नहीं चाहिए-यही ध्रुव सनातन धर्म है, इसी का नाम अहिंसा, समता, विश्वबन्धुता या विश्वमैत्री है।''

ढ़ाई हजार वर्ष पुराने भगवान महावीर के ये विचार सम्भवत: उस समय इतने आवश्यक नहीं थे, जितने आवश्यक आज हैं। आज के मानव का मन हिंसा और लोभ की समष्टि बना हुआ है। आज के जीवन का उद्देश्य है- भौतिक सुख समृद्धि। आज का शिक्षित और सभ्य समाज पहले क्षण कहता है- ''उत्पीड़न मत करो, शोषण मत करो।'' दूसरे वक्तव्य की पंक्तियाँ होगी- ''हमारा जीवन-स्तर ऊंचा उठे, प्रत्येक व्यक्ति के पास आधुनिक भौतिक सुख सुविधा के सभी साधन रहें।'' अल्पविक भौतिक लालसा हिंसा को जन्म देती है।

यदि कोई व्यक्ति हिंसा का रास्ता अपनाता है तो उसका मुकाबला करने के लिए महावीर अहिंसा की ढ़ाल लेकर खड़े हो जाते हैं।

'समण-सुत्त' में कहा है- ''अहिंसा तमाम आश्रयों का हृदय है, तमाम शास्त्रों का रहस्य और तमाम व्रतों और गुणो का पिण्डभूत सार है।''

भगवान् महावीर का मानना है कि धन, जमीन और स्त्री ले जाने की अर्थात् 'चोरी' की बात है तो ऐसे के विरुद्ध अपरिग्रह व्रत धारण किया जाए। चोर को मारने से, उसे सजा देने से या मार डालने से यदि चोरी कम हो सकती, तो आज दुनियाँ में एक भी चोर जीवित न बचा होता। हजारों वर्षों से चोरों को अनेक प्रकार की सजाएँ समाज की ओर से दी जाती है। चाहे कितनी भी कठोर सजा क्यों न रखी गयी हो पर चोरी तो कायम ही रही है। महावीर ने चोरों का सन्चा प्रतिकार अपरिग्रह में देखा।

जैन दर्शन का मूल अहिंसा है। जैन दृष्टि से आदमी दिखायी पड़ती हिंसा भले न कर रहा हो तो भी हिंसक हो सकता है और दृश्य हिंसा करने वाला हिंसक न हो ऐसा अहिंसा कर्त्ता के भाव पर आधारित होता है, स्थूल क्रिया पर नहीं। शोषण, युद्ध और गरीबी से विदग्ध आज की दुनिया को ठंडी करने के लिए अहिंसा का ऐसा भाव भी चन्दन के लेप का काम करे ऐसा हो सकता है। वर्तमान परिस्थितियों में भागवान महावीर का जीवन दर्शन केवल वैज्ञानिक ही नहीं, परन्तु व्यावहारिक भी प्रतीत होता है। भगवान महावीर के अहिंसा-दर्शन की वैज्ञानिक व्याख्या वर्तमान में आचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा की गई है।

3.5.1 विश्व शांति के साधन

भगवान महावीर ने केवल शांतिभंग करने वाले तत्त्वों की बात नहीं की, अपितु उन साधनों पर चलने की आवश्यकता पर बल दिया जिनके आधार पर विश्व में स्थाई शांति का वातावरण स्थापित किया जा सके। ये साधन आज भी अपनी प्रासंगिकता के लिए है। ये साधन निम्नलिखित हैं-

1. समाज रचना का मूल आधार सत्य और अहिंसा रहे।
2. अहिंसा दार्शनिक तत्त्व के रूप में नहीं-आचरण के रूप में स्वीकार की जाय।
3. पशुबल का मुकाबला पशुबल से न किया जाए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. अहिंसा और परिग्रह का वातावरण बनाया जाए।
5. अर्थसंग्रह न किया जाए, किसी प्रकार से भी आर्थिक शोषण न किया जाए।
6. जीवन की आवश्यकताओं का विस्तार न किया जाए, दूसरे की आवश्यकताओं पर अधिकार न किया जाए।
7. भौतिक सुख-सुविधाओं को प्राधान्य देने वाले तथा भौतिक शक्तियों में विश्वास रखने वाले, समाज, जाति या राष्ट्र से प्रतिस्पर्द्धा न की जाए।
8. व्यक्ति को संयम और आध्यात्मिकता की शिक्षा दी जाए। भौतिक शिक्षा के बिना गृहस्थ जीवन का औचित्यपूर्ण निर्वाह नहीं होता इसलिए सामाजिक प्राणी उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता, नियन्त्रण रखने के लिए उसके साथ आध्यात्मिक शिक्षा का होना जीवन की अनिवार्यतम आवश्यकता है।
9. अपने सिद्धान्त दूसरे पर जबरदस्ती न थोपे जाए। सैदान्तिक मतभेदों के कारण अनुचित व्यवहार न किया जाए।
10. राजनीतिक सत्ता या पद प्राप्ति का लोभ न रखा जाए।
11. प्रतिशोध की भावना से किसी को भी दण्ड न दिया जाए।
12. जातिगत या सम्प्रदायक संघर्षों को प्रोत्साहन न दिया जाए।
13. जिससे कम लाभ और अधिक अत्याचार हो ऐसे नियमों का निर्माण न किया जाए।

3.6 जातिवाद का निराकरण

भगवान महावीर ने जाति को स्वीकार नहीं किया। भगवान ने कहा, ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से कोई ब्राह्मण नहीं होता है और शुद्र कुल में जन्म लेने से कोई शुद्र नहीं होता है। व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शुद्र जन्म से नहीं होता है बल्कि कर्म से होता है।

श्रेष्ठ कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति भी अपने अश्रेष्ठ कर्मों से श्रेष्ठता का अधिकारी नहीं रह जाता है। अश्रेष्ठ कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति अपने श्रेष्ठ कर्मों से श्रेष्ठ पद का अधिकारी बन जाता है। महावीर का युग घोर जातिवाद का युग था। उस युग में ब्राह्मण कुल में जन्म लेने वाले व्यक्ति को सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था, चाहे उसमें श्रेष्ठ गुण नहीं भी हो।

महावीर ने अपने प्रवचनों में घोषणा की कि, सब मानव समान है। जाति मानव को छोटा या बड़ा नहीं बनाती। कर्म मानव को छोटा और बड़ा बनाते हैं। महावीर ने न केवल ऐसी घोषणा की, अपितु उन्होंने सभी जातियों के लोगों के लिए अपने धर्म में प्रवेश के द्वार खोल दिए। महावीर आत्मद्रष्टा महर्षि थे। आत्मद्रष्टा के लिए आत्मा ही प्रधान होती है, शेष सब कुछ अप्रधान। महावीर ने अध्यात्म के क्षेत्र में आत्मा की प्रधानता को प्रतिष्ठा दी।

3.7 नारी उत्थान

अढ़ाई और तीन हजार वर्ष पूर्व भारत में नारी को वह स्थान प्राप्त नहीं था जो आज प्राप्त है। पुरुष ने अपने वर्चस्व की स्थापना के लिए नारी को 'पैरों की जूती' और दासी जैसे सम्बोधन दिये थे। उसे शैक्षणिक अधिकारों से वंचित कर घर की चार दीवारी में कैद कर दिया था। सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में उसके द्वार बन्द थे। इतना ही नहीं उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को छीनकर उसे परिग्रह की एक वस्तु मान लिया गया था। नारी की इस दयनीय दशा पर महावीर की करुणा प्रवाहित हुई। भगवान ने अपने प्रथम समवसरण में ही नारी के लिए संन्यास का द्वार खोलकर उसके स्वतंत्र अस्तित्व और उसकी पुरुष-समकक्षता की घोषणा कर दी। भगवान ने कहा, पुरुष के समान ही नारी भी मोक्ष की अधिकारिणी है। नारी अनन्त शक्ति स्वरूप है। वह तीर्थंकरत्व तक की ऊंचाई को स्पर्श करने में सक्षम है। भगवान महावीर की इस घोषणा से नारी उत्क्रान्ति का शंख गूंज उठा। तत्कालीन नारी समाज में इतना उत्साह जगा कि छत्तीस हजार नारियों ने दीक्षित होकर आत्मकल्याण का पथ प्रशस्त किया। नारी को जो आज समानता का स्थान प्राप्त है उसकी प्रतिष्ठा में भगवान महावीर का महान् योगदान है।

3.8 दास प्रथा पर प्रहार

उस युग में दास प्रथा का बोल बाला था। आज जैसे पशुओं का क्रय-विक्रय सामान्य माना जाता है वैसे ही उस युग में मनुष्यों का क्रय-विक्रय एकदम सामान्य बात थी। भगवान महावीर ने दास प्रथा के प्रहार के लिए कठिन अभिग्रह धारण किया। पांच मास और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पच्चीस दिन के उनके कठिन अभिग्रह ने पूरे वत्सल देश का ध्यान केन्द्रित कर दिया। उस क्षण अपने अभिग्रह के फलस्वरूप भगवान ने दासी का कष्टमय जीवन जी रही चन्दनबाला के हाथ से भिक्षा ग्रहण कर जनमानस को झकझोर दिया। दास वर्ग हर्ष से उछल पड़ा। इस घटना से दास प्रथा का ह्रास हुआ और मानव-समानता का समुत्कर्ष हुआ।

मुनि संघ के लिए महावीर ने व्यवस्था दी, गुण ज्येष्ठ तथा दीक्षा ज्येष्ठ मुनि ही श्रेष्ठ है। वंध है। एक क्षण पहले दीक्षा लेने वाला दास भी एक क्षण पश्चात दीक्षा लेने वाले स्वामी के लिए वंध है। मानवीय एकता और गुण पूजा को भगवान महावीर ने पूर्ण प्रतिष्ठा दी थी जो आज भी इन परंपरा का प्राण तत्त्व है।

3.9 लोककल्याण के सन्दर्भ में

भगवान महावीर ने व्यक्ति के पूर्ण विकास के लिए एक ओर तो जहाँ आत्म विकास का पथ प्रशस्त किया है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने लोककल्याण के लिए सामाजिक-मूल्यों का भी सृजन किया है। महावीर ने जिन मूलभूत सामाजिक मूल्यों को उद्‌घाटित किया है, वे है- ''अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त।'' ये तीनों मूल्य महावीर के सामाजिक अनुसन्धान के परिणाम है। आत्मसाधना में रत महावीर ने लौकिक व्यवस्था के आधारभूत तत्त्वों की उपेक्षा नहीं की। उनका सामाजिक मन कह उठा कि अहिंसा की प्रतिष्ठा मनुष्य-मनुष्य में व्याप्त भेद को अस्वीकृत करने में हैं। ऊँच-नीच, छुआ-छूत हिंसा की पराकाष्ठा है। प्रत्येक मनुष्य का अस्तित्व गौरव पूर्ण है। उसकी गरिमा बनाये रखना अहिंसा का प्रमुख लक्ष्य है। समाज के प्रत्येक मनुष्य चाहे स्त्री हो या पुरुष सभी को धार्मिक स्वतंत्रता है। अहिंसक समाज वर्ग-शोषण का कभी भी पक्षपाती नहीं हो सकता। महावीर ने दलित से दलित लोगों को सामाजिक सम्मान देकर उनमें आत्मसम्मान प्रज्ज्वलित किया। वास्तव में जब महावीर ने हरिकेशी चाण्डाल को अपने गले लगाया तो अहिंसा अपने पूरे रूप में आलोकित हुई। पुरुष के समान स्त्री को जब महावीर ने प्रतिष्ठा दी तो सारा समाज अहिंसा के आलोक से जगमगा उठा। अहिंसा का यह उद्‌घोष आज भी हमारे लिए महत्त्वपूर्ण बना हुआ है। यह महावीर की जनतान्त्रिक दृष्टि का परिपाक था। महावीर यह भी कहते हैं कि किसी भी प्राणी मात्र के प्रति मन, वचन और कर्म से पीड़ा पहुँचाना हिंसा है।

महावीर इस बात को भली-भाँति जानते थे कि आर्थिक असमानता और आवश्यक वस्तुओं का अनुचित संग्रह समाज के जीवन को अस्त-व्यस्त करने वाला है। इसके कारण एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का शोषण करता है और उनको गुलाम बना कर रखता है। मनुष्य की इस लोभ प्रवृत्ति के कारण समाज अनेकों कष्टों का अनुभव करता है। इसलिए महावीर ने कहा- आर्थिक असमानता मिटाने का अचूक उपाय है- अपरिग्रह। समाज में विद्यमान संसाधन जब कुछ लोगों के हाथों में केन्द्रित हो जायें तो उससे समाज के चन्द लोगों का जीवन स्तर उच्च कोटि का हो जाएगा तथा अधिकांश लोग अभाव भरी जिन्दगी जीने को मजबूर होते हैं। यह स्थिति समाज के लिए घातककारी है जिसकी अंतिम परिणित विघटन के रूप में होती है। अत: अपरिग्रह का सिद्धान्त अपनाकर समाज को सही दिशा प्रदान की जा सकती है।

वैचारिक मतभेद भी समाज में द्वन्द्व को जन्म देते हैं, जिनके कारण समाज रचनात्मक प्रवृतियों को विकसित नहीं कर सकता। वैचारिक मतभेद मानव मन की सृजनात्मक मानसिक शक्तियों का परिणाम होता है पर इसको उचित रूप में न समझने से मनुष्य के बीच आपसी मतभेद संकुचित संघर्ष का कारण बनता है और इससे समाज शक्ति विघटित हो जाती है। समाज के इस पक्ष को भगवान महावीर ने गहराई से समझा।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि महावीर का सारा जीवन आत्म-साधना के पश्चात् सामाजिक मूल्यों के निर्माण में ही व्यतीत हुआ। इसी कारण महावीर किसी एक देश, जाति व समाज के न होकर मानव जाति के गौरव के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

3.10 सारांश

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भगवान महावीर के द्वारा प्रस्तुत विचार आज भी प्रासंगिक हैं। इनसे न केवल मानव को अपने जीवन को उन्नत बनाने में मदद मिलती है बल्कि आध्यात्मिक सुख की अनुभूति भी होती है, जो मोक्ष के मार्ग का प्रशस्त करती है। विश्वशांति पर भी भगवान महावीर ने विशेष बल देकर मानवतावाद, विश्व-बन्धुत्व, पारस्परिक सौहर्द, अहिंस का अजर-अमर संदेश देकर मानवता के कल्याण को प्रोत्साहन दिया। उन्होंने उन परम्पराओं एवं कुरीतियों पर कड़ा प्रहार किया, जो समाज में विषमता को बढ़ाती हैं। उन्हें महिलाओं को भी पुरुषों के समान सुविधाएँ, अवसर तथा अधिकार उपलब्ध करवाने पर जोर दिया ताकि समाज का चहुँमुखी विकास किया जा सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य महाप्रज्ञ – महावीर का अर्थशास्त्र
2. श्रमण महावीर
3. साहित्य समिति, ''भगवान महावीर : जीवन और उपेदश'' भगवान महावीर 2500 वाँ निर्वाण महोत्सव महा–समिति, उदयपुर।
4. गुणवंत शाह, ''महामानव महावीर'' विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी।
5. डॉ. भागचन्द्र 'भास्कर', ''भगवान महावीर और उनका चिन्तन'' श्री रत्न जैन पुस्तकालय, पाथर्डी
6. डॉ. जय कुमार जैन, ''पार्श्वनाथ चरित्र का समीक्षात्मक अध्ययन'' सन्मति प्राकशन, मुज्जफरनगर।
7. श्रीमद् तुलसीराम जी महाराज, ''विश्व शांति और उसका मार्ग'' श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता।
8. बी.एन. लुनिया, ''प्राचीन भारतीय संस्कृति''
9. डॉ. पुष्पलता जैन, ''भगवान महावीर के जीवन में घटित चमत्कारिक घटनाओं का पुनर्मूल्यांकन, तुलसी प्रज्ञा''
10. डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, ''भारतीय इतिहास : एक दृष्टि'' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
11. डॉ. हीरालाल जैन, ''भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान'' मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल।
12. मुख्तार (सं), ''रत्नकरण्ड श्रावकाचार'' जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

3.12 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. महावीर के प्रमुख सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिये।
2. विश्व शांति की दिशा में महावीर के विचारों की समीक्षा कीजिए।
3. वर्तमान सन्दर्भ में भगवान महावीर के विचारों की प्रासंगिकता को सिद्ध कीजिए।
4. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिए।
   1. नारी उत्थान, 2. जातिवाद का निवारण,
   3. अहिंसा संबंधी विचार, 4. लोककल्याण संबंधी विचार

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. पंच महाव्रत का उल्लेख कीजिए।
2. स्वतन्त्रता के संबंध में भगवान महावीर के विचार बताइए।
3. अनेकान्तवाद पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. त्रिरत्न का उल्लेख कीजिए।
5. परिग्रह का सिद्धान्त क्या है ?
6. भगवान महावीर ने विश्व शांति के कौन से साधन बताए हैं।
7. दास प्रथा पर भगवान महावीर ने किस प्रकार प्रहार किया ?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भगवन महावीर का जन्म कब और कहां हुआ था ?
2. महावीर के माता–पिता का नाम बताओ ?
3. अनेकान्त का क्या अर्थ है ?
4. जैन धर्म मे कौन से त्रिरत्न पर बल दिया गया है ?
5. पंच अणुव्रत के नाम बताओ ?
6. भगवान महावीर की अहिंसा की अवधारणा के आधुनिक भाष्यकार कौन है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संवर्ग-2

इकाई- 4 राजा राममोहनराय

संरचना

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 जीवन परिचय
4.4 प्रमुख रचनाएँ
4.5 राजा राममोहनराय के राजनीतिक विचार
4.5.1 वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का प्रतिपादन
4.5..2 प्रेस की स्वतन्त्रता
4.5..3 न्यायिक व्यवस्था में सुधार
4.5..4 प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप
4.5..5 राजस्व प्रणाली में सुधार
4.5..6 राजनीति और कानून के माध्यम से समाज सुधार
4.5..7 मानवतावाद एवं विश्वबन्धुत्व
4.5..8 शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त
4.5..9 धर्मनिरपेक्षता
4.5..10 यूरोपवासियों को भारत में बसाने का समर्थन
4.6 राजा राममोहनराय के समाज सुधार संबंधी विचार
4.6.1 परम्परावादिता का विरोध
4.6.2 सती प्रथा का विरोध
4.6.3 नारी स्वतन्त्रता, नारी अधिकार, नारी शिक्षा और नारी उद्धार
4.6.4 जाति प्रथा व जातिगत संकीर्णता का विरोध
4.6.5 शिक्षा संबंधी विचार
4.7 आर्थिक विचार
4.7.1 संपत्ति संबंधी विचार
4.7.2 किसानों के शोषण का विरोध
4.7.3 मितव्ययता का समर्थन
4.7.4 स्वतन्त्र व्यापार का समर्थन
4.7.5 देश से धन निकासी का विरोध
4.8 धार्मिक विचार
4.8.1 एकेश्वर का समर्थन
4.8.2 मूर्ति पूजा का विरोध
4.8.3 परम्पराओं एवं अन्ध विश्वासों का विरोध
4.8.4 हिन्दू धर्म में आस्था
4.8.5 धार्मिक सहिष्णुता
4.9 राजा राममोहन राय का योगदान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.9.1 भारतीय पुनर्जागरण के प्रवर्तक
4.9.2 राष्ट्र भक्ति के प्रोत्साहक
4.9.3 महान् समाज सुधार के रूप में
4.9.4 धर्म सुधारक
4.9.5 स्वतन्त्रता के पुजारी
4.9.6 राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव के पत्थर
4.9.7 प्रजातांत्रिक मूल्यों के पोषक
4.9.8 नारी उत्थान का समर्थन
4.9.9 पूर्व तथा पश्चिम के समन्वय का समर्थन
4.9.10 शिक्षा संबंधी विचार
4.9.11 मानववाद, अन्तरराष्ट्रवाद एवं विश्व बन्धुत्व का प्रतिपादन
4.9.12 उदारवाद एवं उपयोगितावाद के समर्थक
4.10 सारांश
4.11 सन्दर्भ सूची
4.12 अभ्यास प्रश्नावली

4.1 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन के रूप में राज राममोहनराय के विचारों को जानना कि उन्होंने किस प्रकार भारत में पुनर्जागरण की दिशा में प्रयास किये। उस समय भारतीय समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। राजनीतिक दृष्टि से भारत ब्रिटिश सरकार के आधिपत्य में आ चुका था। भारत की आर्थिक परिस्थितियाँ भी अपनी बदहाली के आँसू बहा रही थी। इस तरह भारत में सर्वत्र अंधकार व्याप्त था लेकिन राजाराम मोहनराय के विचारों एवं प्रयासों से आशा की एक नवीन किरण जागृत हुई। इस अध्याय में आप जन सकेंगे—

- राजा राममोहनराय के राजनीतिक विचार, जो स्वतन्त्रता, समानता, विश्व-बन्धुत्व पर आधारित है,
- एक समाज सुधारक के रूप में उनकी जो भूमिका रही, उससे माध्यम से उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया तथा उन्हें दूर करने के लिए कानूनी प्रयास किये,
- आर्थिक चिन्तक के रूप में उन्होंने भारत की बदहाल अर्थव्यवस्था का चित्रण प्रस्तुत किया तथा उसमें सुधार लाने हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं,
- धार्मिक क्षेत्र में उन्होंने एकेश्वरवाद का समर्थन करते हुए मूर्तिपूजा एवं कर्मकाण्डों का विरोध कर हिन्दू धर्म को सही दिशा पर चलने के लिए प्रेरित किया,
- उनके विचारों से भारत में राष्ट्रवाद की भावना का विकास हुआ, उसके सन्दर्भ में भी जानकारी हासिल कर सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

18 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतीय समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। समाज की स्वस्थ मान्यताओं के स्थान पर बुराईयाँ हावी हो गई थी जो समाज को गहरे गरत की ओर ले जा रही थी। समाज विघटन के कगार पर खड़ा था। विश्व का गुरु कहलाने वाली सभ्यता एवं संस्कृति अपने पतन के दु:ख की पीड़ा से ग्रस्त थी। स्तम्भ समाज के चन्द ठेकेदार मान्यताओं की व्याख्या अपनी सुविधानुसार कर रहे थे। राजा राममोहन राय का प्रादुभाव ऐसे समय में हुआ और उन्होंने रास्ता भटके हुए समाज को पुन: सही रास्ते पर लाने और समाज की खोई हुई प्रतिष्ठा की पुन: दिखाने के लिए प्रयास किये। इन प्रयासों के कारण उन्हें आधुनिक भारत का निर्माता कहा जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.3 जीवन परिचय

राजा राम मोहन राय का जन्म 22 मई, 1772 को बंगाल के हुगली जिले के राधानगर गाँव में हुआ। राजाराम मोहनराय के पितामह कृष्णचन्द्र बेनर्जी बंगाल के नवाब के यहाँ उच्च पद पर आसीन थे। उनकी सेवाओं से प्रभावित होकर नवाब ने उन्हें राय की उपाधि प्रदान की थी। तभी राय शब्द उनके परिवार के साथ जुड़ गया। राममोहन राय के पिता रमाकान्ता राय तथा माता तारिणीदेवी थे। उनका परिवार सुसभ्य, धर्मनिष्ठ और ईश्वर भक्त था। उनके पिता वैष्णव तथा माता शिव थी। राम मोहन बचपन से ही प्रतिभा के धनी थे। उनकी दृष्टि में उनके माता-पिता बहुत अधिक परम्परावादी हैं। पिता मूर्तिपूजक थे किन्तु राम मोहनराय उसके घोर विरोधी थे। स्वतन्त्रता चिन्तन और अभिव्यक्ति के प्रबल समर्थक राममोहन अपने विचारों को स्पष्ट अभिव्यक्ति देते रहते थे उनके पिता के मतभेद उत्पन्न हो गई। ऐसी स्थिति में उन्होंने घर छोड़ना ही उचित समझा।

राममोहन राय के पिता ने अपने पुत्र के लिए शिक्षा का श्रेष्ठ प्रबन्ध किया था। अत: पन्द्रह वर्ष की आयु में ही उन्होंने बंगला, फारसी, अरबी, हिन्दी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इसके बाद उन्होंने अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान अर्जित किया। 1804 में इन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नौकरी शुरु की, लेकिन 1814 में नौकरी में एक लिपिक के पद पर 1815 में आत्मीय सभा की स्थापना की जिसमें धर्म और दर्शन पर विचार होता था। 1821 में बंगली में 'सम्वाद कौमुदी' तथा फारसी में 'मिरात-उल-अखबार' नामक दो पत्र निकाले। 1828 में उन्होंने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की, जो इनके जीवन की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घटना थी। यद्यपि ब्रह्म समाज की स्थापना के बाद उदारतावाद, तर्कवाद और आधुनिकता का वह वातावरण तैयार किया, जिसने भारतीय चिन्तन में क्रान्ति उत्पन्न कर दी।

राममोहन राय को 1830 इंग्लैण्ड जाने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने यहाँ जाकर मुगल सम्राट अकबर द्वितीय के पक्ष में प्रबलता के साथ दावा पेश किया। इससे प्रभावित होकर सम्राट् ने राममोहन राय को 'राजा' की उपाधि से सम्मानित किया इंग्लैण्ड से वे फ्रांस गये जहाँ वे बीमार हो गए तथा पुन: इंग्लैण्ड लौट आये, जहाँ 20 सितम्बर, 1833 को ब्रिस्टल शहर में इस महान् समाज सुधारक का देहावसान हो गया।

4.4 प्रमुख रचनाएँ

राजा राममोहन राय की प्रमुख रचनाएँ निम्न हैं -

1. हिन्दू-उत्तराधिकार-विधि पर आधारित स्त्रियों के प्राचीन अधिकारों का आधुनिक अतिक्रमण (1822)
2. प्रेस-नियमन के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय एवं सम्राट् को याचिका (1823)
3. अंग्रेजी शिक्षा पर लार्ड एम्हर्स्ट के नाम एक पत्र (1823)
4. ईसाई जनता के नाम अन्तिम अपील (1931)
5. यूरोपवासियों को भारत में बसाने संबंधी विचार (1831)
6. भारत की न्यायिक एवं राजस्व-व्यवस्था पर प्रश्नोत्तर (1832)

4.5 राजा राममोहन राय के राजनीतिक विचार

राजा राममोहन राय का सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र के साथ-साथ राजनीतिक क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। उनके विचारों से भारत में स्वराज्य का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस समय अंग्रेजों का प्रभाव सर्वत्र व्यापक था। उन्होंने अन्धकार में डूबे भारतीय समाज में नव जागरण का दीप प्रज्जवलित किया। इससे बौद्धिक जागृति को जन्म दिया, देश प्रेम और अपने ही अतीत के प्रति गौरव भावना को जन्म दिया, यह मार्ग राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की ओर ले जाने वाला था। उन्होंने राष्ट्रीय एकता की भावना को जन्म देने का प्रयास किया, जो आगे चलकर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का आधार बनी। उन्होंने व्यक्ति के व्यक्तित्व की महत्ता, विचार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं प्रेस की स्वतन्त्रता का प्रतिपादन किया, यह स्थितियाँ राष्ट्रवाद को जन्म देती थी। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने उन्हें 'भारत के संवैधानिक आन्दोलन का जनक' कहा। उनके राजनीतिक चिन्तन की प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं—

4.5.1 वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का प्रतिपादन

राजा राममोहन राय ने प्राकृतिक अधिकारों की पवित्रता को स्वीकार किया, लेकिन व्यक्ति स्वतन्त्रता के साथ-साथ सामाजिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपयोगिता में भी गहरी आस्था थी। राज्य के कार्य क्षेत्र के संबंध में राय के विचार उदार थे। वे चाहते थे कि राज्य को निर्बल तथा असहाय व्यक्तियों की रक्षा करनी चाहिए। उन्होंने न केवल भारत बल्कि विश्व के सभी राष्ट्रों की स्वतन्त्रता के प्रति सहानुभूति व्यक्त की। राय को अपने देश से गहरा प्रेम था। राजनीतिक स्वतन्त्रता में उनका विश्वास था। इस तरह उनके स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम को क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता। उन्होंने एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के उन देशों की स्वतन्त्रता की कामना की जो लम्बी औपनिवेशिकता की पीड़ा से ग्रस्त थे। उनके स्वतन्त्रता संबंधी विचारों में विश्व बन्धुत्व तथा अन्तरराष्ट्रवाद की भावना परिलक्षित होती है। उनके विचारों में पाश्चात्य एवं भारतीय विचारधारा का संगम देखा जा सकता है। राजा राममोहन राय के राजनीतिक विचारों के संबंध में विपिन चन्द्रपाल ने लिखा है, ''वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारत को राजनीतिक स्वतन्त्रता का संदेश दिया'' लेकिन यहाँ ध्यान देने योग्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि राय ने कभी भी भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता का समर्थन नहीं किया। वे ब्रिटिश राज को भारत के लिए उपयोगी मानते थे और अंग्रेजों की छत्रछाया में राजनीतिक सुधारों के पक्षधर थे।

राजा राममोहनराय के राजनीतिक विचार

- ❖ वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय स्वतंत्रता का प्रतिपादन
- ❖ प्रेस की स्वतन्त्रता
- ❖ न्यायिक व्यवस्था में सुधार
- ❖ प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप
- ❖ राजस्व प्रणाली में सुधार
- ❖ राजनीतिक और कानून के माध्यम से समाज-सुधार
- ❖ मानवतवाद और विश्वबन्धुत्व
- ❖ शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त
- ❖ धर्म निरपेक्षता
- ❖ यूरोपवासियों को भारत में बसाने का समर्थन

↓

पुनर्जागरण एवं संवैधानिक सुधारों की दिशा में बढ़ते कदम के रूप में

4.5.2 प्रेस की स्वतन्त्रता

अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों को सीधा प्रभाव समाचार पत्रों तथा विचार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर पड़ा। तत्कालीन गवर्नर जनरल जॉन एडम्स ने एक अध्यादेश जारी कर प्रेस पर प्रतिबन्ध लगा दिया, जिसका राजा राममोहन राय ने कड़ा विरोध किया और सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की। वे प्रेस की स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक थे। जिसका आभास इस बात से होता है कि उन्होंने 1821 में सम्वाद कौमुदी तथा मिरात-उल अखबार नामक पत्रिका का प्रकाशन किया। उनका तर्क था कि सरकार को प्रेस की स्वतन्त्रता से भयभीत नहीं होना चाहिए। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता जिस समाज के पास नहीं होती है, वह प्रगति की ओर उन्मुख नहीं हो सकता। प्रेस का ध्येय जनता और शासन के बीच एक कड़ी की भूमिका निभाना है। प्रेस का उद्देश्य जनता और सरकार दोनों को ही शिक्षा प्रदान करना होना चाहिए। राय का कहना है कि संसार में जहाँ भी प्रेस पर प्रतिबंध लगाने का प्रयास हुआ, वहाँ क्रान्ति या विद्रोह के रूप में जन आक्रोश देखने को मिला है। लेकिन राय प्रेस को अनियन्त्रित तथा असीमित अधिकार सौंपना नहीं चाहते थे वे उस पर उचित प्रतिबन्धों को आवश्यक मानते थे। राय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की पत्रकारिता का मूल्यांकन करते हुए के. दामोदरन ने लिखा कि है, ''उनकी पत्रकारिता ने देश के समस्त भागों में राष्ट्रीय पुनर्जागरण के सन्देश को पहुँचा दिया। उनका सन्देश मानवता तथा विश्वबन्धुत्व का सन्देश था।

4.5.3 न्यायिक व्यवस्था में सुधार

राजा राममोहन राय न्यायाधीशों और जूरी की प्रतिष्ठा को बनाये रखते, इस प्रसंग में जाति के आधार पर भेदभाव के विरोधी थे। 1828 में जूरी अधिनियम पारित हुआ था उसमें जातिगत आधार पर भेदभाव की व्यवस्था की गई थी। किसी ईसाई पर अभियोग चलाया जाता था तब हिन्दू-मुसलमान जूरी नहीं बैठ सकेंगे। जिसका राजा राममोहन राय ने विरोध किया। उन्होंने न्यायालय की सम्पर्क भाषा तय करने, न्यायालय की कार्यवाही की रपट समाचार पत्रों में प्रकाशित करने तथा भारतीय आपराधिक विधि संहिता तैयार करते पर बल दिया।

4.5.4 प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप

राजा राममोहन राय ने ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था में व्यापक कमियों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करवाया। इसके लिए उन्होंने 1833 में कॉमन सभा की प्रवर समिति के समक्ष सुधारों की सिफारिशें दी। जिसमें मुख्य बातें थी- योग्यता के अनुसार जिम्मेदार पदों पर भारतीय अधिकारियों की नियुक्ति की जाए, इससे भारतीयों में अंग्रेजों के प्रति विश्वास की भावना को बल मिलेगा और प्रशासन व्यर्थ के खर्चों से बचेगा।

4.5.5 राजस्व प्रणाली में सुधार

भारतीय समाज सदियों से कृषि प्रधान रहा है। अंग्रेजो की दमनकारी नीति ने किसानों की हालात को बुरा कर दिया था। राजा राममोहन राय किसानों की स्थिति में सुधार लाने के लिए सर्वप्रथम राजस्व प्रणाली में सुधार करने के पक्षधर थे। उन्होंने लगान की दर को कम करने का सुझाव दिया। उन्होंने सरकार को लिखा कि लगान की दर में परिवर्तन करने का अधिकार जमींदारों को नहीं होना चाहिए। उन्होंने सरकार को यह भी सुझाव दिया कि भारत में स्थायी भूप्रबन्ध व्यवस्था लागू की जाए। सरकार को जमींदारों से मिलने वाली मालगुजारी में कमी करके इसकी पूर्ति आराम तथा विलासिता की सामग्री पर अधिभार लगाकर करनी चाहिए।

4.5.6 राजनीतिक और कानून के माध्यम से समाज सुधार

राजा राममोहन राय समाज सुधार के लिए राजनीति और कानून के माध्यम से प्रयत्न करते के समर्थक थे। उनके प्रयत्नों से ही लार्ड विलियम बेंटिंग के समय सती-प्रथा निषेध कानून (1829) बना। वे स्त्री-पुरुषों की समानता तथा नारी उत्थान के समर्थक थे। वे धर्म निरपेक्षता पर आधारित समाज की स्थापना के हित पोषक थे।

4.5.7 मानवतावाद और विश्व बन्धुत्व

राजा राममोहन राय समस्त मानव जाति को एक परिवार तथा विभिन्न राष्ट्रों और जातियों को उसकी शाखाएं मानते थे। उन्होंने ऐसे विश्व संगठन की कल्पना की, जिसमें दो राष्ट्रों के मतभेदों को पंचनिर्णय द्वारा निपटाने के लिए भेजा जा सके। वे ईश्वर से जो प्रार्थना करते, उसमें अन्तरराष्ट्रीयवाद झलकता था। परमात्मा धर्म को ऐसा बना दे, जो मनुष्य और मनुष्य के बीच अन्तर मिटा दे और मानव जाति की शांति एवं एकता का प्रेरक हो।

4.5.8 शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त

शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त को राजा राममोहन राय किसी भी शासन व्यवस्था का पहला मूल सिद्धान्त मानते हैं। उनका कहना है कि प्रत्येक सभ्य देश में शासन का जो विधि निर्माण (व्यवस्थापिका) विधि को लागू (कार्यपालिका) तथा विधि की व्याख्या का कार्य किसी एक हाथ में केन्द्रित नहीं करना चाहिए। अगर ऐसा होता है तो तानाशाही का खतरा बना रहता है।

4.5.9 धर्मनिरपेक्षता

भारत विभिन्नता वाला देश है। यहाँ अनेक धर्म, संस्कृति, भाषा के लोग निवास करते हैं। राजा राममोहन राय इन सभी के प्रति आदर के भाव रखते थे। धार्मिक संकीर्णता त्याग कर लोग एक-दूसरे के निकट आयें और अपनी मानसिक संकीर्णता की बजाए अपना दृष्टिकोण सार्वभौमिक बनायें। वास्तव में देखा जाए तो उन्होंने ब्रह्मसमाज की स्थापना इसीलिए की थी कि लोग धार्मिक संकीर्णता त्याग कर इस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समाज में शामिल हो जाए और अपना सच्चा धर्म पालन करने के योग्य बने। धर्मनिरपेक्षता का यह पहला इकाई था। राय इस बात से भली-भांति परिचित थे कि यदि भारत को एक महान् राष्ट्र बनने के मार्ग पर अग्रसर होना है तो धर्म निरपेक्षता का आधार छोड़ा नहीं जा सकता यह सब तभी सम्भव होगा जब युवा वर्ग समाज को संकीर्णता से ऊपर उठाने का बीड़ा उठाए और लोगों में दूसरे धर्मों के प्रति आदर की भावना को प्रोत्साहन मिले।

4.5.10 यूरोपवासियों को भारत में बसाने का समर्थन

1813 के आधार अधिनियम के अनुसार यूरोपवासियों को भारत में बसने से वंचित कर दिया गया था। 1833 में कॉमन सभा की प्रवर समिति ने इस संबंध में राममोहन राय से सुझाव मांगे। राय ने अपने सुझाव में इस मुद्दे का समर्थन किया। उनका तर्क था कि ऐसा होने से दो संस्कृतियों के बीच मेल मिलाप बढ़ेगा जिससे भारतीयों को लाभ होगा। राममोहन राय इसे आर्थिक दृष्टि से लाभकारी मानते थे। उनका मत था कि महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक अधिकारियों के पदों पर यूरोपवासी ही नियुक्त हैं जब वे भारत में बस जायेंगे तो भारतीय धन विदेशों में नहीं जाएगा। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वे भारत को यूरोपियनों का घर बनाना चाहते थे। इसके पीछे उनका उद्देश्य देश भक्ति की भावना से ओत-प्रोत था। इससे औद्योगिकरण होगा तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के प्रचार प्रसार व लोगों के चरित्र को ऊँचा उठाने में मदद मिलेगी। 1833 में ब्रिटिश सरकार ने यूरोपियनों के भारत में बसने पर लगे प्रतिबन्ध हटा दिये।

4.6 राजा राममोहन राय के समाज सुधार संबंधी विचार

राजा राममोहन राय के समय भारतीय समाज की स्थिति बहुत दयनीय थी। समाज की स्वस्थ मान्यताओं के स्थान पर कुरीतियाँ हावी हो गई थी। समाज के स्वार्थी तत्त्व मान्यताओं की व्याख्या अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए कर रहे थे। महिलाओं की स्थिति चिन्ताजनक थी। नारी के साथ भेदभाव करना तो आम बात थी, उसे हीन भाव से देखा जाता था, सती प्रथा के नाम पर उसे बलपूर्वक जलाया जा रहा था। दोषपूर्ण जाति व्यवस्था के कारण सम्पूर्ण समाज विखण्डित नजर आ रहा था। ऐसे में राममोहन राय ने समाज सुधार का बीड़ा उठाया उनके समाज सुधार संबंधी विचार निम्नलिखित हैं-

4.6.1 परम्परावादिता का विरोध

राजा राममोहन राय का विचार था कि सामाजिक जीवन के अन्तर्गत किसी स्थिति को न तो इस कारण श्रेष्ठ समझा जा सकता है कि वह लम्बे समय से चली आ रही है न ही इस कारण श्रेष्ठ समझना चाहिए कि पश्चिमी देशों में ऐसा होता है। हमें अपने देश के अतीत का अन्धानुकरण करने की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार, विवेक के आधार जो सही लगे उसे स्वीकार करना चाहिए।

4.6.2 सती प्रथा का विरोध

राजा राममोहन राय द्वारा सती प्रथा के विरुद्ध जो अभियान चलाया उससे हम सब परिचित हैं। सन् 1811 ई. को जब उनके बड़े भाई जगमोहन की मृत्यु के बाद उनकी भाभी को स्वयं की इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक जला दिया तब उन्होंने इस कुप्रथा को समाप्त करने की शपथ ली। उनके इन्हीं अथक् प्रयासों से लार्ड विलियम बेट्रींग द्वारा सती प्रथा निषेध कानून (1829) बनाया गया। फ्रांसिस के. मार्टिन ने "बंगाल हरकारु" नामक समाचार पत्र में लिखा कि "महान् हिन्दू दार्शनिक राममोहन राय की विशेष सहायता के बिना अंग्रेजी सरकार के लिए कानूनन सती प्रथा रद्द करना सम्भव न होता।"

4.6.3 नारी स्वतन्त्रता, नारी अधिकार, नारी शिक्षा और नारी उद्धार

भारतीय समाज में नारी को अत्यधिक हीनभाव से देखा जाता था। जन्म से मृत्यु तक उसका जीवन पीड़ा और पराधीनता से जकड़ा हुआ था। राजा राममोहन राय ने इस सत्य को समझते हुए स्त्रियों की दीनहीन स्थिति को समाप्त करके स्वतन्त्रता की दिशा में आगे बढ़ाने का प्रयास किया। उन्होंने यह मानने से इन्कार किया कि नारी पुरुषों से कमजोर है। उन्होंने यह भी कहा कि यदि दोनों के चरित्र की तुलना की जाए तो स्त्रियाँ पुरूषों से अधिक ईमानदारी व चरित्रवान हैं। राय के समय स्त्रियों को पति की सम्पत्ति पर कोई अधिकार प्राप्त नहीं था जिसकी आलोचना की और प्राचीन शास्त्रों द्वारा तर्क प्रस्तुत कर यह कहा कि पति द्वारा छोड़ी संपत्ति पर नारी और उसके पुत्रों का बराबर हिस्सा होता था तथा पिता की संपत्ति पर उसका एक-चौथाई भाग था। उन्होंने बहुपत्नी विवाह की प्रथा के विरोध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

में आवाज उठाते हुए यह कहा कि कोई भी हिन्दू पुरुष मजिस्ट्रेट से लाइसेन्स लिए बिना अपनी पहली पत्नी के जीवन काल में दूसरा विवाह नहीं कर सकता। बाल विधवाएँ पुर्नविवाह करें। प्रौढ़ विधवाएं आत्म सम्मान का जीवन व्यतीत करने के लिए शिक्षित की जाये। नारी शिक्षा पर उन्होंने विशेष बल दिया और इसे भारतीय समाज की बड़ी आवश्यकता बतलाया और कहा कि जब तक नारी शिक्षित नहीं होगी तब तक समाज सुधार की कल्पना व्यर्थ है।

4.6.4 जाति प्रथा व जातिगत संकीर्णता का विरोध

राजा राममोहन राय का मानना था कि हिन्दुओं की राजनोतिक कमजोरी व पराधीनता का कारण उसमें असंख्य जातियों व उपजातियों का होना है। पहला जाति का आधार जन्म नहीं वरन् कर्म होना चाहिए। दूसरा किसी व्यक्ति को जाति के आधार पर श्रेष्ठ अथवा हेय नहीं माना जा सकता।

4.6.5 शिक्षा संबंधी विचार

राजा राममोहन राय स्वयं एक प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने प्राचीन भारतीय शास्त्रों का गहनता से अध्ययन किया राय के शिक्षा संबंधी विचार इस प्रकार थे–

1. पाश्चात्य शिक्षा का समर्थन
2. वैज्ञानिक विषयों पर बल
3. शिक्षा के भारतीय स्वरूप के पक्षधर
4. नारी शिक्षा का समर्थन
5. भारतीय प्राथमिक शिक्षा नि:शुल्क व अनिवार्य है।

4.7 आर्थिक विचार

यद्यपि राजा राममोहन राय ने पृथक से आर्थिक विचारों का प्रतिपादन नहीं किया, लेकिन वे सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं के साथ–साथ आर्थिक समस्याओं एवं चुनौतियों से भली भांति परिचित थे। उस समय अंग्रेजों के द्वारा दमन व शोषण किया जा रहा था, दोषपूर्ण नीतियों के चलते उसका जीवन–यापन करना कठिन हो रहा था। उनके प्रमुख आर्थिक विचार इस प्रकार हैं –

4.7.1 संपत्ति संबंधी विचार

राजा राममोहन राय निजी संपत्ति के विरोधी नहीं थे लेकिन उनका विरोध आर्थिक असमानता को लेकर था। क्योंकि निजी संपत्ति के नाम पर अमीर ओर अमीर होता जा रहा था। उन्होंने नारी संपत्ति का समर्थन किया और उसको पिता व पति दोनों की संपत्ति में हिस्सेदार बताया।

4.7.2 किसानों के शोषण का विरोध

स्वयं एक जमींदार होते हुए भी उन्होंने किसानों के शोषण का विरोध किया व सरकार से अपील की कि वह किसानों पर लगान अपने स्तर पर लगायें और जमीदारों द्वारा अपनी इच्छा से जो लगान में बदलाव किया जाता है, उस पर उचित रोक लगाए।

4.7.3 मितव्ययता का समर्थन

राजा राममोहन राय का मत था कि भारतीय कोष का अधिकांश भाग अधिकारियों के वेतन एवं अन्य सुविधाओं में ही खर्च हो जाता है। जिसका सीधा प्रभाव भारत की अर्थव्यवस्था एवं विकास कार्यों पर पड़ता है। अत: इस पर अंकुश लगाने के लिए सरकार को उच्च वेतन प्राप्त यूरोपीय अधिकारियों के स्थान पर कम वेतन प्राप्त करने वाले भारतीय अधिकारियों को नियुक्त करना चाहिए।

4.7.4 स्वतन्त्र व्यापार का समर्थन

वे भारत में आर्थिक विकास के लिए स्वतन्त्र व्यापार के पक्षधर थे, इनका मानना था कि अंग्रेजों द्वारा भारत से इंगलैण्ड ले जाने वाले माल के ऊपर कर नहीं लगाना चाहिए ताकि विदेशी बाजार में भारतीय माल की अच्छी बिक्री हो सके।

4.7.5 देश से धन निकासी का विरोध

इसके लिए भारत में पूंजी निवेश को प्रोत्साहित किया जाये। राजा राममोहन राय विदेशियों को भारत में कोई विशेष सुविधा देने के पक्ष में नहीं थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.8 धार्मिक विचार

राजा राममोहन राय के प्रमुख धार्मिक विचार निम्नलिखित हैं –

4.8.1 एकेश्वर का समर्थन

राजा राममोहन राय उपनिषदों के 'आध्याात्मिक एकत्ववाद' और कुरान के 'तौहीद' (ईश्वर की एकता) के सिद्धान्त से प्रभावित थे। अत: उन्होंने एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करते हुए हिन्दुओं के बहुदेववादी विचारों का खण्डन किया। एकेश्वरवाद के समर्थन में उन्होंने फारसी भाषा में 'तुहफतउत मुबहिदीन' नामक पुस्तक की रचना की। उन्हें आत्मा के अमरत्व में भी विश्वास था।

4.8.2 मूर्ति पूजा का विरोध

राजा राममोहन राय के अनुसार हिन्दू धर्म में मूर्तिपूजा का प्रचलन मौलिक तत्त्व नहीं था। मूर्ति पूजा के कारण हिन्दू समाज में कट्टरता व भेदभाव उत्पन्न हुए हैं जिससे समाज को व्यापक क्षति भी हुई। राय का कहना था कि ''उपनिषद अद्वैतवाद की शिक्षा देते हैं, जिसमें मूर्ति पूजा का कोई स्थान नहीं है।'' उन्होंने बलि प्रथा का घोर विरोध करते हुए इसे मानवता विरोधी एवं मूर्खतापूर्ण कार्य बताया है।

4.8.3 परम्पराओं एवं अन्धविश्वासों का विरोध

राजा राममोहन राय के अनुसार किसी विचार या परम्परा को तर्क की कसौटी पर खरा उतरने पर ही माना जाए। परम्पराओं की आंख मूंद कर पालना करने से ही समाज में ऐसी दयनीय स्थिति उत्पन्न हुई हैं। समाज में बनने वाली परम्पराएं या मान्यताएं सुविधा के लिए बनती है न कि असुविधा के लिए लेकिन दुर्भाग्यवश परम्पराओं के नाम पर समाज के कमजोर, दलित, पिछड़ों का शोषण किया जा रहा है, उसका सीधा प्रभाव समाज की एकता पर पड़ रहा है।

4.8.4 हिन्दू धर्म की आस्था

राय का मानना था कि हिन्दू धर्म को उसके विकृत रूप से निकाल सही रूप से प्रस्तुत करना होगा अर्थात् उसमें जो विकृतियां आ गयी है, उसे हटाना होगा।

4.8.5 धार्मिक सहिष्णुता

राजा राममोहन राय के अनुसार किसी धर्म सम्प्रदाय या उसके अनुयायियों के प्रतिघृणा का भाव नहीं रखना चाहिए। वे धार्मिक सांमजस्य के पक्षधर थे। उनके मतानुसार मानवता की सेवा ही सच्ची सेवा है।

4.9 राजा राममोहन राय का योगदान

आधुनिक राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में राजा राममोहन राय का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, इसलिए प्रथम आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक के रूप में उनका नाम लिया जाता है। वे केवल समाज सुधारक ही नहीं थे अपितु उनके विचारों ने अन्धकार में डूबे भारतीय समाज में प्रकाश का काम किया। इससे भारतीयों को राष्ट्र भक्ति, मानवता, स्वतन्त्रता एवं समाज सुधार की प्रेरणा मिली। वी.पी. वर्मा ने लिखा है कि ''वे एक ऐसी आत्मा थे जिसने अपने को दूसरों के लिए अर्पित कर रखा था। उनके मन में मनुष्य तथा ईश्वर के लिए अगाध प्रेम था। वे निर्भीक, सच्चे तथा ईमानदार थे।'' भारतीय समाज में प्रजातंत्र के मूल आदर्शों 'स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व' को स्थापित करने का श्रेय राम राममोहन राय को ही जाता है जिन्होंने आजीवन इसकी स्थापना हेतु अपना जीवन समर्पित कर दिया।

भारतीय समाज तथा मानवता को उनके योगदान का मूल्यांकन निम्नलिखित शीर्षकों से किया जा सकता है –

4.9.1 भारतीय पुनर्जागरण के प्रवर्तक

राजा राममोहन राय ने भारत को रूढ़िवाद तथा अन्धविश्वासों की दलदल से बाहर निकालने में महत्त्वपूर्ण योगदान देकर भारतीय पुनर्जागरण पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। वे भारतीय समाज में बुद्धिवाद तथा वैज्ञानिक अनुभववाद को प्रतिष्ठित करने के लिए आजीवन प्रयासरत् रहे। वे बंगाली पुनर्जागरण के पथ-प्रदर्शक तथा प्रथम अधिवक्ता थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.9.2 राष्ट्र भक्ति के प्रोत्साहक

राजा राममोहन राय ने आजीवन तन–मन –धन से देश और समाज की सेवा पूर्ण निष्ठा से की। उनके विचारों से जनता में देश के प्रति त्याग, बलिदान, समर्पण एवं भक्ति के भाव जागृत हुए जिसके कारण राष्ट्रीय आन्दोलन को खड़ा होने का बल मिला।

4.9.3 महान् समाज सुधारक के रूप में

18 वीं शताब्दी में भारतीय समाज अनेक प्रकार की कुरीतियों एवं आडम्बरों के जाल में जकड़ा हुआ था। समाज के चन्द लोग सामाजिक मान्यताओं की व्याख्या अपनी सुविधा के लिए कर रहे थे। सती प्रथा, बाल विवाह, बहुपत्नी विवाह, विधवाओं के प्रति अत्याचार, कन्या वध, छूआछूत जैसी कुप्रथाएं समाज को खोखला कर रही थी। ऐसी परिस्थितियों में राजा राममोहन राय देवदूत बनकर आये और समाज को रूढ़ियों से मुक्ति दिलाने के लिए आन्दोलन को जन्म दिया। वे एक महान् समाज सुधारक के रूप में सदैव याद किये जायेंगे।

4.9.4 धर्म सुधारक

उस समय धार्मिक क्षेत्र में बहु–देववाद, मूर्तिपूजा, बलि प्रथा, विभिन्न प्रकार के कर्मकाण्ड तथा मिथ्या धार्मिक आडम्बरों का बोलबाला था, जिनका राजा राममोहन राय ने घोर विरोध किया। इसके चलते उन्हें घर छोड़ना पड़ा। धार्मिक कुरीतियों को समाप्त करने के लिए उन्होंने जीवन पर्यन्त संघर्ष किया।

4.9.5 स्वतन्त्रता के पुजारी

राजा राममोहन राय ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के बारे में अपने विचारों से भारतीय राजनीति में नये युग का प्रारम्भ किया, इसलिए उन्हें स्वतन्त्रता का पुजारी कहा जाता है। उनका यह विचार भारतीय समाज के लिए संजीवनी के समान था। इससे भारतीयों को अपने अधिकारों के बारे में जानकारी मिली।

4.9.6 राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव के पत्थर

राजा राममोहन राय को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव का पत्थर माना जाता है। उन्होंने अपने विचारों एवं कार्यों के माध्यम से भारतीयों में स्वाभिमान और आत्मगौरव को बढ़ाया। सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों का जो आन्दोलन चलाया, उससे राष्ट्रीय आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

4.9.7 प्रजातांन्त्रिक मूल्यों के पोषक

राजा राममोहन राय की प्रजातंत्र में अटूट आस्था थी इसलिए उन्होंने सभी प्रकार की तानाशाही का विरोध किया तथा उनके विचारों में प्रजातांत्रिक मूल्यों की छाप स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। उनका प्रजातंत्र के आधारभूत सिद्धान्तों –'स्वतन्त्रता, समानता तथा विश्व बन्धुत्व' में विश्वास था। वे छुआछुत के घोर विरोधी थे तथा सामाजिक भेदभाव व जातिगत संकीर्णता से भारत को मुक्ति दिलाना चाहते थे। उन्होंने स्त्री–पुरुषों बीच असमानता तथा भेदभाव का खुलकर विरोध किया। उन्होंने विश्व की विभिन्न जातियों, धर्मों तथा राष्ट्रों के मध्य परस्पर प्रेम, भाईचारा, सहिष्णुता तथा शांति की कामना की। इस तरह वे प्रजातंत्र के सच्चे पुजारी थे।

4.9.8 नारी उत्थान का समर्थन

राजा राममोहन राय के समय भारतीय समाज में नारी की स्थिति बहुत खराब थी, स्त्री को संपत्ति का अधिकार नहीं था। समाज में प्रचलित कुरीतियाँ– सती प्रथा, बाल विवाह, विधवाओं के साथ अत्याचार, बहुपत्नी विवाह, बेमेल विवाह आदि नारी पर अत्याचार के विभिन्न रूप में थे। इस कारण वह अपने आप को असुरक्षित महसूस कर रही थी। नारी उत्थान की आवाज उठाते हुए, स्त्री–पुरुषों में समानता, नारी शिक्षा, नारी संपत्ति का समर्थन किया। इस तरह से उन्होंने समाज में प्रचलित कुरीतियों को उखाड़ फेंकने के प्रयास किये।

4.9.9 पूर्व तथा पश्चिम के समन्वय का समर्थन

राजा राममोहन राय ने पूर्व तथा पश्चिम की विभिन्न धारणाओं तथा मान्यताओं के मध्य उचित सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने कभी भी पश्चिम के प्रति हीन भावना नहीं रखी। उन्होंने भारतीय संस्कृति के सर्वोच्च तत्वों को पश्चिमी संस्कृति के साथ समन्वित करने पर बल दिया। भारत के अतीत एवं पश्चिम के वर्तमान के आधार पर एक नवीन भारत का निर्माण किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.9.10 शिक्षा संबंधी विचार

राजा राममोहन राय पाश्चात्य पद्धति आधारित वैज्ञानिक शिक्षा का समर्थन करते थे। वहीं वे भारतीय शास्त्रों की शिक्षा में प्राथमिकता देने के समर्थक थे। उनका मानना था कि जब तक शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार नहीं किया जाएगा तब तक भारतीय समाज उन्नति के मार्ग पर आगे नहीं बढ़ सकता। उन्होंने शिक्षा पर सर्वाधिक बल दिया और भारत में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एवं नि:शुल्क करने की आवश्यकता का प्रतिपादन किया।

4.9.11 मानवतावाद, अन्तरराष्ट्रवाद तथा विश्वबन्धुत्व का प्रतिपादन

मानवता की उपासना करना ही उनका सर्वोच्च धर्म था। ब्रह्म समाज की स्थापना के पीछे मूल उद्देश्य भी यही था। उन्होंने सभी धर्मों में व्याप्त संकीर्ण मानसिकता को मिटाने का आह्वान किया, जिससे धार्मिक सामंजस्य को बढ़ावा मिल सके और एक ऐसे धर्म की स्थापना हो जिसे विश्व धर्म कहा जा सके। वे समस्त मानव जाति को एक परिवार के समान मानते थे। उन्होंने विश्व के विभिन्न देशों के मध्य शांति और सहयोग की स्थापना के लिए एक विश्व संगठन के निर्माण का स्वप्न देखा।

4.9.12 उदारवाद एवं उपयोगितावाद के समर्थक

राजा राममोहन राय के सम्पूर्ण चिन्तन पर उदारवाद तथा उपयोगितावाद की छाप दिखाई देती है। उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में एक ऐसी 'उदारवादी परम्परा' की शुरुआत की जिसे उनके बाद अनेक भारतीय राजनीतिक चिन्तकों ने अपनाया। इसी आधार पर उन्हें भारत में उदारवाद का प्रवर्तक कहा जाता है। राय पर बेन्थम के उपयोगितावाद का प्रभाव देखा जा सकता है। उन्होंने उन सभी कार्यों का विरोध किया जो व्यक्ति को कष्ट देने वाले हैं। उनका मत है कि मनुष्य हमेशा सुखों की ओर तथा दु:खों से दूर भागता है। इसके अतिरिक्त बेन्थम की सुधार योजनाओं को अपनाने की आवश्यकता पर बल दिया।

4.10 सारांश

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजा राममोहन राय के योगदान का भारतीय समाज हमेशा ऋणी रहेगा। उन्होंने जो दिशा प्रदान की है उसको हम कभी भुला नहीं सकते। राय ने सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा संस्कृति के क्षेत्र में सुधार की व्यापक योजना प्रस्तुत की। रविन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा "राजा राममोहन राय ने भारत के आधुनिक युग का सूत्रपात किया।" डॉ. वी.पी. वर्मा के अनुसार "वे एक जीविक पुल थे जिसे ऊपर अपने अथाह अतीत से अपने अनुमानहीन भविष्य की ओर जाता है।" राय के विचारों की प्रासंगिकता एवं औचित्य वही है जो उस समय था।

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. पुरुषोत्तम नागर, "आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तक" राजस्थान ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
2. धर्मचन्द जैन/ कैलाशचन्द दरोगा, "आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक" नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर
3. राम रतन /रूचि त्यागी, "भारतीय राजनीतिक चिन्तक" मयूर पेपर बैक्स, नौएडा।
4. सी. एम. सरस्वती, "भारतीय राजनीतिक चिन्तक" मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
5. ओम प्रकाश गाबा, "राजनीति-चिन्तन की रूपरेखा," मयूर पेपर बेक्स, नोएडा।
6. ओमप्रकाश गाबा, "भारतीय राजनीतिक विचारक," मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
7. पुष्पा निरवानी /राजेश्वरी सक्सेना, "भारतीय राजनीतिक विचारक" शील सन्स, जयपुर।
8. परमात्मा शरण, "प्राचीन भारत में राजनीतिक चिन्तन एवं संस्थाएं"
9. डॉ. बी.आर. पुरोहित, "प्रतिनिधि भारतीय राजनीतिक विचारक" मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
10. डॉ. वी.पी. वर्मा, "आधुनिक भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक चिंतन" लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11. बिमान विहारी मजूमदार, ''हिस्ट्री ऑफ इण्डियन सोशल एण्ड पोलिटिकल आइडियाज : फ्रोम राममोहन राय टू दयानन्द'' बुकलैण्ड कलकत्ता।

12. सोफिया डोबसन कोलेट, ''लाइफ एण्ड लैटर्स ऑफ राजा राममोहन राय'' एच. सी. सरकार एण्ड कम्पनी कलकत्ता।

4.12 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राम मोहन राय के राजनीतिक विचारों की विवेचना कीजिए।
2. राजा राममोहन राय के सामाजिक एवं धार्मिक विचार बताओ।
3. भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में राममोहन राय के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ''राजा राममोहन राय भारत में उदारवाद के प्रतिपादक थे'' सिद्ध कीजिए।
2. राजा राममोहन राय ने अन्तरराष्ट्रवाद की दिशा में क्या कदम उठाये ?
3. राय के आर्थिक विचारों की समीक्षा कीजिए।
4. राम मोहन राय ने राष्ट्रीय आन्दोलन को किस प्रकार गति प्रदान की।
5. नारी उत्थान की दिशा में राय का क्या योगदान रहा ?
6. प्रजातंत्र के पोषक के रूप में राय के क्या विचार हैं ?
7. राय के धर्मनिरपेक्षता संबंधी विचार बताइये ?
8. राय ने सामाजिक विखण्डन के लिए क्या उत्तरदायी कारण बता ?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राजा राममोहन राय का जन्म कब और कहाँ हुआ ?
2. राय में सती प्रथा विरोधी विचार क्यों आये ?
3. राय की दो प्रमुख रचनाओं के नाम बताओ।
4. राय द्वारा प्रकाशित अखबार कौन से थे ?
5. राममोहन राय को राजा की उपाधि किसने और क्यों दी।
6. सती प्रथा निरोधक कानून किस गवर्नर जनरल ने बनवाया।
7. राय ने उपयोगिता संबंधी विचार किससे ग्रहण किये।
8. यूरोप वासियों को भारत में बसाने के पीछे राय का क्या तर्क था ?
9. ब्रह्म समाज की स्थापना कब और किसने की ?
10. राय को 'भारत के संवैधानिक आन्दोलन' जनक किसने कहा है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 5 स्वामी विवेकानन्द

संरचना

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 जीवन परिचय
5.4 स्वामी विवेकानन्द की रचनाएँ
5.5 राजनीतिक चिन्तन का दार्शनिक आधार
5.6 राजनीतिक विचार
5.6.1 राष्ट्रवाद का आध्यात्मिकरण
5.6.2 स्वतन्त्रता का सिद्धान्त
5.6.3 शक्ति व निर्भिकता को प्राथमिकता
5.6.4 व्यक्ति के गौरव में विश्वास
5.6.5 आदर्श राज्य की कल्पना
5.6.6 अन्तरराष्ट्रीयवाद
5.6.7 समाजवादी दृष्टिकोण
5.6.8 राष्ट्रीय जीवन में जनसाधारण का महत्त्वपूर्ण स्थान
5.7 स्वामी विवेकानन्द का योगदान
5.7.1 पूर्व व पश्चिम का समन्वय स्थापित किया
5.7.2 हिन्दू पुनरूत्थान में अविस्मरणीय योगदान
5.7.3 धर्म व विज्ञान के समन्वय पर बल
5.7.4 भारतीय राष्ट्रीयवाद को आधार प्रदान किया
5.7.5 राम कृष्ण मिशन का प्रभाव
5.7.6 महान् समाज सुधारक
5.7.7 विश्व को प्रेम, शांति तथा बन्धुत्व का सन्देश
5.8 सारांश
5.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
5.10 अभ्यास प्रश्नावली

5.1 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य स्वामी विवेकानन्द के मुख्य विचारों को जानते हुए कि उन्होंने किस प्रकार भारतीय युवा शक्ति को जगाने का प्रयास किया। उनका यह आह्वान कि "उठो जागो और तब तक न रुको जब तक लक्ष्य पर न पहुँच जाओ" आज भी हमारे लिए प्रेरणादायक है, जिसे अपनाकर हम भारत को प्रगति के पथ पर आगे बढ़ा सकते हैं। इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे —

- विवेकानन्द ने शिकागो में आयोजित विश्व धर्म संसद में भाग लेते हुए भारतीय धर्म, संस्कृति, सभ्यता एवं मूल्यों की छाप छोड़ी।
- उन्होंने राष्ट्रवाद का आध्यात्मिकरण किया और धर्म को भारत की आत्मा कहा, उसे भी जान सकेंगे।
- राजनीतिक विचारों के माध्यम से उन्होंने व्यक्ति, आत्म-गौरव व आत्म-सम्मान की भावना पर बल दिया, उसे भी जानने का अवसर मिलेगा,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- उनकी सोच मानवतावाद, अन्तरराष्ट्रीयवाद एवं विश्वबन्धुत्व पर आधारित थी, जो हमें यह प्रेरणा देती है कि समस्याओं का समाधान शांतिपूर्ण तरीके से करने में ही मानवता की कलाई है,
- हिन्दू पुनरुत्थान की दिशा में उनके द्वारा किये गये प्रयत्नों को जान सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

स्वामी विवेकानन्द एक मानववादी चिन्तक थे। इन्होंने इस चिन्तन के अनुरूप अपने विचारों का प्रतिपादन किया उनके चिन्तन में मानव की गरिमा, मूल्य की सर्वोच्चता में विश्वास और जाति, धर्म या राष्ट्र की सीमाओं को तोड़कर मानव मात्र के कल्याण पर बल दिया गया है। विवेकानन्द को युवा शक्ति के प्रतीक के रूप में भी जाना जाता है, क्योंकि इन्होंने गहरी निद्रा में सोये हुए भारतीय युवाओं को जगाने का प्रयास किया। विभिन्न देशों की यात्राएं करके भारतीय संस्कृति की सर्वोच्चता को सिद्ध किया।

5.3 जीवन परिचय

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी, 1863 ई. को कलकत्ता के एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके पितामह बहुत सम्पन्न व्यक्ति थे। स्वामी विवेकानन्द का नाम नरेन्द्रनाथ था। लेकिन जब 1893 ई. को बम्बई से शिकागो की यात्रा शुरू की तब उन्होंने अपना नाम बदलकर 'विवेकानन्द' रख लिया। आपको इसी नाम से ख्याति मिली। इनके पिताजी प्रसिद्ध वकील थे तथा माताजी अत्यन्त भक्तिमय धार्मिक जीवन जीने वाले सुशिक्षित व उत्कृष्ट चरित्र की महिला थी। नरेन्द्र नाथ के जीवन पर अपनी माता के व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ा। इसी के चलते 25 वर्ष की अल्प आयु में ही वे सांसारिक मोह त्याग कर सन्यासी हो गये। नरेन्द्रनाथ अपने बाल्यकाल से ही प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने भारतीय दर्शनशास्त्र के साथ-साथ यूरोप के उदारवादी तथा बुद्धिवादी दृष्टिकोण वाले चिन्तकों के विचारों का अध्ययन किया। नवम्बर, 1881 को नरेन्द्रनाथ की भेंट संत रामकृष्ण परमहंस से हुई। यह मिलन प्राचीन भारत और नवीन भारत, पूर्व और पश्चिम, तथा श्रद्धा और बुद्धि का अपूर्व समन्वय था। यह भेंट नरेन्द्रनाथ के जीवन में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाली घटना थी। अगस्त, 1886 में रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने अपने गुरु के विचारों का प्रचार-प्रसार करने के लिए सम्पूर्ण भारत की यात्रा की। उनकी यह यात्रा 5 वर्ष तक जारी रही। इस यात्रा के दौरान उन्हें वास्तविक भारत को देखने और समझने का अवसर मिला।

भारत की आध्यात्मिक धरोहर के खजाने को, पूरे विश्व की जनता को मुक्त हस्त से बांटने के लिए स्वामी जी यूरोप और अमेरिका की यात्रा करना चाहते थे। 1892 ई. में उन्हें मालूम हुआ कि अमेरिका के शिकागो शहर में विश्व के सभी धर्मों का एक सम्मेलन होने वाला है। लेकिन स्वामी जी के पास न तो इसका निमन्त्रण था और न ही सम्मेलन की कोई निश्चित तिथि के बारे में जानकारी थी, फिर भी उन्होंने अमेरिका जाने का निर्णय किया और 31 मई 1893 को वहाँ के लिए प्रस्थान किया। अमेरिका पहुँचने पर स्वामी जी की मुलाकात अनेक बुद्धिजीवियों जिनमें प्रोफेसर राइट का नाम उल्लेखनीय है। उनके प्रयासों से स्वामी विवेकानन्द को विश्व धर्मसंसद में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ। धर्म संसद के प्रथम दिन 11 सितम्बर, 1893 को विवेकानन्द को सम्मेलन को सम्बोधित करने का अवसर प्राप्त हुआ। जब अपने भाषण के आरम्भ में ही स्वामी जी ने श्रोतागणों को ''अमेरिका निवासी बहिनों और भाईयों'' कहकर सम्बोधित किया तो समस्त श्रोतागण अपने स्थानों पर खड़े हो गये। हर्ष ध्वनि गूंज उठी। स्वामी जी को सुनकर समस्त श्रोताओं को ऐसा लगा कि उनके हृदय में सम्पूर्ण मानव जाति के लिए सच्चा प्रेम है। इस भाषण की सर्वत्र तारीफ हुई। स्वामी जी ने अमेरिका में तीन वर्ष तक और रहकर भारतीय संस्कृति तथा वेदान्त का प्रचार-प्रसार किया। 16 दिसम्बर, 1896 को वे कोलम्बों पहुँचे। कोलम्बो से अल्मोड़ा तक यात्रा की जो एक विजय यात्रा थी। इस दौरान स्वामी जी ने भारतीय जनता से आह्वान किया, ''उठो, जागो और तब तक न रुको जब तक कि लक्ष्य पर न पहुँच जाओ।'' उन्होंने कहा कि वे दीनता और हीनता की भावना का परित्याग करके राष्ट्र की सेवा के लिए कमर कस लें। 9 दिसम्बर, 1898 को 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की गई। मधुमेह रोग के कारण 4 जुलाई, 1900 को 39 वर्ष की अल्पायु में उनका देहावसान हो गया।

5.4 स्वामी विवेकानन्द की रचनाएँ

स्वामी विवेकानन्द की प्रमुख राजनीतिक रचनाएँ निम्नलिखित है —

1. 'कोलम्बो से अलमोड़ा तक व्याख्यान'
2. 'पूर्व तथा पश्चिम'
3. 'आधुनिक भारत'
4. 'सन्यासी का गीत'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.5 राजनीतिक चिन्तन के दार्शनिक आधार

स्वामी विवेकानन्द के दर्शन के तीन प्रमुख स्रोत हैं- 1. वेद तथा वेदान्त की महानतम् परम्पराएँ, 2. रामकृष्ण परमहंस के साथ सम्पर्क (सन् 1881-1886), 3. उनके जीवन का व्यावहारिक अनुभव ।

स्वामी विवेकानन्द राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे। उनका न तो राजनीति में विश्वास था और न ही उन्होंने कोई 'राजनीतिक सम्प्रदाय' शुरु किया। उन्होंने कभी भी खुलकर देश की स्वतन्त्रता का समर्थन नहीं किया।

डॉ. वी.पी. वर्मा के अनुसार आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में स्वामी विवेकानन्द का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके दो कारण है- पहला, उनकी शिक्षाओं तथा व्यक्तित्व का बंगाल के राष्ट्रवादी आन्दोलन पर गहरा प्रभाव पड़ा। दूसरा, विवेकानन्द ने हमें भारतीय समाज के विकास के संबंध में कुछ नये विचार दिये हैं।

5.6 राजनीतिक विचार

स्वामी विवेकानन्द के राजनीतिक का चिन्तन अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों द्वारा कर सकते हैं-

5.6.1 राष्ट्रवाद का आध्यात्मिकरण

यदि हम भारत के इतिहास का अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि धर्म इसका महत्त्वपूर्ण नियामक तत्व रहा है। स्वामी जी ने अपने भाषणों में भी ''धर्म को भारत की आत्मा कहा है।'' धर्म भारत की रीढ़ है।'' अत: यदि भारत का उत्थान करना है और राष्ट्र का खोया हुआ गौरव उसे पुन: लौटाना है तो सर्वप्रथम हमें भारत के धर्म को पुनर्प्रतिष्ठित करना होगा। उन्होंने कहा कि धर्म ही निरन्तर भारतीय जीवन का आधार रहा है, इसीलिए भारत में सभी प्रकार के सुधार धर्म के माध्यम से किये जा सकते हैं। भारतीय राष्ट्रवाद का निर्माण अतीत की ऐतिहासिक विरासत की सुदृढ़ नींव पर ही करना है। भारत की एकता व अखण्डता बनाये रखने में धर्म ने एक महत्त्वपूर्ण भावनात्मक शक्ति का कार्य किया है। भारत में जब-जब राजनीतिक सत्ता कमजोर हुई है तब-तब धर्म ने उसकी सुदृढ़ता में अपना सहयोग दिया। इस प्रकार धर्म को भारत की आत्मा बताकर राष्ट्रवाद की नींव रखी।

5.6.2 स्वतन्त्रता का सिद्धान्त

उनकी वाणी और उनके कर्म में उनकी स्वतन्त्रता प्रियता सदैव गुंजती रही। उन्होंने कहा, जीवन, सुख और समृद्धि की एकमात्र शर्त-चिन्तन और कार्य में स्वतन्त्रता है, जिस क्षेत्र में यह नहीं है उस क्षेत्र में मनुष्य जाति और राष्ट्र का पतन होगा।

स्वतन्त्रता को विवेकानन्द ने मनुष्य का प्राकृतिक अधिकार माना और कामना की कि समाज के सभी सदस्यों को यह अवसर समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। सम्पत्ति, ज्ञान और शिक्षा के अर्जन में किसी प्रकार का बन्धन नहीं होना चाहिए।

5.6.3 शक्ति व निर्भिकता को प्राथमिकता

शक्ति तथा निडरता के अभाव में न तो व्यक्तिगत अस्तित्व की रक्षा हो सकती है और न अपने अधिकारों के लिए संघर्ष ही किया जा सकता है। उन्होंने देशवासियों को सन्देश दिया-उत्साह से हृदय भर लो और सब जगह फैल जाओ, काम करो काम करो -पचास सदियाँ तुम्हारी रही हैं। भारत का भविष्य तुम पर निर्भर है। काम करते जाओ, उन्होंने देशवासियों से चरित्रवान बनने का आग्रह किया तथा नैतिक शिक्षा को महत्त्व दिया।

5.6.4 व्यक्ति के गौरव में विश्वास

मानव में सम्मान और पुरुषत्व की भावना का जागरण होगा तभी राष्ट्र सच्चे रूप में शक्तिशाली बनेगा। विवेकानन्द ने मनुष्य को स्वाधीनता के उच्चतम रूप का प्रतिनिधि मानते हुए उसके गौरव में अगाध आस्था प्रकट की।

5.6.5 आदर्श राज्य की कल्पना

स्वामी विवेकानन्द आदर्श राज्य की कल्पना करते है। उनका मत है कि शासन व्यवस्था में शुद्रों की भी भूमिका होनी चाहिए और अब शुद्र राज्य का काल आ गया है यदि ऐसा राज्य स्थापित करना सम्भव हो जिसमें ब्राह्मण काल का ज्ञान, क्षत्रिय काल की सभ्यता, वैश्य काल का प्रचार-भाव और शुद्र काल की समानता रखी जा सके -उनके दोषों को त्याग करे तो एक आदर्श राज्य होगा। परन्तु क्या यह सम्भव है। विवेकानन्द का मानना था कि पहले तीनों का राज्य हो चुका अब शुद्र राज्य का काल आ गया है, वे अवश्य राज्य करेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.6.6 अन्तरराष्ट्रीयवाद

स्वामी विवेकानन्द एक सार्वभौम धर्म, विश्वबन्धुत्व तथा अन्तरराष्ट्रीयवाद के प्रबल समर्थक थे। वे वेदान्त को सामाजिक एवं धार्मिक क्रान्ति का प्रतीक मानते थे। उन्होंने एक बार कहा था, नि:सन्देह मुझे भारत से प्यार है पर प्रत्येक दिन मेरी दृष्टि अधिक निर्मल होती जाती है, हमारे लिए भारत या इंग्लैण्ड या अमेरिका क्या है ?हम तो उस ईश्वर के सेवक हैं जिसे अज्ञानी मनुष्य कहते हैं। जड़ में पानी देने वाला क्या सारे वृक्ष को नहीं है ?उनका कहना था कि कोई मनुष्य, कोई जाति दूसरों से घृणा करते हुए जी तक नहीं सकती। भारत के भाग्य का निपटारा उसी दिन हो चुका जब उसने श्लेच्छा शब्द को ढूंढ़ निकाला। धरती के सभी लोगों के बीच कोई सम्बन्ध है तो वह प्रेम और सेवा का है। शिकागों विश्व धर्म संसद में समस्त विश्व मानवता के धर्म की चर्चा की।

5.6.7 समाजवादी दृष्टिकोण

विवेकानन्द के हृदय में गरीबों और पद-दलितों के प्रति असीम संवेदना थी। समाज में उनके लिए समुचित स्थान दिये जाने की उन्होंने जबरदस्त वकालत की और जन साधारण के उत्थान को अपने कार्यक्रम का महत्त्वपूर्ण अंग बनाया। झोपड़ियों की दशा सुधारनी होगी, गरीबों को निम्न जीवन स्तर से ऊँचा उठाना होगा, यदि गरीबों और दलितों की स्थिति में कोई सुधार नहीं होगा, तब तक देश और समाज का कोई कल्याण नहीं हो सकता। उन्होंने गरीबी, अशिक्षा और अज्ञानता को भारत के लिए कलंक माना और घोषणा की कि भूखे पेट को धर्म की शिक्षा देना अर्थहीन है तथा जन साधारण को ऊँचा उठाएं बिना कोई भी राजनैतिक उत्थान सम्भव नहीं है। जन-साधारण की अवहेलना करना एक महान् राष्ट्रीय पाप है और हमारे राष्ट्र के पतन का कारण है। उन्होंने समाजवाद को अन्य व्यवस्थाओं की तुलना में उचित माना इसलिए समाजवाद को भी अपनाया जाएं। डॉ. वी.पी. वर्मा स्वामी विवेकानन्द को दो कारणों से समाजवादी मानते हैं प्रथम उन्हें भारत में 'सामाजिक समानता' का समर्थन किया द्वितीय उन्होंने देश के सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के 'अवसर की समानता' का समर्थन किया।

5.6.8 राष्ट्रीय जीवन में जनसाधारण का महत्त्वपूर्ण स्थान

स्वामी विवेकानन्द ने राष्ट्रीय जीवन में जनसाधारण की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए उनकी सेवा-सुश्रुषा करने तथा उनको ऊँचा उठाकर उनमें राजनीतिक चेतना का विकास करने पर बल दिया। उन्होंने कहा कि पीड़ित, दलित और शोषित जनता की सेवा करना तथा उनकी आध्यात्मिक और सामाजिक उन्नति करना ही सर्वोपरि देश सेवा का कार्य है। जन- साधारण के विकास से ही देश में राजनीतिक उत्थान संभव है।

5.7 स्वामी विवेकानन्द का योगदान

स्वामी विवेकानन्द के योगदान को भारतीय राजनीतिक चिन्तन और समाज कभी भुला नहीं सकता। इनका जन्म उन परिस्थितियों में हुआ जब देश गुलामी की बेड़ियों से जकड़ा हुआ था, समाज पर बुराईयाँ हावी थी, समाज अपनी दिशा से पथ भ्रष्ट हो चुका था, हम हमारी संस्कृति एवं मूल्यों को त्याग कर पश्चिमी संस्कृति की ओर भाग रहे थे, समाज में गरीबी, अज्ञानता, अशिक्षा, अन्ध-विश्वास अपनी चरम सीमा पर थे। अत: ऐसी परिस्थितियों में स्वामी त्रिवेकानन्द ने भारतीयों के आत्म-गौरव, आत्म-सम्मान, आत्मनिर्भरता को बढ़ाने का सफल प्रयास किया। स्वामी विवेकानन्द के योगदान को हम निम्नलिखित शीर्षकों द्वारा प्रस्तुत कर सकते हैं —

5.7.1 पूर्व व पश्चिम का समन्वय स्थापित किया

स्वामी विवेकानन्द ने पूर्व व पश्चिम का समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। पश्चिम व पूर्व के राज-दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन करके वे इस तथ्य के प्रति आश्वस्त हो चुके थे कि पश्चिम की तुलना में भारत साहित्य, ज्ञान, विज्ञान, इतिहास, संस्कृति और धर्म के पक्ष में कहीं अधिक सहिष्णु और समृद्ध है। स्वामी विवेकानन्द हर संस्कृति की अच्छाइयों को आदर की दृष्टि से देखते थे, उन्होंने बताया कि वेदान्त व्यक्ति के उत्थान और समाज के निर्माण तथा राष्ट्र के समन्वय का शास्त्र है। वे चाहते थे कि भारत को ऊपर उठाया जाये और विश्व में उसके गौरव को पुनर्प्रतिष्ठित किया जाए।

5.7.2 हिन्दू पुनरुथान में अविस्मरणीय योगदान

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय संस्कृति और धर्म की महानता का पश्चिम में प्रचार-प्रसार करके हिन्दुओं के गौरव तथा आत्मविश्वास में वृद्धि की। उन्होंने शक्ति और निर्भिकता का संदेश देकर सोये हुए भारतीयों को जगा दिया। उन्होंने भारतीय समाज

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सुधार हेतु सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया। वे चाहते थे कि स्वयं भारतीय अपनी सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों व आडम्बरों को समाप्त करने के लिए आगे आए। विवेकानन्द ने भारत की आत्मा की पहचान तथा पूरे विश्व में वेदान्त का प्रचार-प्रसार हेतु आजीवन प्रयास किया। वे हिन्दू पुनरुत्थानवाद के प्रतीक थे।

5.7.3 धर्म व विज्ञान के समन्वय पर बल

स्वामी विवेकानन्द ने एक मानवतावादी विचारक होने के नाते विश्व के विभिन्न धर्मों के बीच तथा धर्म और विज्ञान के बीच पूर्ण समन्वय पर बल दिया। उनके मतानुसार धर्म का अर्थ आत्मा का विश्वास है, उसकी पूर्ण अनुभूति विश्ववाद के स्तर पर ही की जा सकती है तथा विज्ञान का लक्ष्य भी विश्ववाद ही है, वह हमें वैश्विक धर्म की ओर ले जा सकता है, जो कि वेदान्त ही है। धर्म और विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य सम्पूर्ण मानवता का कल्याण करना है।

5.7.4 भारतीय राष्ट्रीयवाद को आधार प्रदान किया

स्वामी विवेकानन्द ने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके भारतीय राष्ट्रवाद की सुदृढ़ नींव रखी। आगे चलकर इसी सिद्धान्त का विपिन चन्द्रपाल तथा अरविन्द ने समर्थन करके इसको प्रभावी बनाया। महात्मा गांधी भी विवेकानन्द के इस सिद्धान्त से प्रभावित थे तथा वे मानते थे कि भारतीय संस्कृति और राष्ट्रवाद का मूलाधार धर्म है, अत: वे राजनीति का आधार धर्म एवं नैतिकता के सिद्धान्त को बनाना चाहते थे।

5.7.5 रामकृष्ण मिशन का प्रभाव

रामकृष्ण मिशन की स्थापना स्वामी विवेकानन्द का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस मिशन ने रामकृष्ण परमहंस के विचारों तथा वेदान्त के सन्देश को विश्व के कोने-कोने पर पहुँचाया है। इसने समाज सुधार एवं मानव कल्याण की दिशा में सराहनीय कार्य किया है।

5.7.6 महान् समाज सुधारक

स्वामी विवेकानन्द सामाजिक क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन करना चाहते थे क्योंकि उस समय भारतीय समाज पर बुराईयाँ हावी हो गई थी। जात-पात, सम्प्रदायवाद और छुआछूत, कुछ सीखने के प्रति उदासीनता, स्वयं को हीन मानने की मनोदशा, मौलिकता तथा साहस की कमी, आलस्य, संकीर्ण दृष्टिकोण इत्यादि भारत के पतन के कारण हैं-

1. विवेकानन्द ने छुआछूत और रूढ़िवादिता पर कटु प्रहार किया। उन्होंने माना कि यदि हम मनुष्य हैं तो इन दोनों बुराइयों से दूर रहना होगा।
2. विवेकानन्द का संदेश था कि जीवन प्रगतिशील है और आज का हमारा जीवन पिछली अनेक सदियों में की गई प्रगति तथा विकास का परिणाम है। इसलिए हमें प्रगति के पथ का राही बनना चाहिए। प्रत्येक बात को तर्क और बुद्धि की तराजू पर तोलकर ग्रहण करना चाहिए।
3. स्वामी विवेकानन्द के हृदय में गरीबों व दलितों के लिए सहानुभूति थी। विवेकानन्द ने आह्वान किया "गरीब और अभाव ग्रस्त, पीड़ित और पद-दलित सब आओ हम सब रामकृष्ण की शरण में एक हैं।"
4. विवेकानन्द ने बाल-विवाह की आलोचना की। बाल-विवाह से असमय सन्तानोत्पत्ति होती है और छोटी उम्र में सन्तान धारण करने के कारण हमारी स्त्रियाँ अल्पायु होती है उनकी दुर्बल और रोगी सन्तान देश के सामने अनेक चुनौतियां खड़ी करती हैं। विवेकानन्द ने विधवा के पुनर्विवाह पर बल दिया।

5.7.7 विश्व मानवता को प्रेम, शांति तथा बन्धुत्व का सन्देश

स्वामी विवेकानन्द ने समस्त विश्व में वेदान्त का प्रचार-प्रसार करके प्रेम, शांति और भाईचारे का सन्देश दिया। वेदान्त मनुष्य की दैविकता में विश्वास करता है। प्रत्येक मनुष्य एक ही परमात्मा की सन्तान है। हम सब में एक ही परमात्मा के अंश हैं अत: मनुष्य और मनुष्य के बीच कोई संबंध है तो वह प्रेम और सेवा का है। वेदान्त मनुरूप को वैश्विक प्रेम तथा सेवा का सन्देश देता है। उनके अनुसार धर्म का मूल तत्व प्रेम, सेवा और त्याग है। अत: वे सम्पूर्ण विश्व में वेदान्त के आध्यात्मिक साम्राज्य की स्थापना करना चाहते थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.8 सारांश

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द के विचारों से भारतीय में नव चेतना का संचार हुआ। उन्होंने स्वतन्त्रता के साथ–साथ व्यक्ति की गरिमा को प्रतिपादित करने का संदेश दिया। अपने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के माध्यम से भारत को एकता के सूत्र में बांधने का काम किया। विदेशों का भ्रमण कर स्वामी जी ने भारतीय संस्कृति को विश्व व्यापी बनाया और विश्व को प्रेम, शांति, त्याग बन्धुत्व का इकाई पढाया। उनका नाम भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. पुरुषोत्तम नागर, ''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
2. डॉ. वी.पी. वर्मा, ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक चिन्तन'' लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशक, आगरा
3. रोमाँ रोलाँ, ''दी लाइफ ऑफ रामकृष्ण'' अद्धंत आश्रम, कलकत्ता
4. योगेश्वरानन्द, ''दी लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द''
5. ओम प्रकाश गाबा, ''राजनीति–चिन्तन की रूपरेखा'' मयूर पेपर बेक्स, नोएडा
6. धर्मचन्द जैन/ कैलाशचन्द दरोगा, ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक'' नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर
7. राम रतन/ रूचि त्यागी, ''भारतीय राजनैतिक चिन्तन'' मयूर पेपर बेक्स, नोएडा
8. सी.एम.. सरस्वती, ''भारतीय राजनीति विचारक'' मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ

5.10 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वामी विवेकानन्द के राजनीतिक विचारों पर प्रकाश डालिए।
2. भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में स्वामी विवेकानन्द का क्या योगदान रहा ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्वामी विवेकानन्द के जीवन परिचय का उल्लेख कीजिए।
2. विश्व बन्धुत्व एवं अन्तरराष्ट्रीयवाद के क्षेत्र में विवेकानन्द के विचार बताओ।
3. विवेकानन्द द्वारा समाजवाद के समर्थन के पीछे मूल कारण क्या था ?
4. समाज सुधारक के रूप में विवेकानन्द का क्या योगदान रहा है ?
5. स्वामी विवेकानन्द ने स्वतन्त्रता के संबंध में किस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था ?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्वामी विवेकानन्द के बचपन का नाम क्या था ?
2. स्वामी विवेकानन्द का जन्म कब और कहाँ हुआ ?
3. नरेन्द्रनाथ से विवेकानन्द नाम क्यों रखा ?
4. स्वामी विवेकानन्द के गुरु का नाम बताओ ?
5. स्वामी विवेकानन्द की प्रमुख रचनाओं के नाम बताओ ?
6. विश्व धर्म संसद कब और कहाँ हुई ?
7. ''उठो, जागो और तब तक न रूको, जब तक कि लक्ष्य पर न पहुँच जाओ।'' ये विचार किसने दिया ?
8. विवेकानन्द का देहावसान कब हुआ ?
9. स्वामी जी के दर्शन के कौन–कौन से स्रोत है ?
10. स्वामी विवेकानन्द ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कौनसे मिशन की शुरुआत की ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 6 दयानन्द सरस्वती

संरचना

6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 जीवन परिचय
6.4 रचनाएँ
6.5 स्वामी दयानन्द सरस्वती के राजनीतिक विचार
6.5.1 स्वतन्त्रता संबंधी विचार
6.5.2 प्रबुद्ध राजतन्त्र का सिद्धान्त
6.5.3 लोकतंत्र एवं लोकतांत्रिक आदर्शों में विश्वास
6.5.4 लोक कल्याणकारी राज्य का समर्थन
6.5.5 कानून का शासन
6.5.6 प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण
6.5.7 शासन के संस्थागत स्वरूप तथा शक्ति सन्तुलन का स्वरूप
6.5.8 न्याय व दण्ड व्यवस्था
6.5.9 मानवतावाद एवं अन्तरराष्ट्रीय का समर्थन
6.5.10 सापेक्ष अहिंसा का समर्थन
6.5.11 अन्तरराष्ट्रीय संबंध
6.6 दयानन्द और भारतीय राष्ट्रवाद
6.6.1 हिन्दु पुनरुत्थानवाद के समर्थक
6.6.2 अन्ध-विश्वासों एवं परम्पराओं का विरोध
6.6.3 व्यक्तिगत और सामाजिक चरित्र निर्माण
6.6.4 निर्भीकता और कर्त्तव्य पालन का सन्देश
6.6.5 राष्ट्र की स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम
6.6.6 स्वदेशी भाषा को प्रोत्साहन
6.6.7 स्वदेशी के प्रयोग पर बल
6.6.8 दलितोद्धार का समर्थन
6.6.9 जाति-पाँति का खण्डन
6.7 स्वामी दयानन्द के सामाजिक विचार
6.7.1 व्यक्ति और समाज एक-दूसरे के पूरक
6.7.2 सामाजिक बुराईयों का विरोध
6.7.3 कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था का समर्थन
6.7.4 आश्रम व्यवस्था का समर्थन
6.7.5 नारी गरिमा का समर्थन
6.7.6 वैदिक मूल्यों का समर्थन
6.7.7 छुआछूत का विरोध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.8 स्वामी दयानन्द के धार्मिक विचार
6.8.1 धर्म की उदार व्याख्या
6.8.2 एकेश्वरवाद में विश्वास
6.8.3 मूर्ति पूजा का विरोध
6.8.4 इस्लाम एवं ईसाई धर्म के प्रति दृष्टिकोण
6.8.5 शुद्धि आन्दोलन
6.9 सारांश
6.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
6.11 अभ्यास प्रश्नावली

6.1 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य यह कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भारतीय संस्कृति एवं वेदों को अपनाते हुए जो विचार एवं चिन्तन प्रस्तुत किया उसे जानना है ताकि भारत के प्राचीन गौरवशाली इतिहास व दर्शन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इसके अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे —

- स्वामी दायनन्द सरस्वती के राजनीतिक विचार जो स्वतन्त्रता लोकतन्त्र विधि के शासन, विकेन्द्रीकरण तथा अन्तरराष्ट्रीयवाद से युक्त है,
- दयानन्द सरस्वती को भारत में राष्ट्रवाद का अग्रदूत कहा जाता है, उसे भी जान सकेंगे। उन्होंने स्वशासन, स्वदेशी तथा स्वभाषा पर बल देकर भारतीय राष्ट्रवाद में एक नवीन जान डाल दी थी,
- सामाजिक क्षेत्र में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था, आश्रम, नारी गरिमा तथा वैदिक मूल्यों की पुनर्स्थापना पर बल दिया, जिनको अपनाना हमारे लिए आज भी लाभप्रद है अत: इसके संबंध में भी उचित जानकारी हासिल कर सकेंगे,
- धार्मिक क्षेत्र में उन्होंने हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करने के औचित्य को स्वीकार किया उसके संबंध में भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.2 प्रस्तावना

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती, भारतीय संस्कृति के वैदिक संरक्षक थे, जिन्होंने सर्वप्रथम '**वेदो की ओर लौटो**' का सन्देश दिया था। उन्होंने हिन्दू धर्म को नवजीवन प्रदान किया। वे एक साथ ही सन्त, समाज सुधारक और देशभक्त थे। उन्होंने भारत की खोई आत्मा को जाग्रत किया और उसे राष्ट्रीय जीवन की प्रमुख शक्ति बना दिया। भारतीय जनता जिस प्रकार से पश्चिमी संस्कृति की ओर भाग रही थी, उसे भारतीय संस्कृति के गौरव से अवगत करवाया और हिन्दू धर्म को सर्वोच्च बताकर उनमें अपूर्व आत्म विश्वास भर दिया। इससे न केवल हमारी संस्कृति की खोई हुई प्रतिष्ठा कायम हुई अपितु विश्व भी हमारी महानता से अवगत हुआ। रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय में कहा कि ''जैसे राजनीति के क्षेत्र में हमारी राष्ट्रीयता का सामरिक तेज पहले–पहल तिलक में प्रत्यक्ष, वैसे ही संस्कृति के क्षेत्र में भारत का आत्माभिमान स्वामी दयानन्द में निखरा ..... सत्य ही, शरणारूढ़, हिन्दुत्व के जैसे निर्भीक नेता स्वामी दयानन्द हुए, वैसा और कोई नहीं।'' रोमां रोलां के शब्दों में, ''दयानन्द इलियड अथवा गीता के प्रमुख नायक के समान थे, जिसने हरक्युलिस की शक्ति के साथ हिन्दू अन्ध–विश्वासों पर प्रबल प्रहार किये। वस्तुत: शंकराचार्य के बाद इतनी महान् बुद्धि का सन्त दूसरा नहीं जन्मा।''

6.3 जीवन परिचय

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म 1 फरवरी, 1824 को काठियावाड़ की मोरवी रियासत (गुजरात) के टंकारा नाम स्थान पर एक मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका परिवार शिव भक्त था। स्वामी दयानन्द के बचपन के दो नाम थे। (1.) दयाल जी (2.)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मूलशंकर। उनका प्रथम नाम ज्यादा प्रचलित था। पिता और परिवार की स्वामी दयानन्द से यह उम्मीद थी कि वे परिवार के धार्मिक संस्कारों को अपनावे। उन्होंने अपनी आयु के 14 वर्ष तक धार्मिक संस्कारों को पूरी निष्ठा के साथ अपनाया। लेकिन 14 वर्ष की आयु में उनके जीवन में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ आया। बात शिवरात्रि की है जब उन्होंने अपने पिता के आदेश के अनुसार शिव रात्रि का व्रत रखा और जागरण में मन्दिर गये। जब सभी भक्त सो गये, तब स्वामी दयानन्द सरस्वती ने देखा की एक चूहा शिवलिंग पर चढ़ रहा है और वहाँ रखा प्रसाद खा रहा है, तब इस घटना ने स्वामी जी के मन को झकझोर कर रख दिया और मूर्ति पूजा से उनका विश्वास उठ गया और यह दृढ़ निश्चय किया कि "मैं सच्चे शिव का दर्शन करूंगा।" इसी दौरान उनके जीवन में दो और घटनाएं घट गई, पहले बहन की मृत्यु और दो वर्ष बाद चाचा की अकाल मृत्यु का होना।

इन घटनाओं के कारण स्वामी दयानन्द ने संन्यास ग्रहण करने का निश्चय किया। इसके बाद मूलशंकर गुरु की तलाश में निकल पड़ते। अक्टूम्बर 1860 ई. में उन्हें मथुरा में गुरुविरजानन्द जी मिले और 14 नवम्बर, 1860 ई. को उन्होंने गुरु विरजानन्द के सम्मुख सहज समर्पण कर दिया। यह समर्पण समस्त विश्व के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुआ, अब उन्हें स्वामी दयानन्द नाम दिया गया। लगभग तीन वर्ष तक गुरु के चरणों में बैठकर उन्होंने साधना के साथ ज्ञानार्जन किया। 1863 ई. में धर्मोपदेश के लिए विदा करते हुए गुरु ने सन्देश दिया, "देश का उद्धार करो। सत् शास्त्रों का उद्धार करो। मत-मतान्तरों की अविद्या को मिटाओं और वैदिक धर्म फैलाओं।"

गुरु के आदेशों और उपदेशों को लेकर स्वामीजी सम्पूर्ण देश की यात्रा पर निकल पड़े। धर्म प्रचार और यात्रा क्रम में अक्टूबर 1874 में स्वामी जी बम्बई पहुँचे और 10 अप्रेल 1875 के दिन बम्बई में (डॉ. मालिक चन्द्रजी की वाटिका 'चिरगाँव') प्रथम आर्य समाज की स्थापना की। इसके दो वर्ष बाद लाहौर में आर्य समाज की स्थापना हुई। स्वामी जी को अपने विचारों का प्रचार-प्रसार करने के लिए आर्य समाज जैसा प्रभावशाली मंच मिल गया। जिसकी शाखाएँ भारत वर्ष में फैल गयी।

एक तरफ स्वामीजी का ध्यान आर्य समाजों के संगठन की तरफ केन्द्रित था, दूसरी तरफ वे वैदिक धर्म और संस्कृति के प्रचार में भी पूरी शक्ति के साथ संलग्न थे। इस कड़ी में वे देशी नरेशों को भोग के साथ त्याग और अपनी प्रजा के हित चिन्तन की शिक्षा देने में भी पीछे नहीं रहे। 17 मई, 1883 को वे जोधपुर पहुँचे और जोधपुर नरेश जसवन्त सिंह को वेश्या नन्हीबाई के प्रेम में लिप्त देखा तब उन्होंने नरेश को प्रताड़ित किया। तब उस वेश्या ने षड़यन्त्र रचकर स्वामीजी के दूध में विष मिला दिया। 30 अक्टूबर, 1883 को उनका देहावसान हो गया।

6.4 रचनाएँ

स्वामी दयानन्द सरस्वती की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं —

- ❖ ऋग्वेदादिभाष्य- भूमिका
- ❖ सत्यार्थ प्रकाश
- ❖ संस्कार- विधि
- ❖ गो करुणा-विधि
- ❖ वेदांग प्रकाश
- ❖ सत्य धर्म- विचार
- ❖ आर्यभिविवद
- ❖ व्यवहार भातु
- ❖ अष्टाध्यायी भाष्य

6.5 स्वामी दयानन्द सरस्वती के राजनीतिक विचार

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने एक राजनीतिक चिन्तन के रूप में विधिवत रूप में किन्हीं राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं किया। लेकिन धार्मिक तथा सामाजिक जीवन के साथ राजनीति भी उनका विषय रहा है। उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों ने स्वामी जी को व्यापक रूप से प्रभावित किया। उन्होंने वेदों तथा मनुस्मृति में वर्णित राजनीतिक सूत्र को अपने राजनीतिक चिन्तन का आधार बनाया। उनके राजनीतिक चिन्तन की प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं —

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.5.1 स्वतन्त्रता संबंधी विचार

व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा अधिकारों का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने कहा कि हमें राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए मानसिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना आवश्यक है। उन्होंने अपनी रचनाओं में देश की दासता पर गहरी चिन्ता व्यक्त की। 'सत्यार्थ प्रकाश' के इस कथन से स्पष्ट है कि विदेशी राज चाहे कितना अच्छा क्यों न हो स्वदेशी राज चाहे कितना कमियाँ क्यों न हो, अच्छा है। उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज का भी मुख्य नियम था कि प्रत्येक को अपनी उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए। बल्कि सभी की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

6.5.2 प्रबुद्ध राजतन्त्र का सिद्धान्त

स्वामी दयानन्द के राजनीतिक दर्शन वेदों और मनुस्मृति के विचारों का सम्मिश्रण था। उन्होंने इन दोनों के विचारों को अपना आधार बनाया। मनुस्मृति से उन्होंने ऐसे राज्य की धारणा ग्रहण की जो 'धर्मानुकूल आचरण के सिद्धान्त' पर चलें तथा वेदों से उन्होंने 'सभाओं तथा राजाओं के चुनाव' के सिद्धान्त को ग्रहण किया है। दयानन्द सरस्वती ने ऐसी उम्मीद जताई है कि राजा धर्म के अनुकूल आचरण करें, राजा का चुनाव एक सभा द्वारा किया जाए, राजा के निश्चित गुण होना आवश्यक है, राजाओं को चाहिए कि वह जन इच्छाओं के आधार पर कार्य करे, राजनीतिक सत्ता धर्म की सत्ता के अधीन रखी जाए और राजा सभा के सहयोग से अपने कार्यों को सम्पादित करें। इस प्रकार स्वामीजी ने राजतंत्र में राजा के चुनाव, राजा पर धर्म, जनता तथा मंत्रियों का नियन्त्रण तथा सत्ता के विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त को लागू करके 'गणतंत्रात्मक शासन पद्धति' का ही समर्थन किया है।

6.5.3 लोकतन्त्र और लोकतांत्रिक आदर्शों में विश्वास

उनके लोकतंत्र संबंधी विचार प्राचीन भारतीय राजनीतिक परम्पराओं के अनुकूल था। उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज का संगठन भी निर्वाचन पर आधारित था। उनके अनुसार जिस राजतन्त्र में शासन प्रजा से स्वतन्त्र होता है, वहाँ प्रजा का पतन हो जाता है। उनके अनुसार शासन न्याय प्रिय, अन्याय का अन्त करने वाला तथा दुष्टों का दमन करने वाला होना चाहिए।

6.5.4 लोक कल्याणकारी राज्य का समर्थन

स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा राज्य का लोककल्याणकारी स्वरूप अपनाने पर बल दिया गया है। लोककल्याणकारी राज्य में जनता की स्थिति केन्द्रिय होती है। जो व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक सम्पन्न होने वाली तमाम जनउपयोगी क्रियाओं का संचालन करता है। वे राज्य को मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष को प्राप्ति का साधन मानते थे। बिमान बिहारी मजूमदार के अनुसार ''स्वामी दयानन्द ने राज्य के उद्देश्यों को जितना व्यापक स्वरूप दिया है वैसा प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक समय के किसी भी अन्य राजनीतिक विचारक ने नहीं दिया।''

6.5.5 कानून का शासन

स्वामी जी के अनुसार राजा और प्रजा दोनों को ही कानून की सत्ता के अधीन रहना चाहिए। केवल कानून ही सच्चा राजा है। कानून न्याय प्रदान करता है और व्यवस्था बनाये रखता है। कानून का कार्यान्वयन यदि सही ढंग से होता है तो जनता सुखी होगी। कानून के शासन से तात्पर्य यह है कि कानून की नजरों में सभी व्यक्ति समान हैं और कानून के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। वे मानवीय कानून की तुलना में ईश्वरीय कानून को श्रेष्ठ मानते थे।

6.5.6 प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण

स्वामी दयानन्द ऐसे विशाल राज्य का निर्माण चाहते थे जिसकी मूलभूत इकाई गाँव है। सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने लिखा है कि राज्य में दो, तीन, पांच, सौ गाँवों के बीच एक प्रशासनिक कार्यालय रखा जाए, जिसमें आवश्यकतानुसार योग्य सरकारी अधिकारी हो। जो राज्य के सब कार्यों को पूर्ण करे। एक-एक गाँव में एक-एक प्रधान पुरुष रखे। उन्हें 10 गाँवों के ऊपर दूसरा 20 गाँवों पर तीसरा 100 गाँवों पर चौथा 1000 गाँवों के ऊपर एक प्रमुख रहे। इन सब इकाईयों को एक-दूसरे को साथ जोड़ दिया जाए।

6.5.7 शासन के संस्थागत स्वरूप तथा शक्ति सन्तुलन का स्वरूप

दयानन्द के अनुसार शासन का अन्तिम स्रोत ईश्वर है। वे शासन की शक्ति इस प्रकार के निकायों—धमार्थसभा, विधानसभा, राजार्थ सभा में निहित करने पर बल देते थे। ये तीनों सभाएँ क्रमश: न्यायपालिका, व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका के रूप में कार्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

करेंगी। ये सभाएँ एक-दूसरे के कार्यों में किसी प्रकार का गतिरोध उत्पन्न नहीं करेंगी अपितु आपसी तालमेल के साथ कार्यों को सम्पादित करने का प्रयास करेंगे।

6.5.8 न्याय व दण्ड व्यवस्था

स्वामीजी के न्याय व्यवस्था तथा दण्ड व्यवस्था संबंधी विचारों पर भी मनुस्मृति का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। उन्होंने स्पष्ट किया कि दण्ड शक्ति के समुचित प्रयोग के द्वारा ही शासन सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखता है तथा उसमें आवश्यक सुधार लाता है। उन्होंने लिखा है कि न्यायिक अधिकारियों का आचरण धर्म के अनुकूल तथा पक्षपात रहित हो। वे न्यायपालिका को स्वतन्त्र आचरण के लिए स्वच्छन्द न छोड़कर उस पर शासन का नियन्त्रण रखना चाहते थे ताकि भ्रष्ट न्यायाधीशों को देश निष्कासन का दण्ड दिया जा सके। बी. बी. मजूमदार के अनुसार ''शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार को मिटाने के उनके सुझाव आधुनिक समय के भ्रष्टाचार निरोधक विभाग के समान दिखाई देते है।''

6.5.9 मानवतावाद एवं अन्तरराष्ट्रीयवाद का समर्थन

दयानन्द सरस्वती महान् मानवतावादी तथा विश्व बन्धुत्व के महान् समर्थक थे। उन्होंने कहा- ''मेरा उद्देश्य मानव मात्र की मुक्ति करना है।'' उन्होंने लिखा है कि ''समाज का प्राथमिक उद्देश्य मनुष्य जाति की शारीरिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक दशा को सुधार कर समस्त विश्व का कल्याण करना है।'' स्वामी जी द्वारा स्थापित 'परोपकारिणी' नामक संस्था की स्थापना का यही उद्देश्य था। उन्होंने सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार की भांति माना। उनका मत था कि यदि विश्व के कुछ लोग कष्ट में है सारा विश्व खुश नहीं रह सकता। अत: वे सम्पूर्ण विश्व के मानव मात्र की समृद्धि की कामना करते हैं।

6.5.10 सापेक्ष अहिंसा का समर्थन

उन्होंने व्यावहारिक या सापेक्ष अहिंसा का समर्थन किया। वे अपराधियों को कठोर दण्ड देना, राज्य और जनहित के लिए आवश्यक मानते थे, ताकि कोई व्यक्ति कानून के उल्लंघन का दुस्साहस न कर सके।

6.5.11 अन्तरराष्ट्रीय संबंध

दयानन्द ने राज्य की सुदृढ़ता पर विशेष बल देते हुए संगठित 'चक्रवर्ती साम्राज्य' की परिकल्पना की है। उन्होंने शासक को यह परामर्श दिया है कि अन्य राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करे और इसकी बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा करे। उन्होंने मनु की तरह षाड्गुण्य नीति का समर्थन करते हुए साम, दाम, दण्ड और भेद के साधन अपनाने पर बल दिया। स्वामीजी ने गुप्तचर विभाग के निर्माण तथा योग्य दूतों की नियुक्ति का भी परामर्श दिया। राजा को चाहिए कि आवश्यकता पड़ने पर युद्ध करने से पीछे नहीं हटे अपनी सेना को साधनों से युक्त संगठित एवं शक्तिशाली बनाये रखे।

6.6 दयानन्द और भारतीय राष्ट्रवाद

दयानन्द न तो राजनीतिक दार्शनिक थे और न ही प्रत्यक्ष रूप से भारत के स्वतन्त्रता संग्राम से जुड़े रहे। लेकिन उनकी रचनाओं मुख्यतया 'सत्यार्थ प्रकाश' और 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उनका सम्पूर्ण चिन्तन राष्ट्रवाद की भावना से ओत-प्रोत था। इससे भारतीय राष्ट्रवाद को प्रोत्साहन मिला जो आगे चलकर स्वतन्त्रता संग्राम एवं राष्ट्रीय एकीकरण के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ।

6.6.1 हिन्दू पुनरुत्थानवाद के समर्थक

कोई भी देश स्वाधीनता के लिए तभी संघर्ष कर सकता है जबकि देशवासियों के हृदयों में स्वधर्म और स्वदेश के प्रति स्वाभिमान का भाव हो। दयानन्द सरस्वती का विचार था कि ''किसी विदेशी पंथ को अंगीकार कर लेने से राष्ट्रीय भावना, जिसका वे पोषण करना चाहते थे, संकट में पड़ जायेगी। उन्होंने वैदिक धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया और इस बात पर बल दिया कि धर्म ही स्वतंत्रता की प्रेरणा देता है। इस प्रकार देश की स्वतन्त्रता के लिए कर्म करने के पुरुषार्थ का सन्देश दिया।

6.6.2 अन्ध विश्वासों एवं परम्पराओं का विरोध

स्वामी दयानन्द सरस्वती का मानना था कि अन्ध विश्वासों एवं परम्पराओं ने हमारी शक्ति को क्षीण कर दिया है। हम इनके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

<table>
<tr><td>हिन्दू पुनरुत्थानवाद</td><td rowspan="5">राष्ट्रवाद के अग्रदूत स्वामी दयानन्द सरस्वती के राष्ट्रवाद से प्रेरित इन विचारों से भारत के स्वतन्त्रता संग्राम एवं संवैधानिक सुधार आन्दोलन को नवीन दिशा मिली</td><td>स्वदेशी भाषा को प्रोत्साहन</td></tr>
<tr><td>अंधविश्वासों एवं परम्पराओं का विरोध</td><td>स्वदेशी के प्रयोग पर बल</td></tr>
<tr><td>व्यक्तिगत और सामाजिक चरित्र का निर्माण</td><td>दलितोद्धार का समर्थन</td></tr>
<tr><td>निर्भीकता और कर्त्तव्य पालन का सन्देश</td><td>जाति-पांति का खण्डन</td></tr>
<tr><td>राष्ट्र की स्वतंत्रता के प्रति प्रेम</td><td>स्व-त्रि — ❍ स्वदेशी ❍ स्वभाषा ❍ स्वशासन</td></tr>
</table>

बन्धनों में इस प्रकार जकड़ गए हैं कि इसके कारण हमारा ध्यान राष्ट्र की स्वतन्त्रता एवं उन्नति की तरफ न जाकर संकीर्णता की ओर जाता है। इनके कारण ऐसा लगता है कि हमारा समाज विभिन्न खण्डों में विभाजित हो गया है। उन्होंने मूर्ति-पूजा का विरोध करते हुए एकेश्वरवाद का समर्थन किया उनका मानना था कि मूर्ति पूजा न तो वेदों के अनुकूल है और न ही यह धार्मिक कार्य है। इसी प्रकार उन्होंने बाल विवाह, बहु-पत्नी विवाह, विधवा विवाह निषेध, पर्दा-प्रथा, महिला वर्ग में अशिक्षा, समुद्री यात्रा निषेध, सती-प्रथा आदि का विरोध किया क्योंकि वे जागृत एवं शक्तिशाली समाज का निर्माण चाहते थे।

6.6.3 व्यक्तिगत और सामाजिक चरित्र निर्माण

स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि भारत के पतन के मुख्य कारण पारस्परिक फूट, धार्मिक भेद, जीवन में शुद्धता का अभाव, शिक्षा की कमी, बाल विवाह, असत्य तथा अन्य बुरी आदतें, वेदाध्ययन की अवहेलना तथा अन्य कुरीतियाँ हैं। उन्होंने भारतीयों को प्रोत्साहित किया कि वे अपने व्यक्तिगत और सामाजिक चरित्र को सुधारें।

6.6.4 निर्भीकता और कर्त्तव्य पालन का सन्देश

दयानन्द अत्यन्त निर्भीक थे और उन्होंने सदैव इस बात पर बल दिया कि निर्भीकता को एक नैतिक गुण के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। केवल निर्भीकता, राजनीतिक रूप धारण कर लेने पर, एक ऐसी शक्ति बन जाती है, जो उत्पीड़न व निरंकुशता का सामना कर सकती है। अत: निर्भीकता, मानव अधिकार प्राप्ति का आधार है।

6.6.5 राष्ट्र की स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम

दयानन्द का स्वतन्त्रता के प्रति तीव्र अनुराग था, यह अनुराग व्यक्ति और देश दोनों की स्वतन्त्रता के प्रति था। वे कहते थे कि इस देश में पहले मानसिक पराधीनता आयी और उसके बाद राजनीतिक पराधीनता। अत: राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने से पहले हमें मानसिक स्वाधीनता लानी होगी। सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि ''विदेशी राज से चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, स्वदेशी राज चाहे उसमें कितनी ही त्रुटियाँ क्यों न हों, अच्छा है।''

6.6.6 स्वदेशी भाषा को प्रोत्साहन

दयानन्द ने देशी भाषाओं के आन्दोलन को प्रोत्साहन देकर भी राष्ट्रवाद के उत्थान में योग दिया। यद्यपि वे वेदों के प्रकाण्ड पण्डित तथा संस्कृत के विद्वान और जन्म से गुजराती थे, लेकिन फिर भी सत्यार्थ प्रकाश को हिन्दी में लिखा। उन्होंने हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया। उसे राष्ट्रीय एकता का माध्यम बनाया।

6.6.7 स्वदेशी के प्रयोग पर बल

स्वामी जी मानते था कि भारत के कमजोर होने के पीछे आर्थिक कारण है, क्योंकि अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों ने स्वदेशी उद्योगों को नष्ट कर दिया और हम भी विदेशी वस्तुओं को अपनाने में गर्व की अनुभूति कर रहे थे। अत: उन्होंने भारत को आर्थिक दृष्टि से सबल और आत्मनिर्भर बनाने के लिए स्वदेशी के प्रयोग पर बल दिया। इस प्रकार स्वधर्म, स्वभाषा और स्वदेशी के माध्यम से वे स्वराज्य के अग्रदूत बने।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.6.8 दलितोद्धार का समर्थन

भारत की दोषपूर्ण सामाजिक व्यवस्थाओं के चलते समाज का एक बड़ा वर्ग दलित वर्ग अभाव की जिन्दगी जी रहा था। अत: स्वामी जी ने इस वर्ग के उत्थान का प्रयास किया। उनका मानना था कि दलितों की अनदेखी करके कोई भी समाज अपनी उन्नति नहीं कर सकता। दलितों के साथ भेदभाव, छुआछुत, शोषण, अन्याय तथा अत्याचार करना आम बात थी। अत: उन्होंने दलितों को समानता एवं न्याय दिलाने का बीड़ा उठाया।

6.6.9 जाति-पांति का खण्डन

स्वामी दयानन्द ने वर्ण व्यवस्था के मूल आधार पर करारा प्रहार किया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि जाति मनुष्य के जन्म के आधार पर नहीं वरन् गुण कर्म के आधार पर होनी चाहिए। उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज में जाति-पांति को कोई स्थान नहीं है।

6.7 स्वामी दयानन्द के सामाजिक विचार

स्वामी दयानन्द सरस्वती को एक समाज सुधारक के रूप में जितनी ख्याति मिली उतनी किसी अन्य क्षेत्र में नहीं मिली। स्वामीजी मानव मात्र एवं सम्पूर्ण समाज की सेवा में विश्वास करते थे। उनका कहना था कि जब तक भारतीय समाज में कुरीतियाँ एवं अंधविश्वास हावी रहेगे तब तक भारत में राजनीतिक जागृति एवं राष्ट्रीय एकीकरण संभव नहीं है। इनके अभाव में समाज का वास्तविक स्वरूप ही समाप्त हो गया है। स्वामी जी ने सामाजिक समस्याओं पर गम्भीरता पूर्वक विचार प्रस्तुत करते हुए समाज सुधार की योजना प्रस्तुत की। स्वामी दयानन्द सरस्वती के सामाजिक विचार निम्नलिखित हैं-

6.7.1 व्यक्ति और समाज एक-दूसरे के पूरक

स्वामी दयानन्द ने विश्वास व्यक्त किया कि व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति का सर्वांगीण विकास समाज में रहकर ही सम्पन्न हो सकता है और विकास की स्थिति को व्यक्ति तक ही सीमित कर देना एक भ्रान्त धारणा है। समाज एक संगठित इकाई है। हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि विकास का लाभ समाज के प्रत्येक सदस्य को मिले, तभी एक आदर्श समाज का निर्माण होगा।

6.7.2 सामाजिक बुराईयों का विरोध

जैसा कि यह विदित है कि उनके समय भारतीय समाज में बाल विवाह, सती प्रथा, बहुपत्नी विवाह, विधवा विवाह निषेध आदि कुरीतियाँ प्रचलित थी। उन्होंने बाल विवाह को नैतिक और शारीरिक दृष्टि से अहितकर मानते हुई विरोध किया। सत्यार्थ प्रकाश में लिखा कि 16 वर्ष से कम आयु की कन्या 25 वर्ष से कम आयु का युवक सन्तान पैदा करने के योग्य नहीं होता है। अत: इससे कम आयु में विवाह नहीं होना चाहिए। इसके अलावा उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि यदि सुखमय पारिवारिक जीवन बनाना है तो इसके लिए स्त्री-पुरुषों को विवेक के अनुसार जीवन साथी चुनने की छूट दी जाए।

6.7.3 कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था का समर्थन

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था का विरोध किया और इसे समाज में बुराईयों की जड़ माना। उनका मानना था कि वर्ण व्यवस्था का निर्धारण तो कर्म एवं गुण के आधार पर होना चाहिए। सभी मनुष्य समान हैं। जैसे कोई व्यक्ति अपराधी के घर जन्म लेने मात्र से अपराधी नहीं हो सकता। उसी प्रकार कोई व्यक्ति केवल इस आधार पर ब्राह्मण नहीं हो सकता कि वह ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ है। समाज में जाति के आधार पर प्रचलित छुआछुत का भी उन्होंने विरोध किया।

6.7.4 आश्रम व्यवस्था का समर्थन

प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन का अनुसरण करते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आश्रम व्यवस्था का समर्थन किया। इसके तहत एक व्यक्ति की आयु 100 वर्ष मानते हुए जीवन को चार भागों में बांटा गया- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, एव संन्यास। उनका मानना था कि आज के समाज में जो 'घातक प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति है, आश्रम व्यवस्था को अपनाने पर उस पर अंकुश लगेगा और सामाजिक जीवन में व्यवस्था स्थापित होना सम्भव है।

6.7.5 नारी गरिमा का समर्थन

दयानन्द ने नारी की गरिमा का प्रबल समर्थन किया। उस समय हिन्दू समाज में नारी को हीन भाव एवं कमजोर रूप में देख जाता था, जिसका उन्होंने विरोध किया। उनका मानना था कि वैदिक काल में नारी की स्थिति अच्छी थी। नारी को पुरुषों के समान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अधिकार प्राप्त थे। नारी पुरुष के समान शिक्षा प्राप्त करती थी।, यज्ञों में भाग लेती तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में उसकी भागीदारी थी। लेकिन मध्यकाल में नारी की स्थिति चिन्ताजनक हो गई। तब पुरुष प्रधान समाज अपनी प्रतिष्ठा के नाम पर नारी के साथ अनुचित प्रतिबन्ध एवं मनमानी मान्यताएँ थोंपने लगा। स्वामीजी ने अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है कि ''जो तुम स्त्रियों के वेद पढ़ने का निषेध करते हो, तो वह तुम्हारी मुर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है।'' इस प्रकार उन्होंने स्त्री-पुरुषों की समानता पर बल दिया। उनका यह कदम 19वीं सदीं के लिए एक क्रांतिकारी कदम था। नारी शिक्षा पर विशेष बल देते हुए फिरोजपुर में कन्या महाविद्यालय तथा मेरठ में कन्या विद्यालय की स्थापना की।

6.7.6 वैदिक मूल्यों का समर्थन

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार यदि हम वैदिक मूल्यों एवं आदर्शों को सामाजिक जीवन का आधार बनाएँ तो एक सुसंस्कृत एवं सुसभ्य समाज का निर्माण कर सकते हैं। किन्तु इसका अभिप्राय: यह नहीं है कि उनका दृष्टिकोण संकुचित एवं संकीर्ण था। उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति के गुणों की भी प्रशंसा की थी। उनका कहना था कि जो गुण एवं अच्छाईयाँ पाश्चात्य समाज में है जैसे बाल विवाह निषेध, दहेज निषेध, पर्दा प्रथा निषेध, स्त्री-पुरुष की विवेकानुसार जीवन साथी चुनने की छूट आदि को अंगीकार करना चाहिए।

6.7.7 छुआछूत का विरोध

समाज में जाति-पांति के बन्धन के कारण कथित रूप से उच्च जाति के लोग शुद्र या दलितों के साथ छुआछूत जैसा अमानवीय व्यवहार करते थे। जिसको स्वामीजी ने पाप के समान माना और इस बुराई को समाज के लिए नरक के समान बताया। अत: उन्होंने किसी भी रूप में होने वाली छुआछूत का विरोध किया।

6.8 स्वामी दयानन्द के धार्मिक विचार

स्वामी दयानन्द सरस्वती मूलत: धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष थे। धर्म के प्रति आस्था तो उनमें प्रारम्भिक काल से थी, वे हिन्दू धर्म को सर्वोच्च धर्म के रूप में स्वीकार करते थे। उनका कहना था कि हिन्दू धर्म के साथ-साथ जीवन का कौशल है लेकिन हिन्दू धर्म में व्याप्त आडम्बरों एवं अन्ध विश्वासों के कारण उनकी धार्मिक भावना पर गहरा आघात लगा था। अत: उन्होंने हिन्दू धर्म में व्याप्त अन्ध विश्वासों का विरोध किया और इन्हें धर्म को पतन की राह पर ले जाने वाला बताया। धर्म में विद्यमान बुराईयों को दूर करने का सफल प्रयास किया। अपने इन्हीं प्रयासों को मूर्त रूप देने के लिए आर्य समाज की नींव रखी। स्वामी जी के प्रमुख धार्मिक विचार निम्नलिखित हैं-

6.8.1 धर्म की उदार व्याख्या

उनके अनुसार ईश्वर के प्रति निष्ठा रखते हुए उदार एवं शाश्वत, मानवीय मूल्यों को ग्रहण करना ही धर्म है। वे धर्म में नैतिक मूल्यों को प्राथमिकता देते थे। उनके शब्दों में, ईश्वर के प्रति वेदों में जो कुछ करने का आदेश दिया है, वही धर्म है।

6.8.2 एकेश्वरवाद में विश्वास

स्वामीजी का कहना था कि ईश्वर एक है, बल्कि समाज के कुछ स्वार्थ प्रवृत्ति के तत्व बहु ईश्वर की बात करते हैं। जैसे परमात्मा में अन्त:गुण, कर्म और स्वभाव है, वैसे ही उनके कई नाम है, लेकिन ईश्वर एक ही है। दयानन्द के विचारों में, ओम शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है। उन्हें ईश्वर की सर्व-व्यापकता व अनन्य सत्ता में विश्वास था।

6.8.3 मूर्ति पूजा का विरोध

स्वामी जी के मन में मूर्ति पूजा का विरोध का विचार तो 14 वर्ष की आयु में आ गया था। जब शिव रात्रि को शिवलिंग पर चुहे को ऊछल कूद करते देखा, तभी उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया और मूर्ति पूजा को वेदों एवं धर्म दोनों के आधार पर गलत साबित करवाया।

6.8.4 इस्लाम एवं ईसाई धर्म के प्रति दृष्टिकोण

इस समय हिन्दू धर्म में व्याप्त बुराईयों के कारण अन्याय व अत्याचार से ग्रस्त हिन्दू धर्म को मानने वाले मुस्लिम एवं ईसाई धर्म को ग्रहण कर रहे थे। इसके अलावा इन धर्मों के द्वारा अपनी ओर से दलित लोगों को लालच भी दिया जा रहा था। अत: स्वामी जी ने हिन्दू धर्म की रक्षा का बीड़ा उठाया व दुगुनी शक्ति के साथ इस्लाम एवं ईसाई धर्मावलम्बियों पर प्रहार करने प्रारम्भ कर दिया। लेकिन इस्लाम एवं ईसाई धर्म के प्रति उनके विचार न तो संकीर्ण थे, न ही द्वेष भाव से युक्त थे। दयानन्द ने तो धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठकर वैदिक धर्म का प्रचार किय॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.8.5 शुद्धि आन्दोलन

स्वामी दयानन्द ने घोषणा की कि जिन हिन्दुओं ने हिन्दू धर्म का त्याग करके अन्य धर्म ग्रहण कर लिया है वे पुन: हिन्दू धर्म ग्रहण करना चाहें तो कर सकते हैं। अन्य धर्म वाले भी हिन्दू धर्म ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार हिन्दू धर्म को पुन: स्थापित करने के लिए स्वामी जी द्वारा शुद्धि आन्दोलन चलाया गया।

6.9 सारांश

इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती ने एक सुधारक के रूप में भारतीय समाज के उन तमाम क्षेत्रों को झकझोरा जो पतन की ओर अग्रसर हो रहे थे। विचारों के माध्यम से स्वदेशी, स्वभाषा, स्वशासन को बढ़ावा देकर राष्ट्रवाद की भावना को प्रोत्साहन दिया। हिन्दू धर्म में हीनता की भावना आ गई थी, उनसे धर्म को मुक्त करवाया। भारत का सामाजिक ढाँचा विखण्डित हो गया था, उसे पुन: सुधारने का प्रयास किया। स्वामीजी ने अपने विचारों को वास्तविक का स्वरूप प्रदान करने के आर्य समाज की स्थापना की, जो आज भी समाज सेवा की दिशा में भगीरथ कार्य कर रहा है।

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ओम प्रकाश गाबा, ''राजनीति-चिन्तन की रूपरेखा'' पेपर बेक्स, नोएडा
2. धर्मचन्द जैन /कैलाश चन्द्र दरोगा, ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक'' नेशनल पब्लिशिंग हाऊस जयपुर
3. डॉ. पुरुषोत्तम नागर, ''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तक'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
4. हरविलास शारदा, ''लाइफ ऑफ दयानन्द सरस्वती'' परोपकारिणी सभा, अजमेर
5. श्री अरविन्द, ''बंकिम, तिलक, दयानन्द'' श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी
6. स्वामी दयानन्द, ''सत्यार्थ प्रकाश'' वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
7. के.पी. जायसवाल, ''हिन्दू पोलीती''
8. वी.पी. वर्मा, ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन'' लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशक, आगरा
9. डॉ. ए. अवस्थी /डॉ. आर.के. अवस्थी, ''भारतीय राजनीतिक चिन्तन'' रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर

6.11 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''स्वामी दयानन्द सरस्वती राष्ट्रवाद के अग्रदूत थे।'' इस कथन को सिद्ध करते हुए राष्ट्रवाद में उनका योगदान बताओ।
2. दयानन्द सरस्वती के राजनीतिक विचारों पर प्रकाश डालिए।
3. स्वामी दयानन्द के धार्मिक एवं सामाजिक चिन्तन पर लेख लिखिए।
4. स्वामी जी का भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में क्या योगदान रहा ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. दयानन्द सरस्वती के अनुसार 'विधि का शासन' क्या है ?
2. स्वामी दयानन्द के प्रबुद्ध राजतंत्र संबंधी विचारों को स्पष्ट कीजिए।
3. स्वामी दयानन्द किस प्रकार अन्तरराष्ट्रीय वाद के पोषक थे ?
4. स्वामी के राष्ट्रवाद के विचारों में ऐसे कौन से तथ्य थे, जो संपूर्ण राष्ट्र को एक मंच पर लाने में सहायक सिद्ध हुई ?
5. सामाजिक विचारों में दयानन्द सरस्वती का केन्द्र बिन्दु क्या थे ?
6. स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों पर मनु का प्रभाव किस सीमा तक दिखाई देता है ?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्वामी दयानन्द सरस्वती का बचपन का क्या नाम था ?
2. स्वामी जी का जन्म कब और कहाँ हुआ ?
3. मूर्ति पूजा के विरोध का क्या कारण था ?
4. स्वामी दयानन्द सरस्वती के गुरु का क्या नाम था ?
5. स्वामी जी की दो प्रमुख रचनाओं का नाम बताओ ?
6. प्रबुद्ध राजतंत्र का सिद्धान्त क्या है ?
7. स्वदेशी, स्वभाषा और स्वराज किसके विचारों का आधार था ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई - 7 गोपाल कृष्ण गोखले

संरचना

7.1 उद्देश्य
7.2 प्रस्तावना
7.3 गोखले के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ एवं कार्य
7.4 गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक विचार
7.4.1 ब्रिटिश उदारवाद में गहरी आस्था
7.4.2 ब्रिटिश शासन तथा पाश्चात्य शिक्षा के समर्थक
7.4.3 सुदृढ़ राष्ट्रीय चरित्र और राष्ट्रीय एकता के समर्थक
7.4.4 राजनीति के आध्यात्मिकीकरण के पक्ष में
7.4.5 ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही स्वशासन की मांग
7.4.6 संवैधानिक साधनों में गहरी आस्था
7.4.7 सत्ता का विकेन्द्रीकरण के समर्थक
7.4.8 क्रमिक सुधारों के पक्षधर
7.4.9 स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन, लेकिन बहिष्कार का विरोध
7.4.10 मानवतावाद तथा प्रजातांत्रिक मूल्यों में गहरी आस्था
7.5 गोखले का राजनैतिक वसीयतनामा
7.5.1 प्रान्तीय शासन
7.5.2 केन्द्रीय शासन या भारत सरकार
7.6 गोखले के आर्थिक विचार
7.6.1 अनावश्यक सैन्य व्यय पर अंकुश लगाने का आग्रह
7.6.2 रेल निर्माण को प्रमुखता देने का विरोध
7.6.3 भारत में मुक्त व्यापार नीति अहितकर
7.6.4 अनुचित करों को कम करने के पक्षधर
7.6.5 किसानों की दशा से चिन्तित
7.6.6 औद्योगिक विकास पर बल
7.6.7 स्वदेशी का समर्थन
7.6.8 वित्तीय विकेन्द्रीकरण
7.7 गोखले : भारतीय उदारवाद के जनक
7.7.1 विवेकजन्य स्वतन्त्रता।
7.7.2 ब्रिटिश शासन एक आशीर्वाद
7.7.3 उपनिवेशवाद के भीतर स्वशासन
7.7.4 संवैधानिक साधन एवं क्रमिक सुधार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.7.5 स्वदेशी का नैतिक आधार

7.7.6 सत्ता का विकेन्द्रीकरण

7.8 गोपाल कृष्ण गोखले का योगदान

7.8.1 ब्रिटिश शासन के दोष करना

7.8.2 भारतीयों को राजनीतिक शिक्षा

7.8.3 भारतीय राष्ट्रीयता के जनक

7.8.4 विकेन्द्रीकरण पर बल

7.8.5 आर्थिक क्षेत्र में योगदान

7.8.6 राजनीति का आध्यात्मिकीकरण

7.8.7 भारत सेवक समाज की स्थापना

7.8.8 राजनीति में संवैधानिक आन्दोलन के प्रणेता

7.9 सारांश

7.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

7.11 अभ्यास प्रश्नावली

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य गोपाल कृष्ण गोखले के प्रमुख विचारों को जानते हुए एक उदारवादी चिन्तक के रूप में उनके योगदान को जानना है —

- गोखले ने राजनीतिक आध्यात्मिकरण पर बल देकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम एवं राष्ट्रीय आन्दोलन को नवीन दिशा देने का प्रयास किया है।
- वे एक ऐसी शासनप्रणाली के पक्षधर थे जो लोकतंत्र, संविधान एवं विकेन्द्रीकरण पर आधारित है। उसे की जान सकेंगे।
- गोखले का राजनीतिक वसीयतनामा जो शासन में भारतीयों की भागीदारी बढ़ाने में सहायक रहा।
- गोखले के आर्थिक विचार जो भारतीय गरीबी एवं पिछड़ेपन को दूर करने में कारगर साबित हुए उन्हें की जान सकेंगे।
- अन्त में गोखले के योगदान से भी परिचित हो सकेंगे।

7.2 प्रस्तावना

गोपाल कृष्ण गोखले अपने युग के चमकते हुए सितारे थे। उन्होंने भारत के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों को अपने चिन्तन और कार्यकलापों से प्रभावित किया। सभी क्षेत्रों में नैतिकता के स्पर्श की कामना की। आदान-प्रदान और समझौते के मार्ग का समर्थन किया। वैधानिक आन्दोलन को गति दी तथा आदर्शवादी मार्गों में समन्वय किया। गोखले की महानता इस बात में थी कि राजनीति में उन्होंने नैतिक मूल्यों को स्थान दिया। उस समय भारत के राजनीतिक पटल पर उग्रवादी एवं क्रांतिकारी आन्दोलन अपने पूरे यौवन पर था। गोखले के विचारों का इनके द्वारा विरोध किया जा रहा था, लेकिन फिर भी वे धैर्य एवं संयम के साथ संवैधानिक मार्ग पर चलते रहे। गोखले ने सदैव क्रमिक सुधारों में विश्वास किया और भारत के लिए एकाएक स्वशासन की मांग को अव्यावहारिक माना। इस तरह वे अंग्रेजों की छत्र-छाया में राजनीतिक सुधार लाना चाहते थे। उनका तर्क था कि अभी भारतीयों में स्वशासन चलाने का अनुभव नहीं है। वे महादेव गोविन्द रानाडे को अपना गुरु मानते थे।

7.3 गोखले के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ तथा कार्य

❖ जन्म 9 मई, 1866 को बम्बई प्रान्त के रत्नागिरि जिले के कोटलक ग्राम में हुआ।

❖ सन् 1879 में पिता कृष्णराव की मृत्यु।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- ❖ सन् 1881 में कोल्हापुर से मेट्रीक्युलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण की।
- ❖ सन् 1884 में बम्बई के ऐल्फिसटन कॉलेज से ॥तक की परीक्षा उत्तीर्ण की।
- ❖ सन् 1885 में पूना के फर्ग्यूसन कॉलेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक नियुक्त।
- ❖ सन् 1886 में 'डेकन एजुकेशन सोसायटी' के आजीवन सदस्य बने।
- ❖ सन् 1887 से 1901 तक रानाडे के निर्देशन में प्रशिक्षण तथा कार्य।
- ❖ सन् 1888 में बम्बई विधान परिषद् के सदस्य मनोनीत (आयु 22 वर्ष)
- ❖ सन् 1889 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण की।
- ❖ सन् 1895 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंत्री बने।
- ❖ सन् 1896 में दक्षिणी सभा की स्थापना, उसके सचिव बने।
- ❖ सन् 1897 में इंगलैण्ड की पहली यात्रा और वैल्बी आयोग के समक्ष पेश।
- ❖ सन् 1902 में फर्ग्युसन कॉलेज के प्राचार्य के पद से सेवानिवृत।
- ❖ सन् 1902 में केन्द्रीय विधान परिषद् के सदस्य नियुक्त।
- ❖ सन् 1904 में सी. आई. ई. की उपाधि से विभूषित।
- ❖ सन् 1905 में भारत सेवक संघ की स्थापना की।
- ❖ सन् 1905 में इंग्लैण्ड की दूसरी यात्रा।
- ❖ सन् 1905 में कांग्रेस के बनारस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये।
- ❖ सन् 1915 में 19 फरवरी को पूना में 49 वर्ष की आयु में देहावसान।

7.4 गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक विचार

गोपाल कृष्ण गोखले भारतीय राजनीति के महान् उदारवादी नेता, व्यावहारिक आदर्शवादी और राजनीतिक गुरु थे जिन्होंने तत्कालीन भारतीय राजनीति और प्रशासन में क्रमिक सुधारों का पक्ष लिया तथा एकाएक स्वशासन की मांग को अव्यावहारिक माना। ''अंग्रेजों की न्यायप्रियता और समुचित आचरणशीलता के प्रति उनकी अपनी निष्ठा इतनी अधिक थी कि वे यह मानने के लिए तैयार न थे कि भारत में अंग्रेज अधिकारियों को सुधार कर सकना संभव नहीं हैं।'' सार्वजनिक जीवन का वे आध्यात्मीकरण करना चाहते थे। उनकी धार्मिक प्रवृत्ति और साधुवृत्ति के कारण ही महात्मा गांधी ने उन्हें अपना राजनीतिक गुरु माना। गांधीजी उन्हें 'पुण्यात्मा गोखले' कहा करते थे।

7.4.1 ब्रिटिश उदारवाद में गहरी आस्था

गोखले की ब्रिटिश उदारवाद में गहरी आस्था थी तथा उनका अंग्रेज जाति की न्यायप्रियता में पूर्ण विश्वास था। वे ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था के लोकतांत्रिक मूल्यों, कानून का शासन, सीमित सरकार के सिद्धान्त तथा न्याय प्रणाली को भारत में स्थापित करने के पक्ष में थे। उनका विश्वास था कि भविष्य में ब्रिटेन में ऐसा राजनीतिक वातावरण बनेगा, जो भारतीयों के साथ न्याय करेगा। उनका यह भी विश्वास था कि जैसे-जैसे भारतीयों में राजनीतिक जागरुकता आएगी तथा वे स्वशासन के योग्य बनेंगे, वैसे ब्रिटिश सरकार उनको स्वशासन प्रदान करेगी। गोखले का मत था कि उग्रवाद से भारत का भला नहीं हो सकता।

7.4.2 ब्रिटिश शासन तथा पाश्चात्य शिक्षा के समर्थक

गोखले ब्रिटिश शासन को भारत के लिए वरदान मानते थे। उनका मानना था कि ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही भारत राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक सुधारों को प्राप्त कर सकता है। पाश्चात्य शिक्षा को वे भारत के लिए लाभदायक मानते थे। उनका मानना था कि इससे भारतीयों को सभी प्रकार के परम्परागत बन्धनों, अंधविश्वासों तथा अज्ञान के अन्धकार से मुक्ति मिलेगी। इसे वे स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व के प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रचार-प्रसार में सहायक मानते थे। इसलिए उन्होंने अंग्रेजी के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार का समर्थन किया।

7.4.3 सुदृढ़ राष्ट्रीय चरित्र और राष्ट्रीय एकता के समर्थक

किसी भी समाज या राष्ट्र की उन्नति इस बात पर निर्भर करती है कि वहां के लोगों का चरित्र कितना उच्च कोटि का है। यदि लोगों में राष्ट्र के प्रति त्याग, बलिदान, समर्पण, कठोर परिश्रम, ईमानदारी, कर्त्तव्यपरायणता, नैतिक, बौद्धिक व शारीरिक दृष्टि से

Jain Vishwa Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बलशाली आदि गुण विद्यमान हैं तो सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। गोखले ने इसके औचित्य को स्वीकार करते हुए इनकी आवश्यकता पर बल दिया ताकि भारत का नवयुवक अपनी सम्पूर्ण क्षमता व भावना से इस महान् यज्ञ में अपने जीवन की आहुति दे सकें। इसी महान् उद्देश्य की प्राप्ति में सहयोग देने के लिए उन्होंने 12 जून, 1905 को 'भारत सेवक संघ' नामक संस्था की स्थापना की। गोखले राष्ट्रीय एकता के प्रबल समर्थक थे। उनका मत था कि हिन्दू-मुस्लिम एकता से ही इस देश की जनता का कल्याण सम्भव है। इनके बीच भाईचारे से ही राष्ट्रीय एकता को प्राप्त किया जा सकता है। उनका कहना था कि भारत में बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता के कारण हमारा भविष्य अन्धकारमय हो गया है।

7.4.4 राजनीति के आध्यात्मीकरण के पक्ष में

गोखले राजनीति का आधार धर्म को बनाना चाहते थे। वे चाहते थे कि सार्वजनिक जीवन में कार्य करने वाले लोग पूर्णतया धार्मिक भावना से ओत-प्रोत हो तथा देश सेवा को आध्यात्मिक भावना से सम्पन्न करें। हमारा कर्त्तव्य है कि समाज सेवा को हम नैतिक व आध्यात्मिक भावना से सम्पन्न करें। राजनीति में भी नैतिकता व धर्म के सिद्धान्तों का पूर्णतया पालन किया जाना चाहिए। वे सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन में 'साध्य और साधन की पवित्रता के सिद्धान्त' का पूर्णतया पालन करने के पक्षधर थे। गोखले के समान महात्मा गांधी भी राजनीति का आध्यात्मीकरण करना चाहते थे तथा उन्होंने धर्म से रहित राजनीति को सर्वसुख का साधन माना।

7.4.5 ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही स्वशासन की माँग

गोखले ब्रिटिश शासन को भारतीयों के हित में ईश्वरीय वरदान मानते थे। उनका तर्क था कि भारतीय शासन में जो दोष उत्पन्न हुए हैं, उन्हें ब्रिटिश शासन के माध्यम से दूर किया जा सकता है। गोखले का कहना था कि अभी भारतीय स्वशासन नहीं चला सकते क्योंकि उन्हें शासन चलाने का अनुभव नहीं है। अत: भारत का हित केवल इसी में है कि ब्रिटिश साम्राज्य की छत्र-छाया में स्वशासन की स्थापना की जावे। वे भारत में वैसी ही सरकार चाहते थे, जैसी कनाडा तथा अन्य औपनिवेशिक राज्यों में प्रचलित थी।

7.4.6 संवैधानिक साधनों में गहरी आस्था

गोखले राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति हेतु संवैधानिक साधनों एवं शांतिपूर्वक आन्दोलनों के पक्षधर थे। यद्यपि गोखले के इन साधनों का क्रांतिकारी एवं उग्रवादी विचारधारा के लोगों के द्वारा व्यापक विरोध किया गया लेकिन फिर भी गोखले अपने विचारों से पीछे नहीं हटे। उनका कहना था कि संवैधानिक साधनों के द्वारा ही ब्रिटिश जनता की सहानुभूति तथा सहयोग प्राप्त किया जा सकता।

7.4.7 सत्ता के विकेन्द्रीकरण के समर्थक

गोखले का विचार था कि सत्ता का केन्द्रीकरण होने से निरंकुशता को प्रोत्साहन मिलता है। वे एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे जिसमें प्रशासन की स्वेच्छाचारिता पर नियन्त्रण लगाया जा सके और उसे जनता के प्रति उत्तरदायी बनाया जा सके। सत्ता के विकेन्द्रीकरण हेतु गोखले ने निम्नलिखित सुझाव दिये-

1. प्रान्तीय विकेन्द्रीकरण की सफलता के लिए प्रान्तीय परिषदों के आकार में वृद्धि की जाए और बजट पर वाद-विवाद करने का अधिकार दिया जाए।
2. प्रत्येक जिले में जिला परिषद् का निर्माण, जो जिलाधीश पर अंकुश रखेगी।
3. हॉब हाऊस विकेन्द्रीकरण आयोग के समक्ष गोखले ने गवाही देते समय तीन बातों पर विशेष बल दिया। 1. निम्न स्तर पर ग्राम पंचायत, 2. मध्यम स्तर पर जिला परिषद, 3. उच्च स्तर पर विधान परिषदों की स्थापना की जाये।

7.4.8 क्रमिक सुधारों के पक्षधर

गोपाल कृष्ण गोखले राजनीति एवं प्रशासन के क्षेत्र में क्रमिक सुधारों के पक्षधर थे। वे भारत में ब्रिटिश शासन से राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में अनुभव प्राप्त करने के इच्छुक थे। वे भारत में सुधारों की योजना को तब तक अधूरा मानते थे जब तक कि भारतीय राजनीति व प्रशासन के क्षेत्र में परिपक्व न हो जाए। गोखले ने समय-समय पर अंग्रेजों के सामने सुधारों की व्यापक योजना प्रस्तुत की। वे चाहते थे कि प्रशासन एवं राजनीति में अधिक से अधिक भारतीयों की भागीदारी सुनिश्चित होनी चाहिए, जिससे भारतीयों को प्रशिक्षण प्राप्त हो सके। उन्होंने इस बात का भी विरोध किया कि प्रशासन के महत्त्वपूर्ण पदों पर भारतीयों के स्थान पर अंग्रेजों को नियुक्त किया जा रहा है। उनका मत था कि अंग्रेज अधिकारी भारतीयों की समस्याओं और परिस्थितियों को नहीं जानते। गोखले की यह धारणा थी कि विधान परिषदों, सेना, स्थानीय स्वशासन, राजस्व प्रशासन तथा अन्य जनप्रतिनिधित्व की संस्थाओं में भारतीयों का प्रतिनिधित्व बढाया जाए। इस तरह जब राजनीतिक एवं प्रशासन के क्षेत्र में भारतीयों का प्रशिक्षण पूरा हो जाएगा तब अंग्रेज स्वत: ही शासन भारतीयों के लिए छोड़ देंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.4.9 स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन लेकिन बहिष्कार का विरोध

गोखले स्वदेशी आन्दोलन के प्रबल समर्थक थे। इससे देश की आर्थिक स्थिति में सुधार आयेगा साथ ही साथ देशभक्ति एवं राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहन मिलेगा। 1905 के कांग्रेस के बनारस अधिवेशन में भी स्वदेशी आन्दोलन की आवश्यकता पर बल दिया। उनका मानना था कि कुटीर उद्योगों का पुनरूद्धार करने तथा स्वदेशी वस्तुओं के अपनाने से जन सामान्य में त्याग की भावना विकसित होगी तथा वे राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग देने हेतु आगे आयेंगे।

गोखले बहिष्कार के आन्दोलन को अव्यावहारिक मानते थे, जिससे भारतीयों में विदेशियों के प्रति घृणा तथा प्रतिशोध की भावना में वृद्धि होगी।

7.4.10 मानवतावाद तथा प्रजातांत्रिक मूल्यों में गहरी आस्था

गोखले की मानवीय मूल्यों तथा प्रजातंत्र के महान् आदर्शों–स्वतन्त्रता, समानता एवं बन्धुत्व में गहरी आस्था थी। वे एडमण्ड बर्क की पुस्तक 'रिफ्लैक्शन्स ऑन द फ्रेंच रिवॉल्यूशन' से बहुत प्रभावित थे। गोखले महान् उदारवादी थे। मानवीय मूल्यों की बहाली के लिए उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका जाकर रंगभेद की नीति का विरोध किया। उनका मानना था कि सम्पूर्ण विश्व में नैतिक सिद्धान्तों और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हो। साम्राज्यवादी शक्तियाँ भी अपने उपनिवेशों की जनता के साथ समानता तथा मानववादी व्यवहार करें। वे सभी प्रकार के भेदभाव का विरोध किया करते थे। प्रेस की स्वतंत्रता पर रोक लगाने पर उन्होंने ब्रिटिश सरकार की आलोचना की। वे स्वतन्त्रता व समानता को व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास हेतु परमावश्यक मानते थे। भारत की परतन्त्रता से गोखले को बहुत दुःख होता था। स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए व्यवस्थापिका व कार्यपालिका को पृथक–पृथक रखना चाहिए।

7.5 गोखले का राजनैतिक वसीयतनामा

1909 के भारत शासन अधिनियम से गोखले सन्तुष्ट नहीं थे और एक नवीन अधिनियम की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे। ऐसी स्थिति में बम्बई के गवर्नर लॉर्ड विलिंगटन के आग्रह पर गोखले ने वैधानिक सुधारों की एक योजना तैयार की। ये गोखले के भारत में सुधार सम्बन्धी अन्तिम प्रस्ताव थे, इसीलिए इस योजना को गोखले का राजनीतिक वसीयतनामा कहा गया। गोखले ने अपने इन प्रस्तावों में प्रान्तीय शासन तथा केन्द्रीय शासन में संवैधानिक और प्रशासकीय सुधारों की योजना प्रस्तुत की। इस योजना के निम्न सुझाव थे–

7.5.1 प्रान्तीय शासन

प्रान्तीय शासन के निम्नलिखित सुझाव थे–

1. प्रान्तीय शासन के अध्यक्ष के रूप में गवर्नर हो, जिसकी नियुक्ति इंग्लैण्ड से हो।
2. गवर्नर की सहायता के लिए 6 सदस्यों की कार्यकारिणी हो, जिसमें 3 भारतीय तथा 3 अंग्रेज सदस्य हो।
3. प्रत्येक प्रान्त में एक विधान परिषद् होनी चाहिए, जिसकी सदस्य संख्या 75–100 के बीच होनी चाहिए।
4. प्रान्त की कार्यकारिणी सरकार और इस प्रकार गठित विधान परिषद का आपसी संबंध लगभग वैसा ही होना चाहिए, जैसा जर्मनी में इम्पीरियल गवर्नमेन्ट तथा व्यवस्थापिका के बीच है।
5. इस प्रकार गठित हो जाने पर विधान परिषद् के नियन्त्रण में काम करने वाली इस प्रान्तीय सरकार को प्रान्त के आन्तरिक प्रशासन का पूरा कार्य भार सौंप दिया जाना चाहिए।उसे वित्तीय शक्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए।
6. प्रान्तीय स्वशासन की यह योजना उस समय तक अधूरी रहेगी, जब तक उसके साथ दो काम न किये जायें प्रथम, जिला प्रशासन को उदार रूप दिया जाए। द्वितीय, स्थानीय स्वशासन का अत्यधिक विस्तार किया जाए।

7.5.2 केन्द्रीय शासन या भारत सरकार

गोखले द्वारा केन्द्रीय शासन या भारत सरकार की प्रस्तावित योजना निम्नलिखित थीं –

1. केन्द्रीय शासन को प्रान्तीय शासन पर नियन्त्रण का अधिकार केवल नाममात्र का होगा। अत: यह सुझाव दिया गया कि केवल 6 विभाग एवं 6 सदस्य होने चाहिए– 1. आन्तरिक मामले, 2. वित्त, 3. विधि, 4. प्रतिरक्षा, 5. संचार, और 6. विदेश। इनमें कम से कम 3 सदस्य भारतीय होने चाहिए।
2. केन्द्रीय विधान सभा का नाम भारत की विधान सभा कर दिया जाना चाहिए। विधानसभा की शक्तियाँ बढ़ा दी जानी चाहिए और सदस्यों की संख्या बढ़ा कर 100 कर दी जानी चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. इस प्रकार गठित भारत सरकार को वित्तीय मामलों में भारत मंत्री के नियन्त्रण से मुक्त कर दिया जाना चाहिए। अन्य मामलों में भी भारत सरकार पर भारत मंत्री का नियन्त्रण कम कर दिया जाना चाहिए और भारत परिषद् को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।
4. थलसेना तथा नौ सैना में अब भारतीयों को कमीशन (अधिकारी पद) दिये जाने चाहिए।
5. इस योजना में मुसलमानों और अन्य अल्पसंख्यकों को पृथक प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता को स्वीकार किया गया। आगाखाँ के प्रान्तों में जातीय आधार पर पुनर्गठन का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया।

7.6 गोखले के आर्थिक विचार

गोखले न केवल एक रचनात्मक राजनीतिज्ञ वरन् एक सुलझे हुए अर्थशास्त्री भी थे। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद के सदस्य के रूप में उन्होंने प्रति वर्ष जो बजट भाषण दिये, उनमें से प्रत्येक भाषण आर्थिक विषयों के संबंध में उनके गहरे ज्ञान को स्पष्ट करता है। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा के शब्दों में– ''गोपाल कृष्ण गोखले इतिहास के जानकार तथा अर्थशास्त्र के आचार्य थे। दादाभाई नौरोजी की भांति उन्हें भी राजनीति के आर्थिक आधारों के अध्ययन में रूचि थी।'' गोखले के प्रमुख आर्थिक विचार निम्नलिखित हैं–

7.6.1 अनावश्यक सैन्य-व्यय पर अंकुश लगाने का आग्रह

गोपाल कृष्ण गोखले भारत में बढ़ती हुई गरीबी से बहुत चिन्तित थे। उनका मानना था कि गरीबी का मुख्य कारण भारतीय-कोष का अधिकांश भाग सेना एवं अन्य अंग्रेज अधिकारियों पर खर्च हो जाता है, जिसका सीधा प्रभाव जनकल्याण पर पड़ता है और जनता पर अनावश्यक कर का भार लाद दिया जाता है। 1906 में वेलबी आयोग के समक्ष अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए गोखले ने स्पष्ट किया कि भारत में कुल राजस्व व्यय में से सेना पर व्यय का जो प्रतिशत है वह तुलनात्मक रूप से अन्य देशों से बहुत अधिक था। शांति काल में सेना पर इतना व्यय अनुचित है। सेना में पर्याप्त मात्रा में भारतीयों की नियुक्ति की जानी चाहिए , क्योंकि भारतीय अधिकारी कम वेतन पर उपलब्ध हो जायेंगे। इसके अलावा वास्तविक आक्रमण तथा युद्ध की स्थिति को छोड़कर अन्य परिस्थितियों में भारतीय सेना का भारत की सीमा से बाहर प्रयोग नहीं करना चाहिए। प्रशासनिक व्यय में कमी लाने के उद्देश्य से उन्होंने नागरिक सेवाओं के भारतीयकरण की मांग की।

7.6.2 रेल निर्माण को प्रमुखता देने का विरोध

गोखले ने अंग्रेजों के द्वारा रेल निर्माण को वरीयता देने तथा इस योजना पर बड़ी मात्रा पर धन खर्च करने की नीति का विरोध किया। उनका मत था कि रेल के विकास से भारतीयों को लाभ होने के स्थान पर नुकसान अधिक होगा। क्योंकि इसके पीछे निहित उद्देश्य अंग्रेजों द्वारा अपनी सुविधा का विस्तार करना और भारत से कच्चा माल और विदेशों से आने वाला तैयार माल अतिशीघ्र निश्चित स्थानों पर पहुँचाना। इस तरह रेल का प्रयोग भारतीय लघु उद्योगों को नष्ट करने के लिए किया जाने लगेगा।

7.6.3 भारत में मुक्त व्यापार नीति अहितकर

गोखले के अनुसार मुक्त व्यापार नीति भारत पर थोप देने के फलस्वरूप ही देश में सभी उद्योगों का नाश हो गया। उनका मानना था कि गलत व्यापार नीति के कारण ही भारत के कुटीर तथा लघु उद्योग समाप्त हो रहे हैं। उनके अनुसार यूरोप में हुई औद्योगिक क्रांति से औद्योगिक क्षेत्र में आधुनिक भापचलित तथा अन्य उत्कृष्ट मशीनों का प्रयोग होने से वहां माल में कम लागत पर अधिक उत्कृष्टता आने लगी। जब मशीनीकृत माल को भारत में आयातीत किया जाता था तो यहां के स्वेदशी माल को इससे प्रतियोगिता करनी पड़ी। प्रतियोगिता के नाम पर विदेशी कम्पनियों को भारत लाया जा रहा था, जिन्हें अंग्रेजों का संरक्षण भी प्राप्त था और भारतीय उद्योगों को नष्ट किया जा रहा था।

7.6.4 अनुचित करों को कम करने के पक्षधर

गोखले भारतीय जनता पर ब्रिटिश शासन के अधीन करों के भारी बोझ से बहुत क्षुब्ध थे, क्योंकि भारतीय जनता पहले ही आर्थिक विषमताओं से ग्रस्त थी इसलिए जनता पर करो का बोझ डालना अनुचित है। गोखले ने सरकार की कर व्यवस्था में सुधारवादी परिवर्तन के कई सुझाव दिये, जैसे भारतीय बजट को भारत सचिव के हाथों में न रखकर गवर्नर जनरल की विधान परिषद् द्वारा पारित करवाया जाना चाहिए। अकाल के समय भूमि लगान को माफ करना, आयकर से छूट की अधिकतम सीमा में वृद्धि नमक कर में कमी आदि।

7.6.5 किसानों की दशा से चिन्तित

भारत हमेशा से ही कृषि प्रधान देश रहा है, इस कारण देश के अधिकांश लोग कृषि पर निर्भर हैं। गोखले के समय में भी किसानों की स्थिति दयनीय थी। सरकार की गलत नीतियों, प्राकृतिक आपदा की मार, अनावश्यक कर भार, जमीदारों के अत्याचार एवं जबरदस्ती कर वसूली आदि के कारण किसानों की स्थिति पतली बनी हुई थी। अत: गोखले ने किसानों की दशा सुधारने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। किसानों के उत्पादन का उचित लाभ की प्राप्ति को सुनिश्चित करने के लिए सहकारी समितियों का गठन किया जाए। कृषि के क्षेत्र में उत्पादन की तकनीकी में सुधार, उत्पादन कार्य हेतु बीज-खाद और सिंचाई के रूप में समुचित साधनों की व्यवस्था, ग्रामीण विकास के लिए कुटीर उद्योगों का विकास किया जाए, अकाल या अन्य प्राकृतिक आपदा में किसानों के कर्ज को माफ किया जाए, आदि।

7.6.6 औद्योगिक विकास पर बल

गोखले ने कृषि के साथ ही औद्योगिक विकास पर बल दिया और कहा कि इस क्षेत्र में की गई अवहेलना भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए बड़ी घातक होगी। उन्होंने देश के उद्योगपतियों से अपील की कि उद्योगों मे लगे श्रमिकों में कुशलता बढ़ाए, उत्पादन बढ़ाये और स्वदेशी वस्तुओं की मण्डियां स्थापित की जाए। उद्योग धन्धों के स्त्रोतों का वितरण इस प्रकार किया जाए, जिसका लाभ समाज के प्रत्येक व्यक्ति को मिल सके।

7.6.7 स्वदेशी का समर्थन

उस समय अंग्रेजों के द्वारा जो आर्थिक शोषण किया जा रहा था, उस कड़ी में भारतीय बाजारों को विदेशी माल से भर दिया गया था। स्वदेशी उद्योगों पर करारे प्रहार किये गये। भारतीय जनता में भी विदेशी वस्तुओं के प्रति आकर्षण बढ़ रहा था, जिसका सीधा प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा था। अत: गोखले ने स्वदेशी आन्दोलन पर बल दिया और कहा कि भारत को आर्थिक दृष्टि से सबल बनाने के लिए स्वदेशी के पथ पर चलना होगा।

7.6.8 वित्तीय विकेन्द्रीकरण

गोखले के अनुसार संघीय राजस्व का अधिकांश भाग केन्द्रीय सरकार ले लेती है, तथा चूंकि प्रान्तीय सरकारों के वित्तीय साधन कम है इसलिए वह जन कल्याण के कार्यों को पूर्ण नहीं कर पाती। अत: प्रान्तों को राजस्व का अधिक भाग दिया जाए।

7.7 गोखले : भारतीय उदारवाद के जनक

गोपाल कृष्ण गोखले भारतीय सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन की उदारवादी विचारधारा के पितामह थे। उदारवाद भारतीय राष्ट्रवाद का शैशवकाल था। उदारवादी विचारक भारतीय समाज और राज्य को उदार बनाने के लिए आवश्यक सुधार करने के पक्षधर थे। वे ब्रिटिश शासन को समाप्त करने के विपरीत इसमें आवश्यक सुधार करना चाहते थे। ''ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर स्वराज'' ही इनका मूल मंत्र था।

गोखले राजनीतिक बदलाव की बजाए सामाजिक बदलाव को अधिक अहम मानते थे। उनका मानना था कि सामाजिक सुधार, शैक्षणिक सुधार और नैतिक उत्कर्ष के आधार में राजनैतिक स्वतन्त्रता के बारे में सोचना मूर्खता है।

निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर गोखले को उदारवाद के जनक के रूप में समझा जा सकता है:-

7.7.1 विवेकजन्य स्वतन्त्रता

पश्चिमी उदारवाद से प्रेरित होकर गोखले व्यक्ति के बौद्धिक अनुभव जन्य प्रयोग को महत्त्वपूर्ण मानते थे और ज्ञान को व्यक्ति के अनुभव पर आधारित मानते थे।

7.7.2 ब्रिटिश शासन एक आशीर्वाद है

ब्रिटिश शासन के गुणों और उपलब्धियों से प्रभावित गोखले ब्रिटिश शासन को भारत के लिए आवश्यक भी समझते थे और कल्याणकारी भी। उन्हीं के शब्दों में- ''भारत की जनता नैतिक जिम्मेदारी के कारण अंग्रेजी शासन से संबंधी थी। अंग्रेज भारत को नैतिक न्यायालय के रूप में रखे हुए थे।''

7.7.3 उपनिवेश के भीतर स्वशासन

भारत में राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक समृद्धि एवं सामाजिक विकास के लिए ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन आवश्यक है। ब्रिटिश उपनिवेशवाद एक आवश्यक बुराई है और हमें ब्रिटेन से स्वतन्त्रता के बारे में कभी नहीं सोचना चाहिए। अपने बजट भाषण में उन्होंने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कहा– ''हमारे यहाँ एक ऐसी सरकार काम कर रही है, जो विदेशी होते हुए भी वास्तव में राष्ट्रीय है। एक ऐसी सरकार जो भारतीय जनता के कल्याण के समक्ष और किसी बात को महत्त्व नहीं देती।''

7.7.4 संवैधानिक साधन एवं क्रमिक सुधार

गोखले स्वदेशी आन्दोलन के पक्ष में थे और इस राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रभक्ति के परिचायक के रूप में भी मानते लेकिन बहिष्कार की नीति का विरोध करते थे। उनका मत था कि इस नीति को अपनाने से विदेशों में भारत के प्रति नकारात्मक सोच को बढ़ावा मिलता है।

7.7.5 सत्ता का विकेन्द्रीकरण

गोखले का मानना है कि यदि सत्ता एक स्थान पर रहेगी तो उससे निरंकुशता को बढ़ावा मिलता है। इसके अलावा वे उपनिवेशवाद की संकीर्णता त्याग कर उदार होने की सलाह देते हैं ताकि स्थानीय स्वशासन में भागीदारी बढ़े, सामुदायिक सद्भाव बढ़े। उनका विश्वास था कि सुशासन कभी स्वशासन का स्थान नहीं ले सकता।

7.8 गोपाल कृष्ण गोखले का योगदान

भारतीय राजनीतिक चिन्तन में गोपाल कृष्ण गोखले के योगदान को हम कभी नहीं भूल सकते हैं। उन्होंने अपने विचारों एवं प्रयासों के माध्यम से भारतीय समाज को एक दिशा प्रदान की। उदारवाद के जनक के रूप में गोखले ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि भारतीयों की भलाई केवल ब्रिटिश छत्रछाया में ही हो सकती है। गोखले ने राजनीति में नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का आजीवन प्रयास किया। उन्होंने अपने प्रयासों से भारतीयों को स्वराज्य प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर किया। मोतीलाल नेहरू ने कहा,– ''गोपाल कृष्ण गोखले स्वराज्य के महान संदेशवाहक थे।'' गोखले के योगदान को निम्नलिखित शीर्षकों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है–

7.8.1 ब्रिटिश शासन के दोष स्पष्ट करना

गोखले ने ब्रिटिश शासन के साम्राज्यवादी रवैये और नौकरशाही के हाथों शक्ति के केन्द्रीकरण की प्रबल आलोचना की। गोखले ने जिस प्रकार ब्रिटिश शासन की कमियों को बताया उससे भारतीय जनता को ब्रिटिश सरकार का विरोध करने की प्रेरणा मिली। इस प्रकार गोखले ने भविष्य के जन आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार की।

7.8.2 भारतीयों को राजनीतिक शिक्षा

गोखले ने भारतीय जनता को व्यक्तिगत स्वाधीनता, प्रतिनिधियात्मक संस्थाओं की स्थापना, आर्थिक और सामाजिक सुधार व अन्त में स्वशासन की मांग के लिए प्रेरित किया। उन्होंने भारतीय जनता में राजनीतिक प्रश्नों के प्रति जागृति उत्पन्न की, जो आगे चलकर भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई।

7.8.3 भारतीय राष्ट्रीयता के जनक

गोखले ने देशवासियों का आह्वान किया कि, वे साम्प्रदायिकता, संकीर्ण प्रान्तीय सोच से ऊपर-उठकर सम्पूर्ण राष्ट्रीय हित को सर्वोपरि मानें और राष्ट्र की उन्नति एवं विकास के लिए हमेशा अपना सहयोग देने के लिए तत्पर रहें, ताकि स्वराज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो सके।

7.8.4 विकेन्द्रीकरण पर बल

गोखले शक्ति के केन्द्रीयकरण के विरोधी थे, क्योंकि इससे निरंकुशता को बढ़ावा मिलता है। अतः उन्होंने भारत में प्रत्येक स्तर पर तथा प्रशासनिक एवं आर्थिक दोनों ही क्षेत्रों में विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता को पूरी गम्भीरता के साथ स्वीकार किया। गोखले ने अपनी राजनीतिक वसीयत के रूप में जिन नियमों का उल्लेख किया, वे लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा के अनुरूप थे, जिसे स्वतन्त्रता के बाद 'पंचायती राज' की स्थापना के रूप में स्वीकार किया गया।

7.8.5 आर्थिक क्षेत्र में योगदान

गोखले ने केवल सामाजिक एवं राजनीति के क्षेत्र में ही अपना ध्यान केन्द्रीत नहीं किया, अपितु आर्थिक क्षेत्र में सुधारों की व्यापक योजना प्रस्तुत की, ताकि भारत को आर्थिक दरिद्रता से उभारा जा सके। इसके लिए उन्होंने सैन्य एवं प्रशासनिक क्षेत्र में किये जाने वाले अपव्यय पर अंकुश लगाने पर बल दिया, स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग को प्रोत्साहन, मुक्त व्यापार नीति का विरोध, कृषि के क्षेत्र में नवीन तकनीकी का प्रयोग, श्रम सुधार, अनुचित करों में कमी करना आदि पर बल दिया।

Jain (Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.8.6 राजनीति का आध्यात्मिकीकरण

राजनीतिक चिन्तन को गोखले की सबसे बड़ी और स्थाई देन राजनीति का आध्यात्मिकरण है। 'साध्य ही साधनों का औचित्य है।' उन्होंने सदैव सार्वजनिक नैतिकता के विकास व चरित्र निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया। सी. आई. चिन्तामणि के अनुसार,– ''गोखले बौद्धिक रूप में इतने ईमानदार थे कि पहले अपने आप से अच्छी तरह जाने बिना कभी कोई राय प्रकट नहीं करते थे।'' तिलक के अनुसार,– ''वे भारत के रत्न थे।''

7.8.7 भारत सेवक समाज की स्थापना

गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा अपने विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए 12 जून, 1905 को भारत सेवक समाज की स्थापना की। इस संस्था के अन्य उद्देश्य नवयुवकों को देश सेवा का प्रशिक्षण देना, राजनीतिक शिक्षा देना, सद्भावना का विकास, शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए सहायता देना, औद्योगिक विकास में सहायता तथा दलित वर्ग को शिक्षा देना आदि थे।

7.8.8 राजनीति में संवैधानिक आन्दोलन के प्रणेता

गोखले राजनीति में संवैधानिक आन्दोलन के पक्षधर थे। उन्होंने उग्र विचारों एवं अवैधानिक साधनों का हमेशा से विरोध किया। यही कारण है कि उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन किया लेकिन बहिष्कार की नीति का विरोध किया। गोखले के अनुसार संवैधानिक आन्दोलन का अभिप्राय एक ऐसे आन्दोलन से है, जिसमें संवैधानिक सभाओं की कार्रवाई द्वारा ही वांछित परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है। जिसके साधन के रूप में याचिकाएँ, प्रार्थना पत्र, प्रस्ताव पारित करना, विरोध स्वरूप कर न देना इत्यादि। इस तरह अहिंसात्मक साधनों को अपनाकर अंग्रेजों पर दबाव डालकर व्यापक रूप से जन–जागरण का कार्य भी किया।

7.9 सारांश

इस प्रकार हम सारांश रूप में कह सकते हैं कि गोखले भारतीय राजनीति के मंच पर एक ऐसे सितारे थे जिन्होंने राष्ट्रीय एकता, देशभक्ति, राष्ट्रीय स्वाभिमान, राष्ट्रीय गौरव, आत्मनिर्भरता पर बल दिया। डॉ. पट्टाभिसीतारम्या ने लिखा है कि– ''वास्तव में वे न तो दुर्बल हृदय उदारवादी थे और न ही छिपे हुए राजद्रोही। वे तो जनता और सरकार के बीच एक सच्चे मध्यस्थ थे।'' लोकमान्य तिलक के शब्दों में,– ''गोखले में अनेक गुण थे लेकिन उनमें प्रधान गुण यह था कि बहुत ही छोटी उम्र में उन्होंने नि:स्वार्थ और सम्पूर्ण समर्पण भाव से अपने आपको मातृ–भूमि की सेवा के लिए समर्पित कर दिया।''

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. त्रयम्बक रघुनाथ देवगिरिकर, ''गोपाल कृष्ण गोखले''
2. आर. पी. पराजये, ''गोपाल कृष्ण गोखले'', आर्य भूषण प्रेस, पूना
3. वी. एस. श्री निवास, ''लाइफ ऑफ गोपाल कृष्ण गोखले'', दी बैंगलोर प्रेस, बैंगलोर
4. टी. पी. पार्वते, ''गोपाल कृष्ण गोखले'', नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद
5. महात्मा गांधी, ''गोखले : माई पॉलिटिक्ल गुरु'', नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद
6. डॉ. पुरुषोत्तम नागर, ''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तक'' , राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
7. डॉ. ओम प्रकाश गाबा, ''राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा'', मयूर पेपरबैक्स, नोएडा
8. धर्मचन्द जैन, कैलाशचन्द्र दरोगा, ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक'', नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर
9. प्रो. के. एल. कमल, ''भारतीय राजनीतिक चिन्तक'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
10. सी. एम. सरस्वती, ''भारतीय राजनीतिक विचारक'', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
11. डॉ. मुख्त्यार अली, ''भारतीय राजनीति में कांग्रेस का उभरता स्वरूप एवं भूमिका'', राजनीति विज्ञान विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.11 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''गोखले मानवतावाद तथा प्रजातांत्रिक मूल्यों में गहरी आस्था रखते थे।'' इस कथन के आधार पर गोखले के राजनीतिक विचारों की समीक्षा कीजिए।
2. गोखले के राजनीतिक वसीयतनामा पर प्रकाश डालिए।
3. गोखले के प्रमुख आर्थिक विचारों का उल्लेख कीजिए।
4. भारतीय राजनीतिक चिन्तन में गोखले के योगदान को स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश शासन के प्रति गोखले का क्या दृष्टिकोण था ?
2. गोखले के 'राजनीतिक आध्यात्मिकीकरण' संबंधी विचारों को स्पष्ट कीजिए।
3. ''गोखले उदारवाद के जनक थे।'' सिद्ध कीजिए।
4. गोखले की स्वशासन की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
5. भारत सेवक समाज पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
6. गोखले ने विकेन्द्रीकरण का समर्थन किन-किन रूपों में किया है ?
7. गोखले ने स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन व बहिष्कार का विरोध क्यों किया ?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. गोपाल कृष्ण गोखले का जन्म कब और कहां हुआ ?
2. भारत सेवक समाज की स्थापना कब और किसने की ?
3. महात्मा गांधी अपना राजनीतिक गुरु किसे मानते थे ?
4. गोखले किस अधिवेशन में कांग्रेस के अध्यक्ष बने ?
5. गोखले ने राजनीतिक वसीयतनामा क्यों प्रस्तुत किया ?
6. गोखले किस प्रकार का स्वराज्य स्थापित करना चाहते थे ?
7. ''गोखले भारत के रत्न थे।'' यह मत किसका है ?
8. गोखले अपना राजनीतिक गुरु किसे मानते थे ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई - 8 बालगंगाधर तिलक

संरचना

8.1 उद्देश्य
8.2 प्रस्तावना
8.3 जीवन परिचय
8.4 तिलक के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ एवं उपलब्धियाँ
8.5 तिलक की रचनाएं
8.6 तिलक के राजनीतिक विचार
8.6.1 व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर तिलक के विचार
8.6.2 राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का समर्थन
8.6.3 राष्ट्रवाद की अवधारणा
8.6.4 उपयोगितावाद का खण्डन
8.6.5 स्वशासन की धारणा
8.6.6 स्वराज्य प्राप्ति के साधन
8.6.6.1 स्वदेशी
8.6.6.2 बहिष्कार
8.6.6.3 राष्ट्रीय शिक्षा
8.6.6.4 निष्क्रिय प्रतिरोध
8.7 लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का योगदान
8.7.1 भारतीय गौरव में विश्वास
8.7.2 एक आदर्श प्रेरक
8.7.3 राष्ट्रवाद व स्वराज्य के उन्नायक
8.7.4 राष्ट्रीय एकता एवं धार्मिक सहिष्णुता का समन्वय
8.7.5 एक महान प्रयोगकर्त्ता के रूप
8.7.6 सशक्त एवं निर्भीक पत्रकार के रूप में
8.7.7 लोक नीति के प्रणेता
8.7.8 कांग्रेस की व्यापक जनाधार प्रदान किया
8.7.9 लोकतांत्रिक आदर्शों के पूजारी
8.7.10 आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के जनक
8.8 सारांश
8.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
8.10 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य बालगंगाधर तिलक के राजनीतिक विचार तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन में उनके द्वारा दिये गये योगदान को जानना है कि उन्होंने अपनी विचारधारा तथा साधनों के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास को दिशा दी। उनके विचारों ने जनमानस को अत्यन्त प्रभावित किया। इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे —

- तिलक के स्वतन्त्रता संबंधी विचार,
- तिलक द्वारा प्रस्तुत स्वराज्य प्राप्ति के साधन,
- तिलक द्वारा राष्ट्रवाद की भावना के विकास के लिए भारतीय संस्कृति की विरासत तथा महापुरुषों का सहारा लेना, जो प्रयास किये वे भी जान सकेंगे,
- तिलक ने रानीतिक चेतना के विकास के लिए समाचार-पत्रों को जो माध्यम बनाया, उसे भी जान सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना

बाल गंगाधर तिलक को एक उग्र आदर्शवादी विचारक के रूप में पहचाना जाता है। उन्होंने राष्ट्रीय स्वाधीनता, राष्ट्रीय स्वाभिमान, राष्ट्रीय गौरव तथा स्वराज्य की स्थापना के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन न्यौछावर कर दिया। तिलक का प्रमुख नारा – **''स्वशासन मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा।''** ने अधिकांश भारतीयों को प्रभावित किया। तिलक वे पहले नेता थे, जिन्होंने राजनीतिक आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने के लिए धार्मिक परिवेश का प्रयोग किया। उनकी पहचान कांग्रेस के उग्रवादी नेता, कर्मठ और साहसी सेनानी के रूप में की जाती थी। वे जीवन के प्रत्येक पहलू पर खरे उतरे। उन्होंने आदर्श एवं यथार्थ दोनों का निर्वाह किया। स्वतन्त्रता, राष्ट्रवाद, स्वदेशी, स्वराज्य की प्राप्ति के लिए ब्रिटिश सरकार का हर तरीके से विरोध किया। **डॉ. आर. सी. मजूमदार** लिखते हैं कि,– **''अपने देश प्रेम तथा अथक् प्रयत्नों के परिणामस्वरूप बाल गंगाधर तिलक 'लोकमान्य' कहलाए जाने लगे और उनको एक देवता के समान पूजा जाने लगा। वे जहां भी जाते थे, उन्हें राजकीय सम्मान तथा स्वागत प्राप्त होता था।''** **श्रीमती एनीबीसेन्ट** ने तिलक के योगदान को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– **''इतिहास उन्हें एक ऐसे व्यक्ति के रूप में याद करेगा, जिन्होंने भारत को आजादी दिलाई।''**

8.3 जीवन परिचय

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक (1856-1920) का जन्म 23 जुलाई, 1856 ई. को महाराष्ट्र के रत्नागिरी नामक स्थान पर हुआ था। बाल्यावस्था से ही तिलक बड़े मेधावी और प्रखर बुद्धि के थे। 1879 में उन्होंने एल. एल. बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। कॉलेज काल से ही उनकी रूचि सार्वजनिक विषयों की ओर बढ़ती गई।

एक शिक्षाशास्त्री के रूप में उन्होंने पूना न्यू इंग्लिश स्कूल, दक्षिण शिक्षा समाज तथा फर्ग्युसन कॉलेज के व्यवस्थापक के रूप में ख्याति अर्जित की। अपने अथक् प्रयासों से महाराष्ट्र में शिक्षा क्रांति की अलख जगाई। 1889 में कांग्रेस में अपने प्रवेश के बाद से ही एक राजनीतिक नेता के रूप में कांग्रेस के कार्य-कलापों में तिलक ने उल्लेखनीय भूमिका का निर्वह किया। उदारवादियों की नीतियों से असन्तुष्ट तिलक ने अपनी शक्ति महाराष्ट्र में राष्ट्रीय आन्दोलन को सुसंगठित करने में लगाई। अपने 'केसरी' तथा 'मराठा' नामक दो पत्र तथा शिवाजी और गणपति उत्सवों द्वारा उन्होंने जनता में देश भक्ति की भावना फूंक दी तथा उनमें अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रवृति उत्पन्न की। 1897 में वे बम्बई विधान परिषद के सदस्य चुने गये, जहाँ उन्होंने बड़ी निडरता के साथ सरकारी रवैये की आलोचना की। महाराष्ट्र में अकाल तथा पूना में प्लेग के समय सरकार के उपेक्षित रवैये से क्षुब्ध होकर कुछ युवकों ने पूना के प्लेग कमिश्नर रेड की हत्या कर दी थी। इसके आरोप में तिलक को गिरफ्तार कर लिया गया और 18 माह की कठोर सजा दी गई।

1905 ई. के बंगभंग के बाद तिलक का राजनीतिक क्षेत्र सम्पूर्ण भारत हो गया। केसरी के माध्यम से उन्होंने स्वदेशी, बहिष्कार और स्वराज्य का सन्देश जन-जन तक फैलाया। बाल-पाल और लाल के उग्र विचारों के कारण 1907 के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस में फूट पड़ जाती है और कांग्रेस नरम और गरम दल के रूप में विभाजित हो जाती है। लेकिन ऐनीबीसेन्ट के प्रयासों से 1915 में पुन: इन दोनों गुटों में एकता स्थापित हो जाती है। 1908 ई. में तिलक पर राजद्रोह का आरोप लगाकर 6 वर्ष की कठोर सजा दी गई।

1914 में कारावास से मुक्त होने पर तिलक पुन: राष्ट्रीय संगठन के कार्य में लग गए। 1916-1920 तक उन्होंने होमरूल लीग का प्रचार करके कांग्रेस के कार्यों को और देश की स्वाधीनता संग्राम को आगे बढ़ाया। 1918 ई. में वे कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। 21 जुलाई, 1920 को बम्बई में आकस्मिक बीमारी से स्वाधीनता संग्राम के इस महान् योद्धा का स्वर्गवास हो गया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.4 तिलक के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ एवं उपलब्धियाँ

तिलक के जीवन की महत्त्पूर्ण घटनाएं एवं उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है —

- ❖ जन्म 12 जुलाई, 1856 ई. को महाराष्ट्र के रत्नागिरी नामक स्थान पर हुआ।
- ❖ सन् 1866 ई. में पूना के एंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल में भर्ती करवाया।
- ❖ 1871 ई. में पन्द्रह वर्ष की आयु में तापी बाई से विवाह हुआ।
- ❖ 1873 ई. को डेकन कॉलेज में प्रवेश।
- ❖ 1876 ई. को बी.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की।
- ❖ 1879 ई. को एल. एल. बी. परीक्षा उत्तीर्ण की।
- ❖ 1880 ई. में पूना न्यू इंग्लिश स्कूल की स्थापना।
- ❖ 1881 ई. पत्रकारिता का प्रारम्भ किया।
- ❖ 1884 ई. को डेकन एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना।
- ❖ 1885 ई. को फर्ग्यूसन कॉलेज की स्थापना।
- ❖ 1889 ई. कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि चुने गए।
- ❖ 1893 ई. ऑरायन का प्रकाशन।
- ❖ 1893 ई. गणपति उत्सव प्रारम्भ।
- ❖ 1895 ई. शिवाजी उत्सव प्रारम्भ।
- ❖ 1895 ई. बम्बई विधान परिषद् के सदस्य निर्वाचित।
- ❖ 1897 ई. को राजद्रोह के आरोप में 18 माह की कठोर सजा।
- ❖ 1903 ई. में द आर्कटिक होम इन द वेदाज प्रकाशित।
- ❖ 1905 ई. में बंग-भंग के विरोध में स्वदेशी व बहिष्कार का आन्दोलन और 'नेशनल पार्टी' की स्थापना।
- ❖ 1907 ई. में कांग्रेस का सूरत अधिवेशन, कांग्रेस गरम दल तथा नरम दल में विभाजित।
- ❖ 22 जुलाई,1908 ई. को 6 वर्ष के लिए काले पानी की सजा।
- ❖ 1915 ई. में 'गीता रहस्य' प्रकाशित।
- ❖ 1916 ई. में होमरूल लीग की स्थापना।
- ❖ 1916 ई. में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में भाग लिया।
- ❖ 1918 ई. को शिरोल केस के संबंध में ब्रिटेन गए।
- ❖ 1920 ई. में 'कांग्रेस प्रजातांत्रिक दल' की स्थापना।
- ❖ 21 जुलाई 1920 ई. को देहान्त बम्बई में।

8.5 तिलक की रचनाएँ

द ऑरायन (1893), द आर्कटिक होम इन द वेदाज (1903), गीता रहस्य (1915), वैदिक क्रोनोलोजी एण्ड वेदांग ज्योतिष।

8.6 तिलक के राजनीतिक विचार

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के जीवन का मुख्य उद्देश्य भारत को पराधीनता से मुक्ति दिलाना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया। उन पर प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन तथा पाश्चात्य राष्ट्रवाद और प्रजातांत्रिक विचारधारा का बहुत प्रभाव पड़ा। अत: उनके राजनीतिक चिन्तन में भारतीय दर्शन और पाश्चात्य दर्शन के विचारों का सुन्दर समन्वय देखा जा सकता है। उनकी स्वतन्त्रता का आधार वेदान्त का अद्वैतवाद है। स्वतन्त्रता ही उनके सम्पूर्ण दर्शन का प्राण है। तिलक धर्म एवं राजनीति को एक-दूसरे के पर्यायवाची मानते थे। उन्होंने कहा था हमारी स्वतन्त्रता, राज्य, धन सब कुछ तो लुट गया है, एक धर्म ही हमारे पास है, जिसके सहारे हम अब भी हमारा अस्तित्व बनाये हुए हैं। यदि यह भी नष्ट हो जाएगा तो हमारा राष्ट्रीय जीवन भी नहीं बचेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तिलक के राजनीतिक विचार निम्नलिखित हैं –

8.6.1 व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर तिलक के विचार

तिलक की दृष्टि में स्वतन्त्रता की धारणा वेदान्त का अद्वैतवादी दर्शन है। उनके अनुसार वेदान्त के अद्वैतवादी तत्वशास्त्र में प्राकृतिक अधिकारों की राजनीतिक धारणा निहित है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के बिना व्यक्ति का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास सम्भव नहीं है। तिलक व्यक्ति एवं राष्ट्र के विकास के लिए स्वतन्त्रता को परमावश्यक मानते थे। इसीलिए उन्होंने ब्रिटिश शासन का खुला विरोध किया।

तिलक स्वतन्त्रता को व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए एक प्राकृतिक व ईश्वर प्रदत्त शक्ति मानते थे। इसीलिए उन्होंने 1916 के कांग्रेस के लखनऊ सम्मेलन में घोषणा की कि,– ''स्वतन्तत्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूँगा।'' तिलक का तो यहां तक मानना था कि जो लोग इस लोक में परतन्त्र नागरिक के रूप में मरेंगे उनको मरणोपरान्त स्वर्ग में भी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होगी। लेकिन तिलक ने कभी भी अनियन्त्रित एवं असीमित स्वतन्त्रता का समर्थन नहीं किया। तिलक के अनुसार स्वतन्त्रता आध्यात्मिक अनुभूति है, अत: सर्जनात्मक कार्यों में लगने वाली शक्ति को ही स्वतन्त्रता कहते हैं।

8.6.2 राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का समर्थन

तिलक के अनुसार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की वास्तविक अभिव्यक्ति या प्राप्ति राष्ट्र की स्वतन्त्रता के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता है। तिलक के राष्ट्रों की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त पर वेदान्त के अद्वैतवादी दर्शन तथा पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का समन्वित प्रभाव पड़ा। उनके विचारों पर बर्क, मिल, मैजिनी तथा विल्सन के 'राष्ट्रीय स्वतन्त्रता' और 'राष्ट्रीय आत्मनिर्णय' के सिद्धान्त का प्रभाव पड़ा। विल्सन ने 'राष्ट्रीय आत्मनिर्णय' के सिद्धान्त के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि विश्व में प्रत्येक राष्ट्रीयता के लोगों को स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त हो और कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को परतन्त्र न बनाए। इस तरह तिलक ने इस सिद्धान्त को भारत में लागू करने की मांग की।

8.6.3 राष्ट्रवाद की अवधारणा

राष्ट्रवाद से अभिप्राय है, राष्ट्र की जनता में अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम, त्याग, बलिदान, समर्पण की भावना का होना। तिलक भी राष्ट्रवाद की अवधारणा के प्रबल समर्थक थे। उनका विश्वास था कि सच्ची और स्वस्थ राष्ट्रीयता केवल भारतीय संस्कृति और मूल्यों के आधार पर ही निर्मित होनी चाहिए। उन्होंने वेदों व गीता से आध्यात्मिक शक्ति तथा राष्ट्रीय उत्सव ग्रहण करने का संदेश दिया। राष्ट्रवाद की अवधारणा को आधार प्रदान करने के लिए तिलक ने 'मराठा' एवं 'केसरी' नामक दो समाचार पत्र निकाले तथा शिवाजी उत्सव व गणेश उत्सव क्रमश: 1893 व 1895 में शुरू किये। तिलक ने प्राचीन स्वस्थ परम्पराओं के आधार पर भारतीय राष्ट्रवाद की स्थापना करनी चाही। सच्ची राष्ट्रीयता का प्रचार करना है तो प्राचीन संस्कृति का पुनर्जागरण अनिवार्य है। प्राचीन काल में आदिम जातियों के मन में कबीले के प्रति जो भक्ति रहती थी, उसी का आधुनिक नाम राष्ट्रवाद है। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि तिलक का राष्ट्रवाद हिंसा, अत्याचार और हत्याओं पर आधारित नहीं था। उनका राष्ट्रवाद अन्तरराष्ट्रवाद का विरोधी नहीं था।

8.6.4 उपयोगितावाद का खण्डन

उपयोगितावाद बेन्थम द्वारा प्रतिपादित एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। जिस सिद्धान्त का आधार अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख है– मनुष्य एक सुखवादी प्राणी है जो सुखों की ओर तथा दु:खों से दूर भागता है। इस विचारधारा द्वारा राज्य का उद्देश्य व्यक्तियों के सुखों मे अभिवृद्धि करना है, लेकिन उपयोगितावाद के इन विचारों से तिलक सहमत नहीं है। तिलक राज्य को एक आध्यात्मिक संस्था मानते हैं। राज्य के उद्देश्यों में व्यक्ति का सांसारिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार का कल्याण करना है। तिलक उपयोगितावादी दर्शन को स्वार्थवाद को बढ़ावा देनेवाली विचारधारा मानते थे। उनके मत में राज्य एक यान्त्रिक संस्था नहीं है, जिसका उद्देश्य मात्र भौतिक सुख–सुविधाओं में वृद्धि करके अपने नागरिकों को यान्त्रिक सुख प्रदान करता है। राज्य का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति में व्यक्ति का सच्चा सहयोगी बनना है।

8.6.5 स्वशासन की धारणा

तिलक स्वशासन की अवधारणा को राष्ट्रवाद के लिए अनिवार्य मानते हैं। स्वशासन के बिना सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में विकास नहीं हो सकता। तिलक ने स्वराज्य का संदेश घर–घर तक पहुंचाने के लिए कार्यक्रम बनाया। इसके लिए होमरूल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लीग की स्थापना की। 1916 के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में तिलक ने कहा– ''स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे।''

तिलक ने स्वराज्य को नैतिक आवश्यकता के रूप में रखा अर्थात् स्वधर्म के अनुसार आचरण करने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो के रूप में विश्लेषित किया। उनका विचार था कि स्वराज्य के अभाव में औद्योगिक प्रगति, राष्ट्रीय शिक्षा एवं सामाजिक सुधार सम्भव नहीं हैं। 31 मई, 1916 को अहमद नगर में स्वराज्य पर दिये गये अपने भाषण में कहा 'स्वराज्य का अर्थ' सम्राट के शासन का उन्मूलन करना और किसी देशी रियासत का शासन कायम करना नहीं है। हमें मंदिर के देवताओं को नहीं हटाना है। केवल पुजारियों को बदलना है अर्थात् भारत के आन्तरिक मामलों का संचालन व प्रबन्ध भारतीयों के हाथों में हो। हम इंग्लैण्ड के राजा को बनाए रखने में विश्वास करते हैं। इससे स्पष्ट है कि तत्कालीन परिस्थितियों में ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य का अंतिम लक्ष्य उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था। तिलक ने न केवल स्वराज्य का नारा बल्कि तप, त्याग, समर्पण व निष्ठा के साथ जीवन के एक मात्र आदर्श की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित भी किया। तिलक को अंग्रेजों की न्यायप्रियता में अविश्वास था।

8.6.6 स्वराज्य प्राप्ति के साधन

बाल गंगाधर ने अपनी विचार धारा के अनुरूप स्वराज्य की अवधारणा को वास्तविकता का जामा पहनाने के लिए व्यापक साधन अपनाने पर बल दिया। उन्होंने संवैधानिक साधनों एवं उदारवादियों के विचारों को स्वराज्य के प्रतिकूल माना। 1905 के बंगाल विभाजन के बाद बाल-पाल-लाल ने उग्र साधनों के साथ पदार्पण किया। स्वराज्य प्राप्ति के लिए इस त्रिमूर्ति ने मुख्यत: चार साधनों का प्रभावशाली प्रयोग किया– 1. स्वदेशी, 2. बहिष्कार, 3. राष्ट्रीय शिक्षा, 4. निष्क्रिय प्रतिरोध।

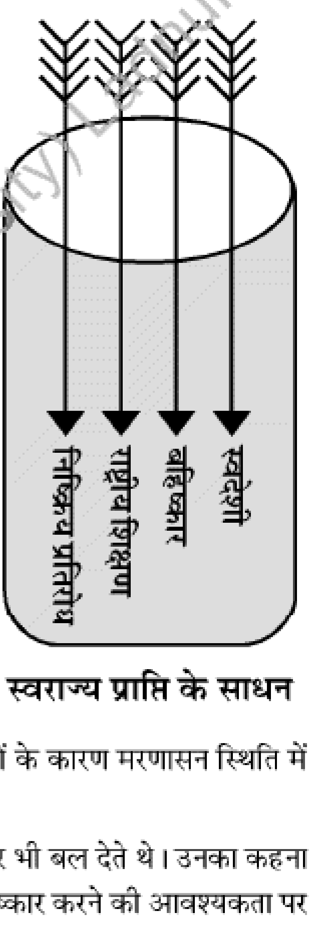

स्वराज्य प्राप्ति के साधन

8.6.6.1 स्वदेशी :– तिलक ने अपने समाचार पत्र 'केसरी' में लिखा था कि ''हमारा राष्ट्र एक वृक्ष की तरह है, जिसका मूल तना स्वराज्य है व स्वदेशी और बहिष्कार शाखाएँ हैं।'' तिलक के अनुसार स्वदेशी आत्मनिर्भरता स्वालम्बन का सूचक है। स्वदेशी आन्दोलन के लिए 1893 को गणपति उत्सव तथा 1895 को शिवाजी उत्सव आयोजित किये। स्वदेशी को जन आन्दोलन का रूप दिया। इससे देश के उद्योगों को प्रोत्साहन मिलेगा जो अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के कारण मरणासन स्थिति में पहुँच गए हैं। इस तरह स्वदेशी द्वारा तिलक भारत को आर्थिक दृष्टि से सबल बनाना चाहते थे।

8.6.6.2 बहिष्कार :– तिलक स्वेदशी की धारणा को गति प्रदान करने के लिए बहिष्कार पर भी बल देते थे। उनका कहना था कि स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग को प्रोत्साहन देने के लिए विदेशी वस्तुओं की होली जलाने एवं बहिष्कार करने की आवश्यकता पर बल देना चाहिए।

8.6.6.3 राष्ट्रीय शिक्षा :– तिलक के अनुसार वास्तविक शिक्षा वही है जो व्यक्ति को जीविकोपार्जन के योग्य बनाए। उसमें देश के सच्चे नागरिक गुणों का संचार करें और जो पूर्वजों का ज्ञान व अनुभव दे। राष्ट्रीय शिक्षा से ही राष्ट्रीयता का निर्माण हो सकेगा। तिलक ने धार्मिक शिक्षा पर भी बल दिया। तिलक के अनुसार धामिंक शिक्षा झगड़ों व पारम्परिक कलह को दूर करने का श्रेष्ठ मार्ग है। धार्मिक शिक्षा से भारतीयों में अनुशासन व अतीत के प्रति सम्मान के भाव का उदय होगा। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए।

तिलक ने अंग्रेजी की महत्ता को तो स्वीकार किया, लेकिन मातृभाषा को प्रधानता दी। वे शिक्षा को जन जागरण का सर्वोच्च साधन मानते थे। शिक्षा मनुष्य के अन्धकारमय जीवन को प्रकाशमय बनाने में सहायक होती है और शिक्षा के माध्यम से मानव को अपने अधिकारों, दायित्वों, स्वतन्त्रताओं आदि का आभास होता है।

8.6.6.4 निष्क्रिय प्रतिरोध :– तिलक के अनुसार निष्क्रिय प्रतिरोध विदेशी शासन के प्रति असहयोग का एक अहिंसात्मक शस्त्र है। इसका अर्थ है स्वदेशी शासन के संचालन में जनता द्वारा किसी भी प्रकार का सहयोग न देना। तिलक का दृढ़ विश्वास था कि यदि हम अंग्रेजों का असहयोग करना प्रारम्भ कर दें तो ये सरकार एक दिन भी नहीं चल सकती। हम अंग्रेजों को कर संग्रह करने में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सहयोग न करें, उनकी सेना में भर्ती न हो, उनके न्यायालय में मुकदमें न ले जाएँ, अपनी पंचायतें स्थापित करें तथा मद्यपान का त्याग करें आदि। तिलक का मत था कि यद्यपि निष्क्रिय प्रतिरोध एक शक्तिशाली राजनीतिक अस्त्र है, लेकिन जनता के सहयोग के बिना सम्भव नहीं है।

8.7 लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का योगदान

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का भारतीय समाज पर व्यापक प्रभाव रहा। उन्होंने अपने अथक प्रयासों क माध्यम से भारतीयों में राजनीतिक चेतना लाने का प्रयास किया। उनको योगदान को हम निम्नलिखित शीर्षकों से प्रस्तुत कर सकते हैं –

8.7.1 भारतीय गौरव में विश्वास

तिलक का भारतीय संस्कृति एवं धर्म के प्रति दृढ़ विश्वास था। उनका मत था कि भारतीय धर्म एवं संस्कृति विश्व की प्राचीनतम धर्म एवं संस्कृति में से एक है। इसने जो मानव सभ्यता एवं समाज को जो कुछ दिया है वे अपने आपमें महत्वपूर्ण है। इसीलिए भारत को विश्वगुरु कहा जाता है। वे धर्म को राष्ट्रवाद का प्राण मानते थे। इसलिए उनके दर्शन में धर्म एवं राजनीति एक दूसरे के पर्याय हैं। इस धारणा को उन्होंने अपने दो ग्रन्थों ऑरायन तथा वैदिक क्रोनोलोजी एण्ड वेदांग ज्योतिष में प्रतिपादित किया है।

8.7.2 एक आदर्श प्रेरक

तिलक का जीवन एक कर्मयोगी देशभक्त का जीवन है जो हम सबके लिए प्रेरणा स्रोत है। तिलक ने देश को निरन्तर 40 वर्षों तक सेवा की। उन्होंने देशहित एवं समाज हित के लिए निजी हितों की कभी भी परवाह नहीं की। अकाल व प्लेग में अपने स्वास्थ्य और जीवन की परवाह करते हुए उन्होंने देशवासियों की निरन्तर सेवा की। इस तरह वे महाराष्ट्र केसरी ही नहीं भारत केसरी थे। तिलक का जीवन त्याग, बलिदान, राष्ट्रभक्ति व समाज सेवा का आदर्श उदाहरण है, जो हमें निरन्तर प्रेरणा देता रहेगा।

8.7.3 राष्ट्रवाद व स्वराज्य के उन्नायक

तिलक भारतीय राष्ट्रवाद एवं स्वराज्य के उग्र समर्थक थे। उन्होंने यह भावना, उस समय अभिव्यक्त की जब भारतीय समाज गहरे अन्धकार में डूबा हुआ था। एक ऐसे सुधारक की आवश्यकता थी जो उस समाज में चेतना का विकास कर उन्हें एक मंच प्रदान कर दे। इस कार्य को वास्तविकता प्रदान करने का कार्य तिलक ने किया। उन्होंने राष्ट्रवादी भावनाओं के प्रचार प्रसार के लिए धार्मिक उत्सवों का सहारा लिया। उन्होंने युवाओं को महापुरुषों के आदर्श पर चलने की सलाह दी। राष्ट्रवाद के साथ ही साथ स्वराज्य का भी प्रबल समर्थन किया उनका तर्क था कि "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है मैं इसे लेकर रहूंगा।" उनकी दृष्टि में स्वराज्य के बिना राजनीतिक एवं धार्मिक सहिष्णुता के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि अंग्रेजों ने धार्मिक कटुता का जो वातावरण पैदा किया है वह हमारे लिए विनाशकारी है और हमें तब तक पराधीता से मुक्ति नहीं मिल सकती जब तक विकसित नहीं होगी। 1905 में अंग्रजों ने अपनी फूट डालो एवं राज करों की नीति को क्रियान्वित देने के लिए बंगाल विभाजन किया जिसका तिलक ने विरोध किया और भारतीयों को ऐसे कदमों से सचेत रहने की सलाह दी। उन्होंने 1916 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में लीग और कांग्रेस के बीच मतभेद समाप्त करने का सफल प्रयास किया। इस प्रकार तिलक ने हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष किया।

8.7.4 एक महान् प्रयोगकर्त्ता के रूप

तिलक ने राष्ट्रीय उन्नयन के लिए अनेक प्रयोग किये। उनके प्रयोगों की एक महत्वपूर्ण बात ये थी कि ये सभी संवैधानिक एवं शान्तिपूर्ण थे। हिन्दूओं को संगठित करने तथा राष्ट्रप्रेम, त्याग व बलिदान की भावना का विकास के लिए उन्होंने 'गणपति उत्सव' तथा 'शिवाजी उत्सव' का आयोजन करने की परम्परा डाली। देश भक्ति एवं समाज सेवा के लिए पूर्ण रूप से समर्पित कार्यकर्त्ता तैयार करने के लिए 'समर्थ विद्यालय' की स्थापना की और संवैधानिक सुधार लाने के लिए होमरूल आन्दोलन चलाया।

8.7.5 सशक्त एवं निर्भीक पत्रकार के रूप में

तिलक एक सशक्त एवं निर्भीक पत्रकार थे। उन्होंने एक शिक्षक एवं पत्रकार के रूप में अपना सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ किया। पत्रकारिता का उद्देश्य ब्रिटिश सरकार की गलत नीतियों से जनता को अवगत करवाना तथा सरकार के समक्ष जनता की समस्याओं को उजागर करना होता है। तिलक ने 1881 में सर्वप्रथम एक पत्रकार के रूप में 'मराठा' का सम्पादन किया। इसके पश्चात् 'केसरी' के सम्पादन का भी कार्य अपने हाथ में लिया। इस प्रकार तिलक ने प्रेस की स्वतन्त्रता को आधार मानकर चेतना लाने का प्रयास किया।

8.7.6 लोकनीति के प्रणेता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आधुनिक भारत के इतिहास में सर्वप्रथम लोकमान्य तिलक ने राजनीति को लोकनीति में परिवर्तित करने का कार्य किया। उनके पूर्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़े राजनेता अभिजात्य वर्गों के लिए कार्य कर रहे थे। तिलक ने आम जनता के हित की बात सोचकर उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जोड़ने का प्रयास। इस तरह तिलक के प्रयासों से ही साधारण जनता में देश भक्ति की भावना का विकास हो सका।

8.7.7 कांग्रेस को व्यापक जनाधार प्रदान किया

कांग्रेस को वैचारिक स्वरूप एवं जनाधार देने में तिलक का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। जब तिलक ने 1889 के कांग्रेस के पूना अधिवेशन में भाग लिया तब उन्होंने देखा कि कांग्रेस के साथ केवल समाज के उच्च वर्ग के लोग ही जुड़े हुए हैं। इस समय तक कांग्रेस का रूख अंग्रेजों के प्रति उदार था। तिलक ने कांग्रेस को एक ऐसी जन प्रतिनिधि संस्था बनाने का प्रयास किया, जो सरकार की गलत नीतियों एवं दमनकारी नीति का विरोध करे। तिलक के अथक प्रयासों से ही कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन में सदस्यों की संख्या बढ़ती गई। कांग्रेस के मंच से स्वदेशी, बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा के प्रस्ताव पारित किये। इस तरह अनेक चुनौतियों के बावजूद तिलक कांग्रेस को भारतीयों के हितों की संरक्षक संस्था बनाने में सफल रहे।

8.7.8 लोकतांत्रिक आदर्शों के पुजारी

तिलक का लोकतंत्र के महान् सिद्धान्तों स्वतन्त्रता, समानता एवं बन्धुत्व में दृढ़ आस्था थी। तिलक इन सिद्धान्तों के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहे। उनके इस तर्क की पुष्टि इस आधार पर होती है कि उन्होंने स्वतन्त्रता, स्वराज्य एवं स्वशासन प्राप्ति हेतु संवैधानिक एवं शांतिपूर्ण साधनों को अपनाया।

8.7.9 आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के जनक

महात्मा गांधी ने तिलक को 'नवभारत का निर्माता' कहा है। जवाहरलाल नेहरू ने उनको 'भारतीय राष्ट्रवाद का पिता' कहा है। उन्होंने राष्ट्रवाद का आधार प्राचीन भारतीय धर्मग्रन्थों, वीरनायकों, देवी-देवताओं तथा वैदिक धर्म को बनाया। उन्होंने राष्ट्रवाद की भावना का विकास हेतु 'गणपति उत्सव' एवं 'शिवाजी उत्सव' को सार्वजनिक उत्सवों के रूप में मनाना प्रारम्भ कियाी। तिलक राष्ट्रवाद को एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा मानते थे। बंगभंग विरोधी आन्दोलन को तिलक ने राष्ट्रीय स्वरुप प्रदान किया। स्वदेशी आन्दोलन को केवल आर्थिक आन्दोलन के साथ नहीं जोड़ा बल्कि इसके माध्यम से वे लोगों में स्वदेश का प्यार, त्याग, आत्मनिर्भरता की भावना भरना चाहते थे। सारांश में, यही कहा जा सकता है कि तिलक भारत के एक महान् राष्ट्रवादी तथा प्रखर राजनीतिक चिन्तक थे।

8.8 सारांश

सारांश में यही कहा जा सकता है कि तिलक भारत के एक महान् राष्ट्रवादी तथा प्रखर राजनीतिक चिन्तक थे। इनके अथक प्रयासों से भारत के स्वतन्त्रता संग्राम को गति मिली। राष्ट्रवाद की भावना को प्रोत्साहन न देने के लिए उनके द्वारा 1893 में गणपति उत्सव तथा 1895 में शिवाजी उत्सव का आयोजन आम जनता को इसके साथ जोड़ने का प्रयास किया।

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामगोपाल, ''जीवन-परिचय लोकमान्य तिलक,'' एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई
2. डी.वी. तहमानकर, ''लोकमान्य तिलक : फादर ऑफ इण्डियन अनरेस्ट एण्ड दी मेकर ऑफ मॉर्डन इण्डिया,'' जान मरे लन्दन
3. प्रधान तथा भागवत, ''लोकमान्य तिलक, ए बायोग्राफी,'' जैको पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई
4. बाल गंगाधर तिलक, ''श्रीमद् भगवद गीता रहस्य,'' तिलक ब्रदर्स, पूना
5. डी.पी. करमकर, ''बालगंगाधर तिलक:ए स्टडी,'' पोपुलर बुक डिपो, बम्बई

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. राधाकृष्णन, ''दी हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ,'' अनविन बुक्स, लन्दन
7. टी.वी. पार्वते, ''बाल गंगाधर तिलक,'' नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद
8. डॉ. पुरुषोत्तम नागर, ''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन,'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
9. धर्मचन्द जैन, कैलाश चन्द्र दरोगा, ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक,'' नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर
10. डॉ. ए. अवस्थी, डॉ. आर. के. अवस्थी, ''भारतीय राजनीतिक चिन्तक,'' रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर
11. डॉ. मुख्त्यार अली, ''भारतीय राजनीति में कांग्रेस का उभरता स्वरूप एवं भूमिका'' राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

8.10 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोकमान्य तिलक का जीवन परिचय बताते हुए, राजनीतिक विचारों पर प्रकाश डालिए।
2. तिलक की भारतीय राजनीतिक चिन्तन को क्या देन है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के संबंध में तिलक के विचार बताओ।
2. तिलक द्वारा प्रस्तुत राष्ट्रवाद की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
3. स्वराज्य प्राप्ति के साधनों पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।
4. आत्म-निर्णय का सिद्धान्त क्या है ?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्वराज्य की स्थापना के लिए तिलक ने कौनसा मूल मंत्र दिया ?
2. तिलक ने कौन-कौन से समाचार पत्रों का प्रकाशन किया ?
3. राष्ट्रवाद को प्रोत्साहन देने हेतु तिलक ने किन उत्सवों की शुरूआत की ?
4. तिलक की प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए।
5. आत्म-निर्णय के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया।
6. नरम दल व गरम दल की उत्पत्ति कब हुई ?
7. ''स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे।'' यह घोषणा तिलक ने कब और कहाँ की ?
8. उपयोगितावाद का प्रतिपादक कौन है ?
9. उपयोगितावाद का मूल आधार क्या है ?
10. तिलक की स्वतन्त्रता का आधार क्या है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई - 9 अरविन्द घोष

संरचना

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 जीवन-परिचय

9.4 अरविन्द के राजनीतिक चिन्तन के आध्यात्मिक आधार

9.5 अरविन्द का राजनीतिक चिन्तन

- 9.5.1 राष्ट्रवाद की संकल्पना
- 9.5.2 स्वराज्य एवं राष्ट्रीय विकास
- 9.5.3 निष्क्रिय प्रतिरोध
- 9.5.4 व्यक्तिगत और राज्य के संबंध
- 9.5.5 राजनीतिक एवं सामाजिक सुधार
- 9.5.6 धर्म और राजनीति
- 9.5.7 राज्य के आंगिक सिद्धान्त की आलोचना
- 9.5.8 राज्य के कार्य संबंधी विचार
- 9.5.9 मानवीय स्वतन्त्रता पर बल
- 9.5.10 लोकतन्त्र संबंधी विचार
- 9.5.11 समाजवाद संबंधी विचार
- 9.5.12 विश्व संगठन की स्थापना की आवश्यकता पर बल

9.6 सारांश

9.7 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

9.8 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.1 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य अरविन्द घोष के राजनीतिक विचारों को जानना कि उन्होंने किस प्रकार राजनीतिक चिन्तन के आध्यात्मिक आधार प्रस्तुत करते हुए राष्ट्रवाद की भावना को बल प्रदान किया। इसके अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे —

- अरविन्द घोष की स्वराज्य की अवधारणा,
- धर्म और राजनीति के पारस्परिक संबंध किस प्रकार के होने चाहिए,
- अरविन्द के राज्य संबंधी विचार,
- लोकतंत्र एवं समाजवाद के सन्दर्भ में अरविन्द के दृष्टिकोण को भी जान सकेंगे।

9.2 प्रस्तावना

आधुनिक भारत के महापुरुषों में महर्षि अरविन्द (अरविन्द घोष) का नाम उल्लेखनीय है। उन्हें भारत की आत्मा का जो गहन ज्ञान था। रोमा रोलाँ ने अरविन्द को 'भारतीय विचारकों का सम्राट एवं एशिया तथा यूरोप की प्रतिभा का समन्वय' कहकर पुकारा है, तो डॉ. फ्रेडरिक स्पजलबर्ग ने उन्हें ''हमारी इस वसुन्धरा का मार्ग दर्शक नक्षत्र और हमारे युग का पैगम्बर कहा है। वर्तमान् भारत के राजनीतिक

विचार क्षेत्र में अरविन्द एक महान राजनीतिक चिन्तक थे। उनकी पहचान उग्रवादी चिन्तक के रूप में की जाती है। उन्होंने उदारवादी एवं कांग्रेस के स्वतन्त्रता प्राप्ति के साधनों का विरोध किया। उनका मानना था कि स्वतन्त्रता तो हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है उसका हनन अंग्रेज किसी भी स्थिति में पर नहीं कर सकते। उनके राजनीतिक विचारों का मूल आधार आध्यात्मिक आस्था है। इसलिए उन्होंने राजनीति के आध्यात्मिकीकरण पर बल दिया। राष्ट्रीय आन्दोलन को गूढ़ और आध्यात्मिक महत्त्व देने, उसके सामने पूर्ण स्वराज्य का प्रेरणाप्रद आदर्श रखने, भारत के विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा के तेज में नवजीवन अनुप्राणित करने, स्वतन्त्रता के आदर्श की प्राप्ति के लिए एक राजनीतिक योजना तैयार करने तथा सारे आन्दोलन को अन्तरराष्ट्रीय और मानव-एकता के आदर्श के मुख्य प्रसंग में रखने का सर्वाधिक श्रेय उन्हीं को है।

9.3 जीवन-परिचय

श्री अरविन्द घोष का जन्म 15 अगस्त, 1872 को एक अत्यन्त सम्पन्न परिवार में हुआ था। उनके पिता डॉ. कृष्णधन घोष एक सफल चिकित्सक थे। अरविन्द की प्रारम्भिक शिक्षा लौरेटो कान्वेट स्कूल दार्जीलिंग में हुई। उनके पिता यह चाहते थे कि उन्हें पाश्चात्य शिक्षा, संस्कृति एवं साहित्य के बारे में गहरी जानकारी हो। अत: अरविन्द भी अपने भाईयों के साथ इंग्लैण्ड शिक्षा प्राप्त करने जाते हैं। उनके पिता उन्हें आई.सी.एस की परीक्षा दिलाकर भारतीय प्रशासनिक सेवा के साथ जोड़ना चाहते थे। लेकिन इंग्लैण्ड में रहकर ही अरविन्द के मन में राष्ट्रवाद की भावना का विकास हो चुका था। जब 1902 को वे भारत आये तब वे गुप्त आतंकवादी संस्थाओं के सम्पर्क में आये। इससे पूर्व भी वे राष्ट्रवाद से प्रेरित लेख गुप्त नाम से लिखते रहे। उस समय भारत की राजनीतिक स्थितियों में भी व्यापक बदलाव आ गया था। 1905 के बंगाल विभाजन ने घोष को प्रभावित किया और वे राजनीति में सक्रिय हो गये। इस दौरान उनका मूल लक्ष्य कांग्रेस को उदारवादी नेतृत्व से मुक्त। 1908 में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया, यद्यपि वे आरोपों से मुक्त हो गये। लेकिन बन्दी जीवन में उनमें एक महान् परिवर्तन हुआ। वे आध्यात्मवाद की ओर पहले ही झुके हुए थे पर कारागार में उनका आध्यात्कि दृष्टिकोण और अधिक प्रखर होकर उभरा। 1910 में वे सक्रिय राजनीति से अलग होकर पांडिचेरी चले गये और वहां जाकर आध्यात्मिकता के संबंध में गहन चिन्तन और मनन किया। पांडिचेरी में वे 40 वर्ष तक योग साधना और साहित्यिक क्रिया-कलापों में संलग्न रहें। पांडिचेरी में ही 5 दिसम्बर, 1950 को इस महापुरुष का देहान्त हो गया।

9.4 अरविन्द के राजनीतिक चिन्तन को आध्यात्मिक आधार

अरविन्द घोष के राजनीतिक चिन्तन और कार्य-कलापों को हम तब तक भली-भाँति नहीं समझ सकते जब तक इस आधार को लेकर न चलें कि उनके लिए राजनीति और आध्यात्मिकता के बीच एक घनिष्ठ संबंध था। इसी कारण उनकी राजनीति किसी भी अन्य राष्ट्रवादी नेता की राजनीति से भिन्न रही। उनके राजनीतिक चिन्तन का सुदृढ़ आधार उनके गहरे आध्यात्मिक विश्वासों में निहित था और उन्हीं में से उस चिन्तन का विकास हुआ। उनके लिए राजनीति वैयक्तिक, राष्ट्रीय एवं वैश्विक आध्यात्मिक विकास के सिद्धान्त का विस्तार ही थी।

अरविन्द के लिए भारत की स्वाधीनता का अर्थ कोरी राजनीतिक स्वतन्त्रता नहीं था, वरन् यह था कि भारत का लक्ष्य मानव जाति को आध्यात्मिक नेतृत्व प्रदान करना है। आध्यात्मिकता अरविन्द के दर्शन की नींव है। इसमें व्यक्ति को ससीमता की स्थिति से बाहर निकल कर अपनी अन्तरात्मा को अपना मार्गदर्शक बनाना पड़ता है। अपने अहं को तिलांजलि देनी पड़ती है और परमेश्वर के चरणों में समर्पित करना पड़ता है और आत्मा की पुकार के अनुसार काम करना है। अरविन्द ने सार्वभौमिक भ्रातृत्व के लक्ष्य का प्रचार किया। उन्होंने योग का एक रास्ता दिखाया जिससे कोई भी साधक आत्मसाक्षात्कार कर सकता था।

श्री अरविन्द इस बात के बारे में भी स्पष्ट हैं कि हमारे सामाजिक चिन्तन का प्रारम्भ इस बात से है कि मानव कोई यन्त्र नहीं है, बल्कि वह एक बनता हुआ देवता है। इसी मान्यता के आधार पर व्यक्ति स्वयं भी आध्यात्मिकता में आगे बढ़ सकता है और समाज को आगे बढ़ा सकता है। जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष भी अरविन्द को मान्य है।

श्री अरविन्द घोष का विचार था कि भारत और यूरोप दोनों ही अति की ओर चले हैं। उनको आशा थी कि भारतीय आध्यात्मवाद और यूरोपीय लौकिकवाद तथा भौतिकवाद के बीच समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.5 अरविन्द का राजनीतिक चिन्तन

अरविन्द के मन मस्तिष्क में राजनीतिक विचारों का उदय इंग्लैण्ड में रहते हुए ही हो गया था, इसलिए उन्होंने भारतीय प्रशासनिक सेवा में न जाकर भारत की राजनीति में सक्रिय होने का निश्चय किया। यद्यपि श्री अरविन्द 1905-1910 की कालावधि तक भारतीय राजनीति में सक्रिय रहे लेकिन इससे पूर्व एवं पांडिचेरी आश्रम में रहकर जो विचार प्रदान किये वे राष्ट्रीय आन्दोलन को गति देने वाले थे। अपने अल्पावधि की सक्रिय राजनीति के काल में उनकी पहचान एक उग्र विचार धारा वाल विचारक के रूप में की जा रही थी। अरविन्द के राजनीतिक चिन्तन में राजनीति का आध्यात्मिकरण, राष्ट्रवाद, मानवीय एकता आदि की छाया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अरविन्द के प्रमुख राजनीतिक विचार निम्नलिखित हैं-

9.5.1 राष्ट्रवाद की संकल्पना

श्री अरविन्द के अनुसार राष्ट्रवाद केवल एक आन्दोलन तक सीमित नहीं है, वह आस्था का विषय है, वह मानव का धर्म है। डॉ. कर्ण सिंह के शब्दों में, ''श्री अरविन्द ने यह निर्दिष्ट किया कि भारत केवल भौगोलिक सत्ता नहीं है, यह केवल भौतिक भू-भाग नहीं है, केवल बौद्धिक संकल्पना भी नहीं है। भारत माता स्वयं साक्षात् भगवती है जो शताब्दियों से बड़े प्यार-दुलार से अपनी संतान का पालन-पोषण करती आयी है। परन्तु आज वह विदेशी शासन से पदाक्रांत होकर कराह रही है, उसका स्वाभिमान टुकड़े-टुकड़े हो चुका है, उसका गौरव धूल में मिल गया है।'' भारत माता के पाँवों में पड़ी बेड़ियों को काटना, उसकी संतान का परम कर्त्तव्य था। श्री अरविन्द के राष्ट्रवाद का यही मूल मंत्र है।

9.5.2 स्वराज्य एवं राष्ट्रीय विकास

श्री अरविन्द की 'स्वराज' की मांग राष्ट्रवाद का स्वाभाविक अंग है, क्योंकि राष्ट्र विदेशी सत्ता के आधिपत्य में रहकर अपना विकास नहीं कर सकता है। उनका कहना है कि-

- ❖ पराधीन राष्ट्र अव्यवस्थित हो जाता है और इसी से वह अपनी शक्ति भी खो देता है।
- ❖ उसमें रहने वाले व्यक्ति की स्वतन्त्रता भी जाती रहती है क्योंकि विदेशी सरकार किसी पराधीन देश में स्वाधीन चिन्तन करने वाले नागरिकों को पसन्द नहीं करती।
- ❖ केवल व्यक्तिगत स्वाधीनता के लिए ही राष्ट्र की स्वाधोनता आवश्यक नहीं है, अपितु राष्ट्र के पूर्ण विकास के लिए भी उसकी आवश्यकता है। इसीलिए विदेशी राज्य न केवल अप्राकृतिक है वरन् राष्ट्र के लिए घातक है। राष्ट्र की स्वतन्त्रता राष्ट्र के विकास की पहली शर्त है।

स्वराज्य की प्राप्ति तथा ब्रिटिश शासन के संबंध में उदारवादियों के दृष्टिकोण की अरविन्द घोष ने कड़े शब्दों में निन्दा करते हुए स्वाधीनता के तीन प्रकार बताए- 1. राष्ट्रीय स्वाधीनता, 2. प्रशासन की स्वाधीनता, 3. व्यक्ति की स्वाधीनता। इनके बिना न तो व्यक्ति का विकास हो सकता है और न ही राष्ट्र का विकास हो सकता है।

9.5.3 निष्क्रिय प्रतिरोध

अरविन्द ने उदारवादियों की 'प्रार्थना, याचिका तथा विरोध' की संवैधानिक पद्धति को एकदम ठुकरा दिया। अरविन्द ने देशवासियों को कांग्रेस के नरम नेतृत्व को अस्वीकार करके निष्क्रिय प्रतिरोध की पद्धति का अनुसरण करने का आह्वान किया। इस पद्धति में श्री अरविन्द ने निम्नलिखित बातों को सम्मिलित किया-

- ❖ स्वदेशी का प्रसार और विदेशी माल का बहिष्कार।
- ❖ राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार, राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना।
- ❖ सरकारी अदालतों और न्यायालयों का बहिष्कार।
- ❖ जनता द्वारा सरकार से कोई सहयोग न करना एवं
- ❖ सामाजिक बहिष्कार जिसका कि उन लोगों के प्रति दण्ड के रूपमें सहयोग किया जाए तो निष्क्रिय प्रतिरोध के विपरीत आचरण करते हुए सरकार को सहयोग दें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इन साधनों को अपनाने से भारत की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकेगा, देशवासी आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बन सकेंगे तथा भारतीय संस्कृति का गौरव बढ़ाया जा सकेगा।

9.5.4 व्यक्ति और राज्य के संबंध

अरविन्द का कहना था कि व्यक्ति केवल सामाजिक इकाई ही नहीं है वरन् अपने आप में एक आत्मा और प्राणी है जिसका अपना अस्तित्व है। उसे एक ऐसा प्राणी मानना चाहिए जिसको अपने व्यक्तिगत सत्य एवं नियमों के साथ ही साथ सामूहिक अस्तित्व के मध्य और नियमों में अपना स्वाभाविक और निश्चित भाग पूरा करना है। अरविन्द ने व्यक्ति को राज्य का दास मानने से इन्कार करते हुए कहा कि यह सर्वथा अनुचित है कि राज्य व्यक्ति पर अपना पूर्ण नियन्त्रण या स्वामित्व जताएं क्योंकि व्यक्ति की आत्मा के विकास और उसके स्वाभाविक उत्थान के लिए अनिवार्य है कि उसे स्वतन्त्रता मिले। उन्होंने राज्य की सर्वोच्चता को चुनौती दी। इस प्रकार व्यक्ति अपने स्तर पर सामूहिक प्रयास के माध्यम से अपना विकास कर सकता है और राज्य को चाहिए कि वह व्यक्ति के कार्यों में कम से कम हस्तक्षेप करें।

9.5.5 राजनीतिक एवं सामाजिक सुधार

श्री अरविन्द का कहना था कि सामाजिक सुधारों से पहले राजनैतिक सुधार होने चाहिए। जब तक राष्ट्र के हाथ में अपनी राजनीतिक बागडोर नहीं होगी तक तक उनकी सामाजिक स्थिति नहीं सुधरेगी और न ही बौद्धिक रूप से उसमे जान पड़ेगी। उन्होंने इस संबंध में इटली के अत्यन्त प्रभावशाली विद्वान मेजिनी का उल्लेख किया जिन्होंने अपनी सारी साहित्य प्रतिभा को पलीता लगाकर राजनीति में यह कहकर कूदना पसन्द किया कि इटली का कला और साहित्य हमारी मजारों से जाना जायेगा। यदि समाज सुधार का मतलब पश्चिमी तरह के समाजों की नकल करना मात्र हो तो उससे कुछ बनने वाला नहीं है। किसी भी तरह का सामाजिक सुधार हो वह राजनैतिक स्वतन्त्रता के बिना प्रभावी होने वाला नहीं है।

9.5.6 धर्म और राजनीति

श्री अरविन्द अपने में इस बारे में बिल्कुल स्पष्ट है कि धर्म को राजनीति से अलग न रखें। भारत जैसे धर्म–प्रधान देश में यदि किसी बात पर जनमत आकृष्ट करना हो तो इस बात में धर्म का तत्त्व अवश्य डालना पड़ेगा। इसलिए धर्म और राजनीति को अलग–अलग नहीं किया जा सकता है। शासक का सदा से ही यह उत्तरदायित्व रहा है कि वह सभी धार्मिक अनुष्ठानों का संरक्षण करें। परन्तु यह संरक्षण केवल स्वाधीन देश में ही सम्भव है। आखिर जीवन का अंतिम ध्येय मोक्ष है लेकिन उसकी प्राप्ति पराधीनता के वातावरण में नहीं की जा सकती क्योंकि इसमें व्यक्ति की अन्य स्वतन्त्रताओं के साथ–साथ धामिंक स्वतन्त्रता पर भी प्रतिबन्ध होता है। अरविन्द ने तत्कालीन परिस्थितियों के आधार पर माना कि किसी भी भारतीय की आत्मा स्वतन्त्र नहीं है, क्योंकि राजनैतिक स्वाधीनता के बिना आत्मिक स्वतंत्रता की कल्पना कैसे की जा सकती है। पूर्ण विकास के लिए व्यक्ति को अपनी सोच न केवल अपने परिवार एवं समाज तक सीमित रखनी होती है, बल्कि देश और विश्व की समस्याएँ उसके सामने होती है। परन्तु जब हम परतन्त्र होंगे तो विश्व की संस्थाओं में कैसे भाग ले सकते हैं। यदि कोई राष्ट्र राजनैतिक रूप से मृत है तो उसका कोई महत्त्व नहीं हैं।

9.5.7 राज्य के आंगिक सिद्धान्त की आलोचना

श्री अरविन्द ने राज्य के आंगिक सिद्धान्त की आलोचना की है। वे केवल समाज के संदर्भ में आंगिक समतुलना प्रस्तुत करते हैं। वे राज्य को अंग सदृश न मानकर केवल एक यन्त्र मानते है–ऐसा यन्त्र जिसके द्वारा नियन्त्रित शिक्षा भी राज्य के इसी लक्षण का प्रतीक है। श्री अरविन्द ने यह व्यक्त किया था कि हमारे सामान्य विकास के लिए राज्य एक सुविधा है। यह एक भद्दी सुविधा है किन्तु अपने आप में साध्य कदापि नहीं बनने देना चाहिए। श्री अरविन्द के चिन्तन में जहाँ राज्य केवल यन्त्रमात्र है और समाज सम्पूर्ण जीवन न होकर केवल जीवन का एक पक्ष है वहां सर्वाधिक महत्त्व सत्य, आत्मा एवं ईश्वर का है जो सर्वव्यापी है।

9.5.8 राज्य के कार्य संबंधी विचार

श्री अरविन्द राज्य के कार्य क्षेत्र को सीमित करने के पक्षधर हैं। उनके अभिमत में राज्य का कार्य केवल बाधाओं को दूर करना और अन्याय को रोकना आदि है। स्पेन्सर तथा श्री अरविन्द के विचारों में काफी समानता देखने को मिलती है। दोनों का मत है कि राज्य को व्यक्ति के मामलों में कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए, लेकिन अरविन्द आर्थिक व्यक्तिवाद के समर्थक नहीं थे। वे ग्रीन

की भांति व्यक्ति के सर्वांगीण विकास तथा आत्म-विकास के पक्षपाती थे। वे समाजवादी दर्शन के सर्वहितकारी आर्थिक कार्यक्रमों से प्रभावित थे। उनका तर्क था कि व्यक्ति का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है तथा राज्य का उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक आदर्शों की प्राप्ति है।

9.5.9 मानवीय स्वतन्त्रता पर बल

श्री अरविन्द ने मानवीय स्वतंत्रता को मानव द्वारा स्वीकृत कानूनों का पालन माना है। पर्यावरण से मानव का तारतम्य तभी स्थापित हो सकता है, जबकि प्रत्येक प्राणी अपना स्वयं का नैसर्गिक विकास प्राप्त कर सके। तब तक यह स्थिति प्राप्त न हो तब तक कानून द्वारा स्थापित बाह्य नियन्त्रणों को मानना उचित है। नियन्त्रण स्थापित कने वाले कानून स्थायी नहीं माने जाने चाहिए। वे केवल उद्देश्य-प्राप्ति तक ही स्वीकृत किये जाए तत्पश्चात् सच्चे कानून की स्थापना जो कि अन्तरात्मा द्वारा होगी, बाह्य बाध्यकारी कानून का स्वत: स्थान ले लेगी। वास्तविक स्वतन्त्रता स्वनियन्त्रित आन्तरिक स्वतन्त्रता है। यह बाह्य लौकिक स्वतन्त्रता से भी अधिक वास्तविक है। आन्तरिक स्वतन्त्रता एवं आत्मिक स्वाधीनता जीवन का सार है।

9.5.10 लोकतन्त्र संबंधी विचार

श्री अरविन्द ने लोकतंत्र की धारणा को आर्थिक एवं राजनीतिक व्यक्तिवाद का प्रतिफल माना है। व्यक्ति के आर्थिक एवं राजनीतिक हितों की सुरक्षा लोकतंत्र का उद्देश्य रहा है। किन्तु लोकतांत्रिक धारणा ने असमानता, सम्भ्रांत वर्ग का शासन, वर्ग भेद तथा शोषण को जन्म दिया। श्री अरविन्द ने लोकतंत्र को सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। वे लोकतंत्र को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का पोषक नहीं मानते। व्यक्ति का समष्टिकरण उसके व्यक्तित्व को दबा देता है। जनता के शासन के नाम पर कतिपय धनी एवं कुलीन लोगों का ही शासन स्थापित हुआ है। प्राकृतिक स्वतन्त्रता एवं समानता केवल नारेबाजी तक ही सीमित रह गयी है। लोकतांत्रिक संरचना के पार्श्व में एक शक्तिशाली अल्पसंख्यक नेतृत्व पनपा है जो पूरे शासन पर छाया रहता है। आधुनिक प्रतिनिधि मूलक लोकतंत्र एक मिथ्या है। विधायकों या सांसदों द्वारा जनप्रतिनिधित्व का आदर्श भरना, दंभपूर्ण है। जनप्रतिनिधित्व के स्थान पर कुछ व्यावसायिक हित बन कर रह गया है। बहुसंख्यक दल का शासन व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा न कर उसे स्वार्थपूर्ति का साधन बनाता रहा है। वे लोकतंत्र के इन दोषों के निवारण के लिए पुर्ण सामूहिक जीवन को जागृत करना चाहते हैं। उन्हें आधुनिक लोकतंत्र की केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति दोषयुक्त लगती है उनके अनुसार राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण की स्थापना कर लोकतंत्र के दोषों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

9.5.11 समाजवाद संबंधी विचार

श्री अरविन्द समाजवाद को व्यक्तिवाद, राष्ट्रवाद तथा विश्व बन्धुत्व का प्रतीक मानते हैं। शोषित श्रमिकों को नवजीवन प्रदान करने में समाजवाद का जो महत्त्व रहा है उसे श्री अरविन्द ने सराहा है लेकिन वे समाजवादी विचारधारा के प्रमुख सिद्धान्त राजनीतिक शक्ति के केन्द्रीकरण के पक्ष में नहीं थे। वे समाजवाद के सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष के संमर्थक थे। वे सामाजिक एवं राजनीतिक क्रियाकलापों को पृथक-पृथक रखने के पक्षपाती है।

9.5.12 राष्ट्रीय आत्म-निर्णय के सिद्धान्त का समर्थन

साम्राज्यवाद के प्रबल विरोधी होने के कारण श्री अरविन्द ने प्रथम विश्व युद्ध के समय प्रचारित राष्ट्रीय आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को पूर्ण समर्थन प्रदान किया। उनके अनुसार राष्ट्रीय आत्मनिर्णय का नियम स्वतन्त्रता एवं कानून का नया कीर्तिमान स्थापित करता है। यह एक उच्चादर्श का प्रतीक है। इस विचार से प्रेरणा प्राप्त कर अन्तरराष्ट्रीय एकता की स्थापना बलवती हो सकती है, किन्तु श्री अरविन्द ने आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को युद्ध एवं क्रांति का पूर्ण शमनकर्त्ता नहीं माना।

9.5.13 विश्व संगठन की स्थापना की आवश्यकता पर बल

राज्यों की पारस्परिक कलह एवं नियन्त्रण प्राप्त करने की नीति के कारण युद्ध एवं साम्राज्यवाद को निर्मूल नहीं किया जा सकता। इसका अन्त करने के लिए विश्व-संगठन की स्थापना आवश्यक है। दो स्तरों पर विश्व-संगठन की स्थापना सम्भव है। पहले स्तर पर स्वतन्त्र राष्ट्रों को स्वयं संगठित होने की आवश्यकता है। इसके पश्चात् संगठित राष्ट्रों को पारस्परिक मतभेद व स्वार्थ मिटाकर अन्तर राष्ट्रीय दृष्टिकोण विकसित करना है। इन दोनों स्तरों को पार करके ही एक सच्चा सार्वभौम धर्म स्थापित हो सकता है, जिससे जो मानवीय एकता का आदर्श स्थापित किया जा सके। राष्ट्रवाद मानवीय एकता की एक माध्यमिक इकाई है। राष्ट्रवाद से ही विश्व-एकता की ओर अग्रसर होता है। केवल राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक संगठनों की स्थापना मात्र से विश्व एकता अनुभूत नहीं होती। राष्ट्र संघ और संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना मात्र से मानवीय धर्म विकसित नहीं होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9.6 सारांश

नि:सन्देह, अरविन्द भारत के महान् राजनीतिक विचारकों में से एक थे। वे एक महान योगी, सन्त, मानवता के प्रमी और दार्शनिक बौद्धिक थे। वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने पूर्ण स्वराज्य की मांग की। उन्होंने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद में एक जान फूंकी और मातृभूमि के देवी स्वरूप को प्रस्तुत किया। विदेशी शासन की पूर्ण मुक्ति के आदर्श का प्रतिपादन करके श्री अरविन्द ने राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान की। इसके अलावा मानवीय एकता पर बल देकर विश्व शांति, बन्धुत्व एवं आपसी सहयोग पर बल दिया जो आगे चलकर संयुक्त राष्ट्र संघ स्थापना में निर्णायक साबित हुई।

9.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शिशिट कुमार मित्र, ''श्री अरविन्द एण्ड इण्डियन फ्रीडम'' श्री अरविन्द लायब्रेरी, मद्रास।
2. श्री निवास आयंगर, ''श्री अरविन्दो'' आर्य पब्लिशिंग हाऊस, कलकत्ता।
3. श्री अरविन्दो, ''दी डोक्ट्रीन ऑफ पेसिव रेजिस्टेन्स'' पांडिचेरी।
4. श्री अरविन्द, ''उत्तरपाड़ा रूपीय'' आर्य पब्लिशिंग हाऊस, कलकत्ता।
5. करणसिंह, ''प्रोफेट ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म'' भारतीय विद्या भवन, बम्बई।
6. हरिदास मुखर्जी तथा उमा मुखर्जी, ''श्री अरविन्दों एण्ड दी न्यू थॉट इन इण्डियन पॉलिटिक्स'' फर्मा के.एल. मुखोपाध्याय, कलकत्ता।
7. वी.पी.वर्मा, ''दी पॉलिटिकल फिलोसोफी ऑफ श्री अरविन्दो'' एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई।
8. ओम प्रकाश गाबा, ''राजनीति चिंतन की रूपरेखा'' मयूर पेपर बेक्स, नोएडा।
9. सी.एम. सरस्वती, ''भारतीय राजनीतिक विचारक'' मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।
10. डॉ. पुरुषोत्तम नागर, ''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
11. डॉ. ए. अवस्थी तथा डॉ. आर.के.अवस्थी, ''भारतीय राजनीतिक चिन्तन'' रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।

9.8 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्री अरविन्द घोष के राजनीतिक विचारों को स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अरविन्द घोष के राजनीतिक चिन्तन के आध्यात्मिक आधार पर प्रकाश डालिए।
2. अरविन्द की राष्ट्रवाद की संकल्पना का उल्लेख कीजिए।
3. स्वराज्य प्राप्ति के लिए अरविन्द कौन से साधन अपनाने पर बल देते हैं।
4. अरविन्द के लोकतंत्र संबंधी विचार बताओ ?
5. मानवीय एकता पर अरविन्द घोष की क्या राय है ?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अरविन्द घोष का जन्म कब हुआ ?
2. राजनीति का आध्यात्मिकरण करने का श्रेय किसे जाता है ?
3. अरविन्द घोष ने अपने जीवन का अन्तिम समय कहाँ व्यतीत किया ?
4. अरविन्द का औपचारिक रूप, भारतीय राजनीति में प्रवेश कब हुआ ?
5. घोष ने कितनी स्वाधीनताओं का उल्लेख किया है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई - 10 महात्मा गांधी

संरचना

10.1 उद्देश्य
10.2 प्रस्तावना
10.3 जीवन परिचय
10.4 गांधीजी के आदर्श राज्य संबंधी विचार
    10.4.1 शासन का लोकतांत्रिक स्वरूप
    10.4.2 सत्ता का विकेन्द्रीकरण
    10.4.3 आर्थिक क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण
    10.4.4 अहिंसात्मक समाज
    10.4.5 नागरिक अधिकारों पर आधारित
    10.4.6 निजी सम्पत्ति का अस्तित्व
    10.4.7 श्रम की अनिवार्यता
    10.4.8 वर्ण व्यवस्था
    10.4.9 अस्पृश्यता का अन्त
    10.4.10 धर्म निरपेक्ष समाज
    10.4.11 गौ–वध निषेध
    10.4.12 मद्य–निषेध
    10.4.13 नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा
    10.4.14 पुलिस व सेना संबंधी विचार
    10.4.15 पंचायत पर आधारित न्याय व्यवस्था
    10.4.16 लोककल्याणकारी राज्य
    10.4.17 राजनीति के आध्यात्मिकरण पर बल
10.5 महात्मा गांधी के आर्थिक विचार
    10.5.1 पूंजीवाद का विरोध
    10.5.2 औद्योगिकीकरण का विरोध
    10.5.3 कुटीर उद्योगों का समर्थन
    10.5.4 अपरिग्रह का सिद्धान्त
    10.5.5 वर्ग सहयोग पर बल
    10.5.6 संरक्षण या ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त
10.6 महात्मा गांधी के सामाजिक विचार
    10.6.1 अस्पृश्यता का निवारण
    10.6.2 वर्ण व्यवस्था का समर्थन
    10.6.3 नारी सुधार
    10.6.4 बुनियादी शिक्षा
    10.6.5 अहिंसा पर आधारित समाज

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.7 सारांश

10.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

10.9 अभ्यास प्रश्नावली

10.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य महात्मा गाँधी के उन विचारों को जानना, जो सत्य, अहिंसा, परमोधर्म पर आधारित, जिनको अपनाने से न केवल राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था में सुधार किया जा सकता है बल्कि सम्पूर्ण मानवता का कल्याण सम्भव हो सकता है बल्कि सम्पूर्ण मानवता का कल्याण सम्भव हो सकता है। आज के दौर में जिस प्रकार की विकट परिस्थितियाँ हमारे सम्मुख है, उनके समाधान करने में गांधीवादी दर्शन एवं विचारधारा कारगर सिद्ध हो सकती है। इस अध्याय के पश्चात् आप जान सकेंगे —

- गांधी के रामराज्य संबंधी अवधारणा, जो लोकतंत्र, स्वतन्त्रता, विकेन्द्रीकरण तथा लोककल्याण की बुनियाद पर टिकी हुई है,
- गांधीजी के आर्थिक विचार जो कुटीर उद्योग तथा अपरिग्रह के सिद्धान्त पर बल देता तथा ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को अपनाकर अर्थव्यवस्था को गति देने की बात करता, उसको अपने समाज में विद्यमान आर्थिक असमानता को भी दूर किया जा सकता है,
- महात्मा गांधी के सामाजिक विचार जो छुआछूत तथा कुरीतियों के विरोध पर आधारित हैं, जिसका मुख्य लक्ष्य समता पर आधारित समाज-व्यवस्था का सुत्रपात करना है, को भी जान सकेंगे।

10.2 प्रस्तावना

मोहनदास करमचन्द गांधी का नाम विश्व के उन महानतम् व्यक्तियों में आता है, जिन्होंने सत्य एवं अहिंसा के आधार पर राजनैतिक चेतना लाने का प्रयास किया। यद्यपि स्वयं महात्मा गाँधी का कहना था कि उनका उद्देश्य किसी नए वाद या विचारधारा को जन्म देना नहीं है। लेकिन भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों एवं धार्मिक व ऐतिहासिक घटनाओं को आधार मानकर उन्होंने भारतीय समाज को इन पर चलने की प्रेरणा प्रदान की। महात्मा गाँधी के विचार आज भी अपनी प्रासंगिकता लिए हुए हैं। इसलिए जहाँ कहीं भी आज जिस गति से हमारा युवा और समाज गर्त की ओर जा रहा है, उसे सही दिशा प्रदान करने में गांधीजी के मूल्य सार्थक सिद्ध हो सकते हैं। इनसे व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं चारित्रिक निर्माण में सहायता मिलती है और एक आदर्श समाज की स्थापना संभव हो सकती है।

महात्मा गांधी ने 1915 के पश्चात् राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया और सर्वप्रथम चम्पारण आन्दोलन का नेतृत्व किया। ये एक ऐसा समय था, जिसमें अंग्रेजों के प्रति जनाक्रोश अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था और उग्रवादी एवं क्रांतिकारी आन्दोलन जारी थे।

जिनका गाँधीजी ने विरोध किया और सत्य और अहिंसा पर आधारित आन्दोलन करने की प्रेरणा प्रदान की। वे कांग्रेस के साथ आजीवन जुड़े रहे और उसके कार्यक्रमों एवं संगठन को वैचारिक आधार प्रदान किया। बैलगांव अधिवेशन में प्रथम एवं अंतिम बार कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। अंग्रेजों के विरूद्ध जन-जागृति लाने के लिए उन्होंने असहयोग आन्दोलन (1920), सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930), भारत छोड़ो आन्दोलन (1942) आदि का नेतृत्व किया और ब्रिटिश हुकूमत को हिला कर रख दिया।

कांग्रेस के सम्बन्ध में महात्मा गांधी का मानना था कि कांग्रेस को देश की राजनीतिक गतिविधियों में भाग नहीं लेना चाहिए, उसे केवल समाज सुधार के क्षेत्र में कार्य करना चाहिए। लेकिन पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल आदि अनेक कांग्रेसजन इससे सहमत नहीं थे।

गांधी ने आर्थिक विचारों को स्पष्ट करते हुए यह कहा कि समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता को दूर करना होगा। इसके लिए उनहोंने ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का समर्थन किया और कहा कि जमींदारों और पूंजीपतियों के पास आवश्यकता से अधिक धन है तो उन्हें चाहिए कि वे इन्हें समाज को प्रदान कर दें और इन पर उन लोगों का स्वामित्व स्थापित किया जाए जो निर्धन हैं।

सामाजिक क्षेत्र में गांधीजी ने समाज में व्याप्त बुराईयों के प्रति आग्रह किया और छुआ-छूत, दलितों के साथ अन्याय, जातीय बन्धन आदि को भारतीय समाज की एकता के लिए विध्वंसक माना। यद्यपि गांधीजी वर्ग-व्यवस्था के औचित्य को स्वीकार करते थे लेकिन वर्ग का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आधार कर्म के स्थान पर जन्म होने के कारण जाति हावी हो गई थी। समाज के एक बड़े वर्ग, जिसके लिए गांधीजी ने 'हरिजन' शब्द काम में लिया है, उसकी स्थिति भी चिंताजनक थी, इससे समाज खण्डित नजर आ रहा था। अत: उन्होंने अपने विचारों एवं राजनीतिक भाषणों में सुधार लाने की प्रेरणा दी।

इसलिए आजादी के बाद भारत में जितने भी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में प्रयास और सुधार किए गये, उनमें उनके विचारों की स्पष्ट छाया दिखाई पड़ती है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी गाँधीजी के आदर्शों को सहर्ष स्वीकारा जाता है। यह धारणा विश्व-व्यापी बन गई है कि हिंसा से किसी भी समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता।

15 जून, 2007 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने महत्त्वपूर्ण निर्णय लेते हुए प्रति वर्ष 2 अक्टूबर को विश्व अहिंसा दिवस मनाने का फैसला लिया है, जो इस बात का प्रमाण है कि वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में गांधीजी के विचारों एवं दर्शन का व्यापक महत्त्व है।

10.3 जीवन परिचय

गांधीजी का पूरा नाम मोहनदास करमचन्द गांधी था। उनका जन्म 2 अक्टूबर, 1869 ई. को गुजरात के काठियावाड़ क्षेत्र के पोरबंदर नामक स्थान पर हुआ। उनकी मृत्यु 30 जनवरी, 1948 ई. को नई दिल्ली में नाथुराम गोडसे द्वारा गोली चलाने से हो गई थी। गाँधीजी का विवाह कस्तुरबाई से हुआ था। गांधीजी के पिता श्री करमचन्द गांधी काठियावाड़ की छोटी रियासत के दीवान थे। पारिवारिक परम्पराओं के अनुरूप गांधीजी का जीवन पवित्र और सादगी भरा था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा पोरबंदर में ही पूर्ण हुई, परन्तु बाद में वे वकालत करने इंग्लैण्ड चले गये, इग्लैण्ड जाते समय जैन साधु बेचरजी से तीन प्रतिज्ञा लेते हैं कि मैं मदिरा, पराई औरत और मांस को नहीं छुऊंगा। इनका पालन गांधीजी ने अंतिम समय तक किया।

इग्लैण्ड में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वकालत करने दक्षिणी अफ्रीका चले जाते हैं। वहां की राजनीतिक स्थिति का गांधीजी पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। क्योंकि रंगभेद के नाम पर मूल अफ्रीकी लोगों का शोषण किया जा रहा था। अत: उन्होंने औपनिवेशक साम्राज्यवादी एवं रंगभेदी सरकार के विरूद्ध अभियान चलाया था और यहीं से गांधीजी का राजनीतिक क्षेत्र में विधिवत प्रवेश हो जाता है। यहां पर वे सत्य एवं अहिंसा के आधार पर अंग्रेजों के प्रति असहयोग की नीति का अनुसरण करते हैं और अफ्रीकी समाज को रंगभेद से मुक्त होने के लिए प्रेरित करते हैं। 1915 में गांधीजी पुन: भारत लौटते हैं और पाते हैं कि भारत में उग्रवादी व क्रांतिकारी गतिविधियाँ अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी हैं। कांग्रेस के द्वारा भी अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन किया जा रहा था लेकिन इन सभी प्रयासों से महात्मा गांधी सहमत नहीं थे। वे भारत आकर कांग्रेस के साथ जुड़ते हैं और उसे एक वैचारिक आधार प्रदान करते हैं। गांधीजी को महात्मा रविन्द्रनाथ टैगोर ने तथा राष्ट्रपिता सुभाषचन्द्र बोस ने कहा।

1920 में गांधीजी ने असहयोग आंदोलन चलाया। जिसका प्रभाव सम्पूर्ण भारतवर्ष में देखा गया। 1924 के बैलगांव अधिवेशन में गाँधीजी प्रथम एवं अंतिम बार कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन चलाया और उसमे 'करो या मरो' का नारा दिया। जब 1946 में माऊण्ट बेटन योजना प्रस्तुत हुई, जिसमें यद्यपि भारत की स्वतन्त्रता का प्रावधान था लेकिन, विभाजित भारत की स्वतन्त्रता का, जिसका गांधीजी ने विरोध किया और कहा- ''भारत का विभाजन मेरी लाश पर होगा।'' आजादी के पश्चात् जिस गति से सम्पूर्ण भारत साम्प्रदायिकता की आग में जल रहा था। उससे गांधीजी बहुत चिंतित हुए, इसीलिए अंत में उन्हें खण्डित भारत स्वीकार करना पड़ा।

10.4 गांधीजी के राज्य सम्बन्धी विचार

गांधीजी का यह विचार यथार्थ एवं व्यावहारिकता पर आधारित है वे रामराज्य का सपना संजोये हुए थे। इसलिए उन्होंने दो प्रकार के आदर्श राज्य की बात कही।

- ❖ पूर्ण आदर्श राज्य - जो राज्य विहिन व्यवस्था पर आधारित थे।
- ❖ अर्द्ध आदर्श राज्य - जो अहिंसात्मक समाज व्यवस्था पर आधारित थे।

गांधीजी का मानना था कि जब नागरिकों में अपने कर्त्तव्यों और दायित्वों का उचित बोध हो जाएगा तो राज्य की कोई आवश्यकता नहीं होगी। गांधीजी का यह विचार मार्क्सवाद से प्रेरित लगता है और प्लेटों के आदर्श राज्य की बू आती हैं लेकिन व्यावहारिकता को आधार मानकर गांधीजी पूर्ण आदर्श अवस्था को स्वीकार नहीं करते हैं। उनका कहना था कि समाज में कुछ ऐसे असामाजिक तत्त्व होते हैं जो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्यवस्था के साथ खिलवाड़ करने से नहीं चूकते। अत: राज्य के पास बाध्यकारी शक्तियाँ होनी चाहिए। गांधीजी का आदर्श राज्य लोकतांत्रिक मूल्यों एवं सत्ता के विकेन्द्रीकरण की अवधारणा के साथ जुड़ा हुआ है। इसका प्रमुख उद्देश्य शासन में जनता की अधिक से अधिक भागीदारी सुनिश्चित करना।

गांधीजी को रामराज्य जनहित एवं कल्याण पर आधारित राम राज्य को स्पष्ट निर्देश दिये गये हैं कि वह इस क्षेत्र में प्रतिबद्ध रहें। ताकि राज्य का उद्देश्य पूर्ण हो सके और राज्य जन इच्छाओं और आकांक्षाओं पर खरा उतर सकें।

महात्मा गांधी ने अपने राजनीतिक विचारों मे आदर्श राज्य पर गम्भीरतापूर्वक विचार प्रस्तुत किये हैं। वे एक रामराज्य की कल्पना करते हैं। उनका मानना है कि राज्य का अस्तित्व जनहित के लिए है तो उसे इस उद्देश्य पर खरा उतरना चाहिए। गांधीजी के आदर्श राज्य के दो रूप देखने को मिलते हैं। प्रथम पूर्ण आदर्श राज्य, जो राज्य विहीन समाज की कल्पना करता है, उनके इस विचार में मार्क्सवाद की छाया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

द्वितीय, अर्द्ध आदर्श राज्य जो अहिंसात्मक समाज व्यवस्था पर आधारित है। उनका यह विचार यथार्थ व व्यवहार पर आधारित है। क्योंकि समाज में कुछ ऐसे असामाजिक तत्त्व होते हैं जो व्यवस्था की धज्जियां उड़ाने में पीछे नहीं रहते। अत: परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए राज्य के अस्तित्व को स्वीकार किया और राज्य को लोककल्याण पर बल देने को निर्देश दिये।

गांधीजी का आदर्श राज्य लोकतांत्रिक मूल्यों एवं विकेन्द्रीकरण की अवधारणा पर आधारित है। उनका कहना था कि लोकतंत्र शासन का सर्वोच्च रूप होता है। लेकिन विकेन्द्रीकरण के बिना इसकी सफलता संदिग्ध है। जब तक शासन में स्थानीय लोगों की अधिक से अधिक सहभागिता सुनिश्चित नहीं होगी, तब तक आदर्श राज्य का सपना साकार नहीं हो सकता।

गांधीजी के राज्य संबंधी विचारों को भारतीय संविधान एवं राजनीतिक व्यवस्था में सम्मानजनक स्थान दिया गया है। जैसे अनु. 17 अस्पृश्यता निवारण, अनु. 12 से 35 मौलिक अधिकार, अनु. 29 धर्म निरपेक्ष समाज, अनु. 36 से 51 लोक कल्याणकारी स्वरूप, अनु.42 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण आदि। इनके अलावा आर्थिक असमानता दूर करने के प्रयास, पुलिस प्रबंध में सुधार, शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने के प्रयास, 73 व 74वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायत राज व स्थानीय निकाय को सुदृढ़ बनाना आदि।

गांधीजी धर्म और राजनीति के अटूट रिश्तों पर विचार रखते हुए मानते हैं धर्म और राजनीति एक सिक्के के दो पहलू हैं। लेकिन राजनीतिक स्वार्थ के लिए धर्म का प्रयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि इससे समाज विघटन को प्रोत्साहन मिलेगा। इस प्रकार गांधीजी के आदर्श राज्य संबंधी विचार निम्नलिखित हैं–

10.4.1 शासन का लोकतांत्रिक स्वरूप

महात्मा गांधी के आदर्श राज्य का प्रथम आधार लोकतंत्र पर आधारित संस्था है, क्योंकि लोकतंत्र में शासन की अंतिम शक्ति जनता में निहित होने के कारण सरकार तानाशाह नहीं बन सकती और जनहितों की अनदेखी नहीं कर सकती। अत: आदर्श राज्य लोकतांत्रिक मान्यताओं एवं मूल्यों पर आधारित होना चाहिए।

10.4.2 सत्ता का विकेन्द्रीकरण

केवल लोकतंत्र की स्थापना करने से सरकार का स्वरूप लोकतांत्रिक नहीं हो सकता। इसके लिए सत्ता के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता होती है, ताकि लोकतंत्र की संस्थाओं का जाल गांव-गांव और ढ़ाणी-ढ़ाणी फैलाया जा सके और लोकतंत्र में स्थानीय लोगों की भागीदारी अधिक से अधिक सुनिश्चित् की जा सके। इसीलिए महात्मा गांधी ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के औचित्य को स्वीकार किया। गांधीजी के इन्हीं सपनों को साकार करने के लिए 1957 में बलवन्त राय मेहता समिति का गठन किया गया। इसी की सिफारिश के आधार पर 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर नगर में पंचायती राज संस्थाओं का श्रीगणेश किया गया। इन संस्थाओं को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। इसी कड़ी में 73 व 74 वां संविधान संशोधन किया गया तथा पंचायती राजसंस्थाओं को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से 2004 में केन्द्रीय पंचायती राज मंत्रालय की स्थापना की गई।

10.4.3 आर्थिक क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण

गांधीजी ने राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ आर्थिक विकेन्द्रीकरण पर भी बल दिया है। उनका कहना था कि आर्थिक समानता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता या समानता अधूरी है। अत: समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता को दूर करना होगा। इसके लिए ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का अनुसरण करने की आवश्यकता पर बल दिया। वे कहते थे कि मैं मशीनों का विरोधी नहीं हूँ, लेकिन इनके नाम पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बेरोजगारी को नहीं बढ़ाया जाये। भारत को आर्थिक बदहाली से मुक्ति दिलाने के लिए एकमात्र तरीका है–गांवों को आत्मनिर्भर बनाना। इसके लिए घरेलू एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देना होगा। स्वदेशी के प्रति जागृति लानी होगी। वे उद्योगों में श्रमिकों की भागीदारी बढ़ाना चाहते थे। गांधीजी के इसी सपने को साकार करने के लिए 42वें संविधान संशोधन द्वारा अनु. 43(क) जोड़ा गया।

10.4.4 अहिंसात्मक समाज

गांधीजी अपने आदर्श राज्य को अहिंसात्मक समाज के रूप में स्वीकार करते हैं। गांधीजी के इस आदर्श राज्य में राज्य का अस्तित्व रहेगा। राज्य के पास कुछ बाध्यकारी शक्तियाँ होंगी। जैसे- पुलिस, सेना, जेल, न्यायालय आदि। जिसके माध्यम से वह मनुष्य की असंवैधानिक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगायेगा, फिर भी राज्य इस दृष्टि से अहिंसात्मक होगा, जिसमें सत्ता का प्रयोग जनता के उत्पीड़न व अत्याचार के लिए नहीं, वरन् कल्याण व हित के लिए होगा।

10.4.5 नागरिक अधिकारों पर आधारित

अधिकारों का संबंध व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के साथ जुड़ा हुआ होता है। इसलिए मनुष्य हमेशा से ही अधिकार प्राप्ति के लिए प्रयासरत् रहा है। गांधीजी अपने आदर्श राज्य को नागरिक अधिकारों पर आधारित बनाना चाहते थे। उनके इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान के भाग 3 अनु. 12 से 35 में इनका उल्लेख किया गया है।

10.4.6 निजी सम्पत्ति का अस्तित्व

गांधीजी आर्थिक विकेन्द्रीकरण की बात करते हैं, जिसमें ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के माध्यम से आर्थिक असमानता दूर करने के समर्थक हैं, लेकिन वे कार्लमार्क्स की भांति सम्पत्ति के अस्तित्व को नहीं नकारते हैं। उनका कहना था कि व्यक्ति के पास सम्पत्ति इतनी होनी चाहिए, जिससे उनकी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। सम्पत्ति संकलन करने की प्रवृत्ति अनेक बुराईयों को जन्म देती है।

10.4.7 श्रम की अनिवार्यता

महात्मा गांधी ने अपने आदर्श राज्य के संबंध में यह बताया है कि राज्य में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए श्रम करना जरूरी होगा ताकि वे स्वयं अपना भरण पोषण भली–भांति कर सके। साथ में समाज भी आत्मनिर्भरता की दिशा में अग्रसर हो सके। वे मानसिक श्रम के साथ–साथ शारीरिक श्रम पर अधिक बल देते थे और कहा करते थे कि जो व्यक्ति केवल मानसिक श्रम करते हैं, उन्हें प्रतिदिन कुछ समय शारीरिक श्रम के लिए निकालना चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि समाज में काम से दिल चुराने की प्रवृत्ति पर अंकुश लग सकेगा।

10.4.8 वर्ण व्यवस्था

गांधीजी के अनुसार वर्ण व्यवस्था हमारी सभ्यता की पहचान है, जिसका उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था का सफल संचालन करना है। इसका आधार धर्म होना चाहिए, कार्य नहीं, लेकिन दोषपूर्ण व्यवस्थाओं के कारण वर्ण–व्यवस्था पर जातीय बन्धन हावी हो गये हैं, जिसके कारण समाज में अनेक प्रकार की बुराइयों को बल मिला है। सभ्य कहलाने वाला समाज असभ्यता का प्रतीक बनकर रह गया है। अत: आदर्श राज्य में पूर्ण व्यवस्था पर बल दिया जाना चाहिए।

10.4.9 अस्पृश्यता का अन्तर

वर्ण व्यवस्था का आधार कार्य हो जाने के कारण भारतीय समाज में जातिवाद का घिनौना खेल शुरु हो गया था। सम्पूर्ण समाज खण्डित नजर आ रहा था। शुद्र वर्ण के लोगों के साथ छुआ–छूत जैसी अमानवीय प्रवृत्तियां पनपती जा रही थी। जिसके परिणामस्वरूप समाज का एक बड़ा वर्ग अभाव भरी जिन्दगी व्यतीत कर रहा था। अत: गांधीजी ने अपने आदर्श राज्य में छुआछूत निषेध की घोषणा की और इसके संबंध में अनेक लेख अपने समाचार पत्र 'हरिजन' में प्रकाशित किये। इन्हीं विचारों को आधार मानकर भारतीय संविधान के अनु. 17 में अस्पृश्यता निवारण की विधिवत् घोषणा की गई। इसके अलावा अस्पृश्यता से ग्रस्त लोगों के लिए गांधीजी ने हरिजन शब्द का प्रयोग किया।

10.4.10 धर्म निरपेक्ष समाज

यद्यपि महात्मा गांधी धर्म और राजनीति के अटूट संबंध को स्वीकार करते थे। लेकिन भारत जैसे विविधता वाले राज्य में धर्म प्रधान राज्य संभव नहीं था। अत: इसलिए उन्होंने धर्म निरपेक्ष राज्य के औचित्य को स्वीकार किया। जिसका अभिप्राय एक ऐसे राज्य से है, जिसका कोई विशेष धर्म नहीं होगा और न ही धर्म के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव किया जायेगा। आदर्श राज्य के इस विचार को स्वतंत्र भारत ने स्वीकार किया है और इसके संबंध में अनेक प्रावधान संविधान में किये गये हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10.4.11 गौ-वध निषेध

गांधीजी गाय के धार्मिक व आर्थिक दोनों ही महत्त्व से परिचित थे। उनका कहना था कि गाय के पालन-पोषण के आधार पर एक व्यक्ति अपने परिवार की जीविका संचालित कर सकता है। इसके अलावा हिन्दू धर्म व संस्कृति में भी गाय को पवित्र माना गया है। अत: आदर्श राज्य में गौ-वध पर पूर्ण प्रतिबन्ध होगा।

10.4.12 मद्य निषेध

मद्य के सेवन से व्यक्ति का चारित्रिक व नैतिक पतन होता है। अत: आदर्श राज्य में मद्य निषेध नीति का अनुसरण किया जायेगा।

10.4.13 नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा

गांधीजी के अनुसार व्यक्ति में नैतिक व चारित्रिक गुणों का विकास करने के लिए शिक्षा का होना बहुत जरूरी है। लेकिन उस समय भारतीय समाज में अशिक्षा व अज्ञानता व्याप्त थी। अत: गांधीजी यह मानते थे कि उनके आदर्श राज्य में प्राथमिक शिक्षा की नि:शुल्क व्यवस्था होगी, ताकि समाज का कोई भी नागरिक शिक्षा से वंचित न रह सके। गांधीजी के इसी विचार को ध्यान में रखते हुए राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों में 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए नि:शुल्क शिक्षा का प्रावधान किया गया है तथा 86वाँ संविधान संशोधन कर शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया गया है।

10.4.14 पुलिस व सेना संबंधी विचार

गांधीजी अपने आदर्श राज्य में पुलिस के औचित्य को स्वीकार करते हैं लेकिन सेना नहीं। उनके अनुसार समाज में व्याप्त असामाजिक तत्त्वों पर नियंत्रण करने के लिए पुलिस का होना अनिवार्य है। लेकिन पुलिस का आधार अहिंसा होगा। वे जनता के सेवक के रूप में तत्परता के साथ दायित्व निर्वाह करेंगे। सेना के संबंध में जब विश्व में स्थायी शांति कायम हो जायेगी तब सेना का कोई महत्त्व नहीं रहेगा। लेकिन फिर भी आवश्यकता के लिए शांति सेना स्थापित की जा सकती है।

10.4.15 पंचायत पर आधारित न्याय व्यवस्था

पंचायतों को और अधिक सशक्त बनाने के लिए गांधीजी अपने आदर्श राज्य में न्याय संबंधी अधिकार पंचायतों को देने पर बल देते हैं, ताकि लोगों को सस्ता व शीघ्र न्याय सुलभ हो सके।

10.4.16 लोककल्याणकारी राज्य

गांधीजी का आदर्श राज्य पूर्णत: लोककल्याण की अवधारणा पर आधारित है, जिसके अन्तर्गत राज्य हर समय जनता के कष्टों का निवारण करने का प्रयास करेगा और जनहित का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं होगा, जो राज्य की सीमा से परे होगा।

10.4.17 राजनीति के आध्यात्मिकरण पर बल

महात्मा गांधी गोपाल कृष्ण गोखले को अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। इसीलिए उन्होंने गोखले के इस विचार को स्वीकार करते हुए साध्य (लक्ष्य) को प्राप्त करने के लिए साधनों की पवित्रता पर बल दिया। उनका मानना था कि ऐसा होने से जो परिणाम हमें प्राप्त होंगे उनकी अनुभूति भी अच्छी होगी तथा हमारी भावी पीढ़ी को इसका लाभ मिलेगा।

○ निष्कर्ष

इस प्रकार गांधीजी का आदर्श राज्य संबंधी विचार कोरी कल्पनाओं पर आधारित न होकर यथार्थ व वास्तविकता पर आधारित है। जिन्हें आधार मानकर निश्चित् तौर पर प्रत्येक राज्य विकास और उन्नति के नवीन सोपान तय कर सकता है और ऐसा राज्य भी अपने उद्देश्य पर खरा उतर सकता है। गांधीजी के इन विचारों को भारतीय संविधान में सम्मानपूर्वक स्वीकार किया गया है। इसीलिए नीति निर्देशक तत्त्वों का उद्देश्य ही राम राज्य की स्थापना करना है।

10.5 महात्मा गांधी के आर्थिक विचार

आर्थिक आयामों का सम्बन्ध व्यक्ति और समाज के उत्थान के साथ जुड़ा हुआ है। जब तक समाज आर्थिक दृष्टि से प्रभावशाली नहीं होगा और अनेक प्रकार की आर्थिक समस्याएं व्याप्त होंगी, तो समाज के सामने विकास और उन्नति की अनेक चुनौतियाँ उभर सकती हैं। इसलिए राजनीतिक चिन्तकों के द्वारा सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों के साथ-साथ आर्थिक विचारों पर बल दिया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

महात्मा गाँधी के आर्थिक विचार

पूंजीवादी का विरोध	औद्योगिकरण का विरोध	कुटीर उद्योगों का समर्थन	अपरिग्रह का सिद्धान्त	वर्ग सहयोग पर बल	ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त

- ❖ आर्थिक समानता को प्रोत्साहन देने में सहायक।
- ❖ समतावादी समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।
- ❖ बेरोजगारी, शोषण एवं पिछड़ेपन जैसी आर्थिक समस्याओं का समाधान सम्भव।
- ❖ पारस्परिक सहयोग की भावना को बल मिल सकेगा।
- ❖ ये विचार भारतीय संस्कृति एवं दर्शन के अनुरूप ही हैं।
- ❖ समाज के संसाधनों का उचित वितरण सम्भव हो सकेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गांधीजी ने अपने राजनीतिक चिन्तन में आर्थिक सुधार की व्यापक योजना प्रस्तुत की। उस समय अंग्रेजों की दमनकारी एवं शोषणकारी नीतियों के चलते भारतीय समाज की आर्थिक दरिद्रता स्पष्ट रूप से झलक रही थी। चारों ओर आर्थिक असमानता, भूखमरी, अन्याय, शोषण, बेरोजगारी का साम्राज्य व्याप्त था। औद्योगीकीकरण के कारण भारतीय कुटीर उद्योग चौपट हो चुके थे। भारत में उत्पन्न होने वाला अधिकांश कच्चा माल इंग्लैण्ड भेज दिया जाता था। जिसका प्रतिकूल प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ा।

राजनीति में समाज की अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में गांधीजी का विचार था कि सच्चा अर्थशास्त्र नैतिकता के नियमों के प्रतिकूल हो ही नहीं सकता। सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक न्याय चाहता है। वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति–चाहे वह कितना भी कमजोर क्यों न हो, का सामाजिक हित चाहता है और अच्छे जीवन के लिए यह आवश्यक भी है। गांधीजी के ये विचार यथार्थ व व्यवहार पर आधारित हैं, जिन्हें अपनाकर कोई भी राज्य अपना उत्कर्ष कर सकता है।

गांधीजी के आर्थिक विचार निम्नलिखित हैं:-

10.5.1 पूंजीवाद का विरोध

गांधीजी आर्थिक क्षेत्र में प्रचलित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का विरोध करते हैं और समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना पर बल देते हैं। उनका कहना था कि पूंजीपति, अर्थव्यवस्था का संचालन केवल अपने लाभ के लिए ही करते हैं। जिनका सामाजिक हित से कोई सरोकार नहीं। वे उद्योगों का मशीनीकरण करके बेकारी बढ़ाते हैं और मजदूरों का और उपभोक्ता का शोषण करते हैं। अर्थव्यवस्था पर उनका एकाधिकार होने के कारण वे वस्तुओं का मूल्य एवं स्तर अपनी मनमर्जी से तय करते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि समाज में आर्थिक विषमता बढ़ती ही जाती है।

10.5.2 औद्योगीकीकरण का विरोध

उनके द्वारा औद्योगिक क्रांति और इसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न केन्द्रीय कृत अर्थव्यवस्था का विरोध किया गया। उनका कहना था कि औद्योगीकीकरण की इस प्रवृत्ति ने साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया है। क्योंकि औद्योगीकीकरण से राष्ट्रों को अपनी अर्थव्यवस्था संचालित करने के लिए बड़ी मात्रा में कच्चे माल और तैयार माल बेचने के लिए विशाल मण्डी की आवश्यकता होती है। अत: इसके लिए वे इस प्रकार की नीति का अनुसरण करते हैं, जो नैतिकता के विरूद्ध है। गांधीजी बड़ी मशीनों को मानवता के लिए अभिशाप मानते थे, क्योंकि इससे समाज में घृणा, स्पर्द्धा व स्वार्थ को बढ़ावा मिलता है और इससे मानव समाज का शारीरिक व नैतिक पतन भी होता है। इसके कारण समाज के अधिकांश संसाधन कुछ लोगों के हाथ में आ जाते हैं तथा समाज का बहुसंख्यक वर्ग अभाव की जिंदगी व्यतीत करता है।

10.5.3 कुटीर उद्योगों का समर्थन

गांधीजी के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार कुटीर उद्योग है। क्योंकि ये भारत को आत्मनिर्भर बनाते हैं और गांवों में स्वावलम्बन की भावना विकसित करते हैं। अत: जिस गति से मशीनीकरण किया जा रहा है वह हमारे लिए अनुचित है। अंग्रेजों की दोषपूर्ण नीतियों के

कारण हमारे यह उद्योग पतन के कगार पर पहुंच चुके हैं। उनके अनुसार भारत में जब तक राजनीतिक व सामाजिक चेतना नहीं आएगी, तब तक हम आर्थिक क्षेत्र में स्वदेश और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन नहीं दे सकेंगे। गांधीजी का कहना था कि किसी भी देश की अर्थव्यवस्था काफी हद तक उसकी जलवायु एवं प्राकृतिक स्थिति पर निर्भर करती है। अत: इस दृष्टि से कुटीर उद्योग उचित है।

10.5.4 अपरिग्रह का सिद्धान्त

इससे तात्पर्य यह है कि व्यक्ति को अपनी आवश्यकता के अनुसार सम्पत्ति या धन रखना चाहिए। गांधीजी का कहना था कि भारतीय समाज में जो आर्थिक विषमता बढ़ रही है, आर्थिक संसाधनों पर समाज के कुछ लोगों का नियंत्रण स्थापित हो गया है, उसका मूल कारण मनुष्य में अत्यधिक सम्पत्ति संकलन करने की भावना है। अत: भारत में अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के जीवन स्तर को ऊपर उठाने के अपरिग्रह के सिद्धान्त का अनुसरण करना चाहिए।

10.5.5 वर्ग सहयोग पर बल

गांधीजी अपने आर्थिक विचारों में वर्ग संघर्ष के स्थान पर वर्ग सहयोग की अवधारणा में विश्वास करते थे। उनका कहना था कि पूंजीपति और श्रमिकों के हित परस्पर विरोधी नहीं हो सकते। यदि इनमें पारस्परिक सहयोग एवं सामूहिक प्रयत्न किए जाए तो अर्थव्यवस्था को उच्च शिखर पर पहुँचाया जा सकता है। उनके अनुसार पूंजीपतियों को समाप्त नहीं, अपितु उनकी शक्तियों को कम करना है।

10.5.6 संरक्षण या ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त

गांधीजी के आर्थिक विचारों की बुनियाद ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त पर आधारित है। उनका मानना है कि समाज में आर्थिक समानता लाने के लिए पूंजीपतियों एवं जमींदारों के पास जो अनावश्यक धन व भूमि है, उसको उनसे प्राप्त कर उन्हें सामाजिक संरक्षण नियुक्त कर दिया जाए तथा इसका उपयोग वे लोग करें, जो निर्धन है। यहाँ सम्पत्ति प्राप्त करने के साधन साम्यवाद पर आधारित न होकर सत्य व अहिंसा पर आधारित होंगे।

❍ निष्कर्ष

अत: कहा जा सकता है कि गांधीजी के विचार उच्च स्तर के हैं। जिनको आधार मानकर प्रत्येक राज्य अपनी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बना सकता है। इसलिए गांधीजी के इन विचारों को आधार मानकर भारत अर्थव्यवस्था का संचालन कर रहा है। उनके यह विचार यथार्थ व व्यवहार पर आधारित हैं।

10.6 महात्मा गांधी के सामाजिक विचार

गांधीजी का ध्यान भारतीय समाज की उन बुराइयों की तरफ गया, जिनके कारण सम्पूर्ण समाज की जड़ें खोखली हो चुकी थी। यद्यपि भारतीय समाज और संस्कृति की गणना विश्व के महानतम् समाजों एवं संस्कृतियों में की जाती थी। लेकिन स्वस्थ परम्पराओं के स्थान पर सामाजिक बुराइयाँ हावी हो गयी थी। समाज को संगठित एवं व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए वैदिक एवं आर्यो के काल में अनेक व्यवस्थाएं और परम्पराएँ स्थापित की गई थी।

20वीं सदी का पूर्वार्द्ध भारतीय समाज के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। क्योंकि महात्मा गांधी ने समाज को बुराईयों से मुक्त करने का बीड़ा उठाया। यद्यपि गांधीजी से पूर्व अनेक समाज सुधारक हुए। जिन्होंने इस दिशा में सार्थक पहल भी की। लेकिन गांधीजी के प्रयास यथार्थ पर आधारित होने के कारण उनके विचारों का सकारात्मक प्रभाव पड़ा। उस समय समाज में ऊँच-नीच का भेदभाव अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था और कथित तौर पर अपने आपको उच्च जाति का दावा करने वाले लोग निम्न जातियों के लोगों के साथ अस्पृश्यता, शोषण, अन्याय व अत्याचार जैसे अमानवीय व्यवहार कर रहे थे। जिससे समाज विखण्डित नजर आ रहा था। अत: गांधीजी ने राष्ट्रीय एकता को सुदृढ बनाने के लिए समाज सुधार पर बल दिया और कहा कि जब तक समाज में एकता का अभाव रहेगा, तब तक हम गुलामी की जंजीरों से मुक्त नहीं हो सकते। गांधीजी के प्रमुख सामाजिक विचार निम्नलिखित हैं-

10.6.1 अस्पृश्यता का निवारण

गांधीजी ने भारतीय समाज में व्याप्त छुआछूत या अस्पृश्यता का विरोध किया और ये कहा कि इससे हमारा समाज पतन की ओर अग्रसर हो रहा है यह मानवीय समाज का गम्भीर दोष है। इससे सम्पूर्ण समाज कलंकित हो रहा है। उन्होंने कहा कि यह एक ऐसा रोग है जो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समस्त समाज को नष्ट कर देगा। वे अछूतों को आर्थिक व राजनीतिक अधिकार दिलाने के पक्ष में थे। उनके द्वारा इस बात पर बल दिया गया कि अछूतों को हिन्दू मंदिरों, कुओं तथा सार्वजनिक स्थलों पर प्रवेश दिया जाये। ताकि उनमें आत्म-सम्मान एवं आत्म-गौरव की भावना विकसित हो सके। गांधीजी ने सर्वप्रथम अछूतों के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया तथा इनके सुधार हेतु व्यापक योजना प्रस्तुत की तथा गांधीजी के विचारों को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान में अस्पृश्यता निवारण अनु. 17 में उल्लेख किया गया है।

10.6.2 वर्ण व्यवस्था का समर्थन

वर्ण व्यवस्था को भारतीय समाज का आधार माना जाता है, लेकिन वर्ण व्यवस्था जो कर्म और धर्म पर आधारित हुआ करती थी, वह कार्यों पर आधारित हो गई। जिसके परिणाम स्वरूप समाज में जाति बन्धन हावी हो गए और समाज खण्डित नजर आने लगा। प्राचीन काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र बनाने के पीछे उद्देश्य समाज का सफल संचालन करना था। लेकिन दोषपूर्ण व्यवस्था के चलते वर्ण व्यवस्था प्रदूषित हो गई। अत: गांधीजी ने सामाजिक विचारों में वर्ण व्यवस्था के औचित्य को स्वीकार किया।

10.6.3 नारी सुधार

नारी को अर्द्धांगिनी माना जाता है। प्राचीन भारतीय समाज और हिन्दू धर्म की मान्यताओं में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान हुआ करता था। लेकिन बदलती हुई परिस्थितियों के कारण नारी की स्थिति नाजुक होती गई। अत: 19वी, 20वीं शताब्दी में अनेक समाज सुधारक आगे आए। जिनमें राजा राममोहन राय तथा बाद में गांधीजी का नाम प्रमुख है। उनका कहना था कि नारी किसी भी दृष्टि से पुरुषों से हीन नहीं होती। उसके प्रति अन्याय व अपमान नहीं होना चाहिए। उनका कथन था कि यदि सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता, नैतिकता आदि जीवन के सर्वोच्च गुणों की दृष्टि से विचार किया जाए तो नारी पुरुषों से श्रेष्ठ हैं। गांधीजी ने पर्दा प्रथा, बाल विवाह, बहुपत्नी विवाह, बेमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि का विरोध किया। लेकिन गांधीजी महिलाओं की आर्थिक स्वतन्त्रता के समर्थक नहीं थे। उनका कहना था कि वह केवल अपने पारिवारिक दायित्व का पालन करें। घर से बाहर निकलकर आर्थिक गतिविधियों में भाग न लें।

10.6.4 बुनियादी शिक्षा

गांधीजी का कहना था कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के शरीर, आत्मा और मस्तिष्क का समन्वित विकास करना है। लेकिन इस दृष्टि से भारत में अंग्रेजों के द्वारा प्रचलित शिक्षा उचित नहीं थी। उनका कहना था कि यह शिक्षा पद्धति हमारे युवाओं में शारीरिक, बौद्धिक एवं आत्मिक उन्नति नहीं कर सकती। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में सुधार लाने के लिए व्यापक योजना प्रस्तुत की, जो इस प्रकार है–

- ❖ शिक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों को कोई न कोई दस्तकारी सिखाई जाए, ताकि उनमें आत्मनिर्भरता की भावना का विकास हो।
- ❖ शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए।
- ❖ अनिवार्य व नि:शुल्क शिक्षा।
- ❖ शिक्षा का स्तर व्यक्तियों के चारित्रिक निर्माण करने वाला होना चाहिए।

गांधीजी के इसी सपने को साकार करने के लिए 2002 में 86वाँ संविधान संशोधन कर शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया गया।

10.6.5 अहिंसा पर आधारित समाज

गांधीजी के सामाजिक विचारों में उनके समाज की बुनियाद अहिंसा पर टिकी हुई है। इसलिए वे अपने आदर्श राज्यों को अहिंसात्मक समाज कहकर पुकारते हैं। उनका मानना था कि सभी समस्याओं की जड़ मनुष्य की हिंसात्मक प्रवृत्ति है। अत: समाज में हिंसा के किसी भी रूप को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

10.7 सारांश

उपरोक्त विवेचन के तत्पश्चात् यह कहा जा सकता है कि महात्मा गांधी के विचार निश्चित रूप से आज भी प्रासंगिक हैं, जिन्हें अपनाकर हम अनेक समस्याओं का समाधान आसानी से कर सकते हैं और समाज को प्रगति के पथ पर अग्रित किया जा सकता है।

- ❖ रामराज्य की अवधारणा अपनाने से राज्य जनता की इच्छाओं और आकांक्षाओं पर खरा उतर सकता है। यही कारण है कि स्वतंत्रता के बाद गांधीजी के इस विचार को अपनाया गया और संविधान में भी अनेक प्रावधान किये गये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- ❖ गांधीजी के आर्थिक विचारों के माध्यम से हम आर्थिक चुनौतियों का मुकाबला कर सकते हैं। उनके विचार समाजवाद से प्रभावित प्रतीत होते हैं, जो हमें यह सन्देश देते हैं कि ऐसे आर्थिक तंत्र की स्थापना की जाए, जिसमें सभी लोगों को अपने विकास के समान अवसर मिलें।
- ❖ कुटीर उद्योगों के प्रोत्साहन पर बल देकर गांधीजी ने भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने का प्रयास किया, जिसे अपनाने से भारत आर्थिक शक्ति के रूप में अपनी पहचान कायम कर सकता है।
- ❖ सामाजिक न्याय की स्थापना में भी गांधी का उल्लेखनीय योगदान माना जा सकता है। उन्होंने उन सामाजिक व्यवस्थाओं पर प्रहार किया, जो समाज को विघटन की ओर ले जा रही थी तथा समाज के बड़े भाग को समान धारा से काट चुकी थी। इसके लिए उन्होंने छुआछूत पर कड़ा प्रहार किया तथा अपने समाचार-पत्र हरिजन में दलितों के हितों के संरक्षण के संबंध में अनेक लेख प्रकाशित किये।
- ❖ नारी सुधार की दिशा में आवाज बुलन्द कर उन्होंने नारी सम्मान तथा गौरव को बढ़ाया, जिससे ये सदियों से वंचित थीं।

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ओमप्रकाश गाबा, ''भारतीय राजनीतिक विचारक'' मयूर पेपप बेक्स, नोएडा
2. ओमप्रकाश गाबा, ''राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा'' पेपर बेक्स, नोएडा
3. डॉ. ए. अवस्थी, डॉ. आर.अवस्थी, ''भारतीय राजनीतिक चिन्तक'', रिसर्च पब्लिकेशन्स
4. वी. पी. शर्मा, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तक, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा
5. बी.आर. पुरोहित, भारतीय राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

10.9 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. गांधीजी के विचारों की प्रासंगिकता को सिद्ध किजिए।
2. गांधीजी के आदर्श राज्य (राम राज्य) संबंधी विचारों पर प्रकाश डालिए।
3. गांधीजी के प्रमुख आर्थिक विचार क्या हैं ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. निम्न पर टिप्पणी लिखिए—
   1. सत्ता का विकेन्द्रीकरण, 2. अहिंसात्मक समाज, 3. वर्णव्यवस्था, 4. अस्पृश्यता का अन्त
2. गांधीजी के सामाजिक विचारों पर संक्षिप्त नोट लिखिए।
3. अपरिग्रह का सिद्धान्त क्या है ?
4. ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त क्या है ?
5. राम राज्य की स्थापना की दिशा में भारत में क्या संवैधानिक प्रयास हुए हैं ?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. महात्मा गांधी का राजनीति में विधिवत् प्रवेश कहां से हुआ ?
2. गांधी जी प्रथम व अन्तिम बार कांग्रेस के कौन से अधिवेशन में अध्यक्ष बने ?
3. गांधी जी पूंजीवाद का विरोध क्यों करते थे ?
4. गांधी जी के आर्थिक विचारों का प्रमुख उद्देश्य क्या है ?
5. शिक्षा को मौलिक अधिकार कब एवं किस संविधान संशोधन द्वारा बनाया गया ?
6. गांधीजी को राष्ट्रपिता किसने कहा ?
7. विश्व अहिंसा दिवस कब मनाया जाता है ?
8. गांधीजी अपना राजनीतिक गुरु किसे मानते थे ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई - 11 जवाहर लाल नेहरू

संरचना

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 जीवन परिचय

11.4 पंडित जवाहरलाल नेहरू के साम्प्रदायिकता संबंधी विचार

11.4.1 साम्प्रदायिकता का अर्थ एवं प्रकृति

11.4.2 साम्प्रदायिकता निवारण के उपाय

11.5 लोकतांत्रिक समाजवाद संबंधी विचार

11.5.1 लोकतांत्रिक समाजवाद का अर्थ एवं प्रकृति

11.5.2 लोकतांत्रिक समाजवाद का प्रमुख सिद्धान्त

11.5.2.1 लोकतंत्र तथा समाजवाद की पारस्परिकता

11.5.2.2 समस्याओं का समाधान

11.5.2.3 समाजवाद के गतिशील स्वरूप का समर्थन

11.5.2.4 संवैधानिक साधन

11.5.2.5 समतावादी समाज

11.5.2.6 लोक कल्याणकारी राज्य

11.5.2.7 आर्थिक विकास पर जनता की भागीदारी पर बल

11.5.2.8 लोकतांत्रिक मूल्यों में दृढ़ आस्था

11.5.2.9 मिश्रित अर्थव्यवस्था

11.6 नेहरू के राष्ट्रवाद संबंधी विचार

11.6.1 सीमित उदार व सन्तुलित राष्ट्रवाद का समर्थन

11.6.2 स्वतन्तत्रता का मूल प्रेरणा स्रोत

11.6.3 विविधता में एकता

11.6.4 धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद का समर्थन

11.6.5 संकीर्ण राष्ट्रवाद का विरोध

11.6.6 साम्राज्यवाद का विरोध

11.6.7 समन्वयवादी दृष्टिकोण

11.6.8 लोक शक्ति तथा आत्मशक्ति पर आधारित

11.7 विश्व समुदाय को पं. नेहरू का योगदान

11.8 पं. नेहरू का योगदान

11.8.1 भारतीय इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या

11.8.2 लोकतंत्र में अटूट आस्था

11.8.3 लोकतांत्रिक समाजवाद का प्रतिपादन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.8.4 नेहरू का मानवतावाद
11.8.5 अन्तरराष्ट्रवाद
11.8.6 आधुनिक भारत के निर्माता
11.8.7 गुटनिरपेक्षता
11.8.8 धर्म निरपेक्षता
11.9 सारांश
11.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
11.11 अभ्यास प्रश्नावली

11.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य पं. जवाहरलाल नेहरु के प्रमुख विचारों को जानते हुए उनका भारत का नवनिर्माण में दिये गये योगदान को स्पष्ट करना है। उन्होंने जो नीति एवं विचारधारा स्थापित की वे हमारी व्यवस्था तथा समाज के साथ आज भी अटूट रूप से जुड़ी हैं, जिन्हें किसी भी प्रकार पृथक् नहीं किया जा सकता। इकसे अध्ययन के बाद आप —

- पं. नेहरु के साम्प्रदायिकता संबंधी विचारों को जान सकेंगे, जिसमें उन्होंने इसे भारत की एकता व अखण्डता के लिए सबसे बड़ी चुनौती के रूप में प्रस्तुत करते हुए इसके निवारण हेतु भी उपाय बताये जो काफी कारगर सिद्ध हुए हैं तथा भविष्य में भी हो सकते हैं,
- लोकतांत्रिक समाजवाद से संबंधी विचार, जो इस बात पर बल देते हैं कि लोकतंत्र की सफलता के लिए आर्थिक समानता, स्वतन्त्रता तथा न्याय का होना आवश्यक है। उसे जानकर यदि अपनाया जाए तो हम हमारी अनेक आर्थिक समस्याओं से मुक्त हो सकते हैं,
- राष्ट्रवाद संबंधी विचारों को जानकर हम राष्ट्रीय एकता व पारस्परिक सौहार्द की भावना को बढ़ाने में समर्थ हो सकते हैं,
- अन्तरराष्ट्रवाद एवं विश्वशांति के क्षेत्र में उनके द्वारा प्रस्तुत विचार भी जान सकेंगे, जो पंचशील शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व अन्तरराष्ट्रीय कानूनों के प्रति सम्मान की भावना पर आधारित है।

11.2 प्रस्तावना

पंडित नेहरु केवल भारत के राजनेता ही नहीं थे, अपितु उनकी गणना प्रमुख राजनीतिक विचारकों के रूप में होती है। उनके विचारों का प्रभाव केवल भारतीय समाज तक ही सीमित न रहा, अपितु अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उनका प्रभाव देखा जा सकता है। नेहरुजी ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कांग्रेस को सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया और राजनीति के सम्बन्ध में अनेक विचार प्रतिपादित किए। वे लोकतंत्र के प्रबल समर्थक थे। इसीलिए उन्होंने भारत के संविधान में इसके सम्बन्ध में अनेक प्रावधानों को शामिल करवाये। आर्थिक व्यवस्था में वे लोकतांत्रिक समाजवाद के प्रबल समर्थक थे।

भारतीय संविधान के निर्माण और आजादी के पश्चात् भारत की विभिन्न नीतियों जैसे– आर्थिक नीति, विदेश नीति, सामाजिक आधार आदि पर नेहरु जी के विचारों का दिखाई देता है। इसीलिए पंडित नेहरु को भारत के निर्माता के रूप में स्वीकार किया जाता है।

विश्वशांति, अन्तरराष्ट्रीय सहयोग, शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व, पंचशील सिद्धान्त आदि के लिए विश्व हमेशा ही नेहरु जी का ऋणी रहेगा। उन्होंने विश्व व्यवस्था को एक गति प्रदान की। संयुक्त राष्ट्र संघ को मजबूती दिलाने में सहयोग दिया, उन्होंने अनेक अन्तरराष्ट्रीय रंगमंचों पर भारतीय दर्शन और संस्कृति के अनुरूप शांति व अहिंसा की प्रेरणा दी और अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं का समाधान शांतिपूर्ण तरीके से करने को प्रेरित किया।

पंडित नेहरु धर्म निरपेक्ष एवं साम्प्रदायिक सौहार्द के समर्थक थे। उन्होंने भारत के सभी धर्मों में आपसी सौहार्द व भाइचारे को बढ़ावा देने का प्रयास किया। आजादी के बाद जिस प्रकार भारत साम्प्रदायिक हिंसा की चपेट में आया था। इससे वे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने राष्ट्रीय एकता और एकीकरण की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देने का आह्वान किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.3 जीवन परिचय

पंडित नेहरू का जन्म 14 नवम्बर 1889 को इलाहाबाद में हुआ था। इनके पिता का नाम मोतीलाल नेहरु तथा माता का नाम स्वरूपरानी था। आपका संबंध कश्मीरी ब्राह्मण परिवार से था। लेकिन वे इलाहाबाद आ जाते हैं। उनका बचपन आनंद भवन में विलासिता पूर्ण एवं कुलीन तरीके से व्यतीत होता है। पिता के पेशे से वकील होने और भारत की राजनीतिक में सक्रिय भागीदारी के कारण उनके परिवार की प्रतिष्ठा सम्पूर्ण भारतवर्ष में थी। इन्हें प्रारम्भिक शिक्षा एक योरोपीय शिक्षक के द्वारा घर पर ही दी गयी। इसके पश्चात् 15 वर्ष की आयु में शिक्षा ग्रहण करने ब्रिटेन चले जाते हैं। वहां उन्हें इटली के महापुरुष गैरीबाल्डी के पास पढ़ने का मौका मिलता है। इसके अलावा उन्हें स्वतत्रता, समाजवाद, फ्रांस की राज्य क्रान्ति, ब्रिटेन की रक्तहीन क्रांति एवं अनेक अन्य राजनीतिक चिन्तकों के विचारों को जानने का एक सुअवसर प्राप्त होता है। इसका प्रभाव यह पड़ता है कि भारत लौटने पर और संविधान निर्माण में उनके विचारों को सम्मानजनक दर्जा दिया जाता है।

1907 में वे विधि की शिक्षा प्राप्त करने के लिए पुन: ब्रिटेन जाते हैं। सन् 1912 में बैरिस्टरी की उपाधि लेकर भारत लौटते हैं। इनका विवाह 26 वर्ष की आयु में कमला कौर के साथ होता है।

पंडित नेहरु को राजनीति विरासत में ही मिली हुई थी, क्योंकि उनके पिता कांग्रेस की गतिविधियों में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे थे। इनका राजनीति में विधिवत् प्रवेश 1912 में कांग्रेस में बाकीमपुर अधिवेशन में होता है। धीरे-धीरे मदनमोहन मालवीय द्वारा संचालित किसान आंदोलन में हिस्सा लेते हैं। इसके पश्चात् पंडित जी कांग्रेस की राजनीति में इस प्रकार छा जाते है कि मानो कांग्रेस की आधार शिला है। राष्ट्रीय आन्दोलन को दिशा प्रदान करने में, भारतीय आजादी की लड़ाई के लिए विश्व जनमत तैयार करने के लिए अनेक देशों की यात्राएं की। 1929 के लाहौर अधिवेशन में पहली बार अध्यक्ष बने।

आजादी के पश्चात् बनने वाली प्रथम सरकार में उन्हें भारत का प्रधानमंत्री बनने का सौभाग्य होता है। इस पद पर वे अपने जीवन के अंतिम समय तक रहते हैं। इस दौरान उन्होंने भारत को सभी क्षेत्रों में सशक्त बनाने और भारत में व्याप्त समस्याओं का समाधान करने की हर सम्भव कोशिश करते हैं, लेकिन 27 मई 1964 को नेहरु जी का स्वर्गवास हो जाता है।

11.4 पंडित जवाहरलाल नेहरु के साम्प्रदायिकता सम्बन्धी विचार

नेहरु जी ने भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति को ध्यान में रखकर विचारों का प्रतिपादन किया था इसी कड़ी में उन्होंने सबसे पहले धर्म और राजनीति के संबंध को निर्धारित करने का एक प्रयास किया। उन्होंने संकीर्ण धार्मिकता का विरोध करते हुए साम्प्रदायिकता को राष्ट्रीय एकता, अखंडता के लिए घातक, हिंसा व अलगाव को बढ़ाने वाली कहा। इसलिए उन्होंने धर्म की नैतिक मान्यताओं को स्वीकार करते हुए एक धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना पर बल दिया।

अंग्रेजों की फुट डालो और राज करो की नीति के कारण भारत के दो प्रमुख धर्मों हिन्दू और मुस्लिम के बीच मतभेद उत्पन्न हो गए थे इसके अलावा मुस्लिम लीग की गतिविधियों ने साम्प्रदायिकता की आग को बढ़ाने में घी का काम किया। साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली एवं साम्प्रदायिकता के आधार पर आरक्षण से दोनों समुदायों के बीच व्यापक दूरियां बढ़ गई थी। पंडित नेहरु इस स्थिति से बहुत अधिक विचलित हुए और दोनों धर्मों के बीच साम्प्रदायिकता सौहार्द बढ़ाने पर बल दिया।

11.4.1 साम्प्रदायिकता का अर्थ एवं प्रकृति

धार्मिक कट्टरता एवं धर्म के नाम पर स्वार्थ सिद्धि का प्रयास करना साम्प्रदायिकता है। यह घृणा, हिंसा, वैमनस्य एवं संकीर्णता को बढ़ावा देती है। साम्प्रदायिकता एक प्रतिक्रियावादी एवं समाज विरोधी भावना है। यह उन्हीं प्रकार के तत्त्वों को अपनी ओर आकर्षित करती है, जो धर्म की आड़ में राष्ट्रवाद की भावना और सामाजिक प्रगति के मार्ग में अवरोध पैदा करते हैं।

प्राचीन काल से ही भारत में अनेक धर्मों का अस्तित्व रहा है और यहां धार्मिक सहिष्णुता की भावना हमेशा विद्यमान रही है। अशोक महान का तो यहा तक कहना था कि अपने पड़ौसी के धर्म का उसी प्रकार सम्मान करो जिस प्रकार आप अपने धर्म का सम्मान करते हैं। धर्म के नाम पर भारत में कभी युद्ध नहीं हुए। यह तो योरोपीय समाज की देन है। भारत विश्व के चार महत्त्वपूर्ण धर्म हिन्दू, बौद्ध, जैन, सिक्ख धर्म की कर्मभूमि रही है। ईसाई और मुसलमान भी यहां सदियों से रहते आएँ हैं। सभी के बीच आपसी सहयोग अपने आप में एक मिसाल है। लेकिन चंद स्वार्थी तत्त्वों के कारण हमारी धार्मिक सौहार्द की प्रवृत्ति को काफी धक्का लग रहा है और लगता रहेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

साम्प्रदायिकता हमारी राष्ट्रीय एकता व अखंडता के लिए अभिशाप सिद्ध हो रही है, जिसे रोकने के उतरोत्तर प्रयासों के बावजूद यह भावना और अधिक विकराल रूप धारण करती जा रही है। साम्प्रदायिकता रूपी नाग ने हमारे सांस्कृतिक मूल्यों भाई–चारे पारस्परिक सौहार्द को डस लिया है। इसके चलते दोनों सम्प्रदायों की स्थिति समुद्र के उन दो तटों के समान है जो आपस में कभी मिल ही नहीं सकते हैं।

साम्प्रदायिकता के आधार पर भारत के विभाजन ने धर्म के नाम पर हजारों बेगुनाह लोगों का खून बहाया। वो नजारा मानव की बर्बरता को सिद्ध करने वाला था। पण्डित नेहरु ने भारतीय संविधान और सरकार के द्वारा बनाये जाने वाली नीतियों में साम्प्रदायिक सौहार्द बनाये रखने की कोशिश की, ताकि स्वतंत्र भारत में साम्प्रदायिकता के जहर को नष्ट किया जा सके।

लेकिन दुर्भाग्य हमारा है और हमारे समाज का जो साम्प्रदायिकता की आग की लपटें आज तक जल रहा है, इसे रोकना होगा और सामाजिक सौहार्द को प्रोत्साहित कर पण्डित नेहरु के सपनों को साकार करना होगा अन्यथा हमारा समाज नरकमय बनकर मृत्यु के अंतिम पड़ाव पर पहुंच जाएगा।

साम्प्रदायिकता निवारण के उपाय

- संविधान सभा
- साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का अन्त
- अल्पसंख्यकों में भय दूर करना
- गरीबी उन्मूलन
- समानता पर बल
- धार्मिक संगठनों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही

हिन्दू + मुस्लिम + सिक्ख + ईसाई + जैन = राष्ट्रीय एकता, खण्डता एवं संप्रभुता सुरक्षित

- ❖ आपसी भाईचारे की भावना को प्रोत्साहन।
- ❖ समस्त धार्मिक असमानताओं का अन्त।
- ❖ प्रगति के लिए सहायक साधनों के रूप में।
- ❖ प्राचीन भारतीय संस्कृति की पहचान को बनाये रखने में मददगार।

11.4.2 साम्प्रदायिकता निवारण के उपाय

साम्प्रदायिकता की विकराल समस्या से समाज को मुक्ति दिलाने के लिए नेहरु ने अथक प्रयास किए ताकि दोनों समुदायों के बीच सौहार्द का नवीन युग संचालित हो सके। इसके लिए उन्होंने निम्नलिखित सुझाव दिए–

11.4.2.1. संविधान सभा :– साम्प्रदायिक समस्या का निवारण व्यापक मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संविधान सभा द्वारा होना चाहिए। भारत के लोग ही एक मात्र अपने भाग्य के निर्णायक हैं।

11.4.2.2. साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का अंत :– अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता को बढ़ाने के लिए 1909 के अधिनियम में साम्प्रदायिकता निर्वाचन प्रणाली मुसलमानों के लिए शुरू की थी। जिसका कांग्रेस हमेशा से ही विरोध कर रही थी। पंडित नेहरु इसके पूर्ण उन्मूलन के पक्षधर थे और संविधान में इस प्रकार के प्रावधान नहीं होने का पक्ष लिया।

11.4.2.3. अल्पसंख्यकों में भय की भावना दूर करना :– नेहरु जी की का मानना था कि साम्प्रदायिकता का निवारण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शक्ति के बल पर नहीं हो सकता। इसके लिए मुसलमानों में जो भय की भावना व्याप्त है उसे दूर करना होगा। उन्हें आत्मनिर्भर बनाना होगा तथा उन तत्त्वों को कुचलना होगा, जो इस भावना को बढ़ा रहे हैं।

11.4.2.4. गरीबी उन्मूलन :– नेहरु जी के अनुसार साम्प्रदायिकता का मूल कारण गरीबी है। बेरोजगारी, भूखमरी, शोषण, आर्थिक विषमता आदि इसके लिए उत्तरदायी है। भारत के अल्पसंख्यक इन पीड़ाओं से ग्रस्त हैं। अत: उन्हें समाज की समान धारा में शामिल करने के लिए इस दिशा में ठोस कदम उठायें।

11.4.2.5. समानता पर बल :– यदि साम्प्रदायिकता का स्थायी समाधान करना है तो धर्म सहित अन्य किसी आधार पर नागरिकों के साथ भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए और सभी को विकास के समान अवसर उपलब्ध कराये जायें। इसी को दृष्टिगत रखते हुए संविधान के अनु. 14–18 के बीच समानता का मूल अधिकार शामिल किया गया।

11.4.2.6. धार्मिक संगठनों के विरूद्ध कठोर कार्यवाही – साम्प्रदायिक बढ़ने का प्रमुख कारण यह है कि कथित तौर पर अपने आपको धर्म का संरक्षक कहने वाले संगठन इसी आड़ में साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देते हैं और लोगों की संकुचित मानसिकता को प्रोत्साहन देते हैं। अत: इस प्रकार के संगठनों के विरूद्ध कठोर कदम उठाना चाहिए।

11.5 पंडित जवाहरलाल नेहरु के लोकतांत्रिक समाजवाद से सम्बन्धित विचार

मनुष्य अपने जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए अनेक प्रकार के नियम और मान्यताएँ बनाता आया है, जिनका उसके साथ अटूट सम्बन्ध होता है ठीक इसी प्रकार राजनीति शास्त्र में राजव्यवस्था के संचालन हेतु अनेक विचारधाराएं प्रतिपादित की गई है, जिनका प्रमुख उद्देश्य राज्य के उद्देश्य को साकार रूप प्रदान करना है। इन विचारधाराओं का अपना एक विशेष महत्त्व होता है। राजनीति शास्त्र का इतिहास बताता है कि कोई भी विचारधारा एक लम्बे अरसे तक अपना 'वजूद कायम नहीं रख पाई है।' नेहरु ने भारत की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्थिति को आधार मानकर लोकतांत्रिक समाजवाद की विचारधारा का प्रतिपादन किया। भारत को स्वतंत्रता के साथ बेरोजगारी, आर्थिक असमानता, शोषण अन्याय आदि उपहार स्वरूप मिले। ये समस्याएं नव स्वतंत्र भारत के लिए घातककारी थी। जन इच्छाओं और आकांक्षाओं को ध्यान में रखकर लोकतंत्र की स्थापना की गई। लेकिन लोकतंत्र की सफलता के लिये प्रथम इन आर्थिक समस्याओं से मुक्ति पाना था। अत: नागरिकों के राजनीतिक अधिकारों एवं स्वतंत्रता के साथ–साथ आर्थिक स्वतंत्रता एवं समानता को सुनिश्चित करना था।

11.5.1 लोकतांत्रिक समाजवाद का अर्थ एवं प्रकृति

लोकतांत्रिक समाजवाद दो शब्दों से मिलकर बना है। लोकतंत्र और समाजवाद, लोकतंत्र स्वतंत्रता व समानता पर आधारित होता है। लेकिन देश की अधिकांश जनसंख्या गरीब व पिछड़ी होने के कारण वे अपने राजनीतिक अधिकारों का उचित प्रयोग नहीं कर सकते। परिणामस्वरूप आर्थिक स्वतंत्रता समानता, बन्धुत्व एवं सुरक्षा के अभाव में राजनीतिक अधिकार निरर्थक सिद्ध होते हैं। समाजवाद, आर्थिक समानता और न्याय पर आधारित होता है।

11.5.2 लोकतांत्रिक समाजवाद के प्रमुख सिद्धान्त

11.5.2.1 लोकतन्त्र तथा समाजवाद की पारस्परिकता :– पं. जवाहरलाल नेहरू एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे जिसमें नागरिकों को राजनीतिक स्वतंत्रता एवं अधिकार मिले, साथ ही समाजवादी के माध्यम से वे आर्थिक समानता तथा न्याय की अवधारणा स्थापित करना चाहते थे। इन दोनों अवधारणाओं को लागू करने के लिए लोकतंत्र तथा समाजवाद के समन्वय पर बल दिया। इस प्रकार लोकतांत्रिक समाजवाद को अपनाने से जनता के राजनीतिक अधिकारों की मान्यता, आर्थिक तथा सामाजिक न्याय, संसाधनों का न्याय पूर्ण वितरण तथा उत्पादन व वितरण की न्याय संगत प्रणाली को सुनिचित किये जाने पर एकता बल दिया।

11.5.2.2 समस्याओं का समाधान :– भारत को आजादी के साथ अनेक समस्याएँ मिली थी। जिनका समाधान करना राष्ट्रीय विकास के लिए बहुत जरूरी था। गरीबी, बेरोजगारी, पिछड़ापन, विषमता, दोषपूर्ण सामाजिक ढांचा इत्यादि मुँह लगाए खड़ी थी। इन सबको ध्यान में रखते हुए पं. नेहरू ने समाधान के प्रयास तेज किये। तब उन्होंने ये पाया कि लोकतांत्रिक समाजवाद इनमें महत्त्वपूर्ण साधन है जो इन समस्याओं का स्थायी समाधान करके राष्ट्र का समग्र विकास सुनिश्चित किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

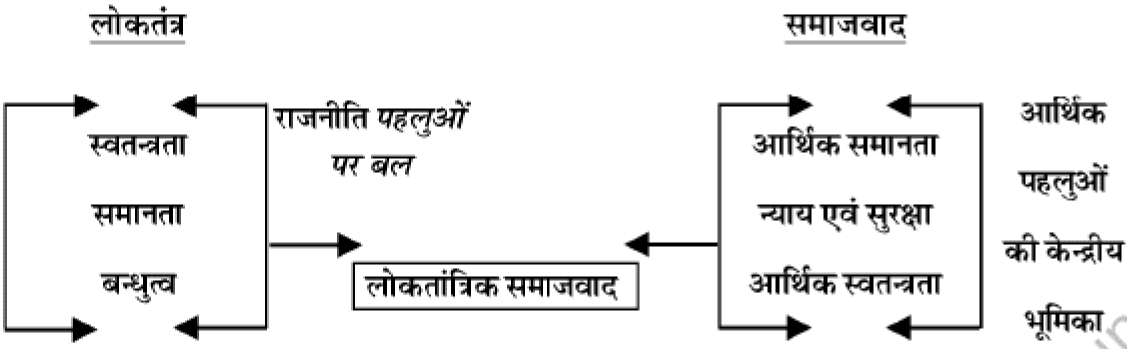

- ❖ **लोकतंत्र की सफलता सुनिश्चित हो सकती है।**
- ❖ **समतावादी समाज की स्थापना सम्भव है।**
- ❖ **विकास के समान अवसर सुलभ हो सकते हैं।**
- ❖ **बुनियादी समस्याओं का समाधान सम्भव हो सकता है।**
- ❖ **आर्थिक क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन।**
- ❖ **भारत को विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक बनने का गौरव दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका लोकतांत्रिक समाजवाद की ही रही है।**

11.5.2.3 समाजवाद के गतिशील स्वरूप का समर्थन :- नेहरू ने अपने इन्दौर भाषण में कहा था कि- ''मैं समाजवाद को एक उन्नतिशील, गतिशील अवधारणा के रूप में देखता हूँ, मैं इसे कठोर अवधारणा के रूप में नहीं देखता। मैं इसे एक ऐसी अवधारणा के रूप में देखता हूँ जिसे प्रत्येक देश में मानव जीवन की परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए। मेरा विश्वास है कि समाजवाद की अनेक किस्में हो सकती है। मैं नहीं समझता हूँ कि मुझे समाजवाद को संक्षिप्त, कठोर शब्दों में परिभाषित करने के लिए क्यों कहा जाना चाहिए ?मैं चाहता हूँ कि भारत में भी सभी व्यक्तियों को अपनी क्षमताओं के अनुसार कार्य के समान अवसर मिलने चाहिए- लोकतांत्रिक ढंग से समाजवाद को लाने में समय तो लगेगा ही।''

11.5.2.4 संवैधानिक साधन :- पं. नेहरू का लोकतांत्रिक एवं संवैधानिक साधनों में अटूट विश्वास था। इसीलिए उनका मानना था कि लोकतांत्रिक समाजवाद की स्थापना साम्यवादियों की भांति हिंसा या क्रांति के द्वारा न होकर शांति पूर्ण तरीकों से होगी। उनका मत था कि केवल संवैधानिक साधन ही वे स्रोत हैं जिनको अपनाकर जिस व्यवस्था को अपनाया जाता है। वह व्यवस्था सर्वमान्य एवं सर्वप्रिय भी होती है और इसके परिणाम भी सार्थक भी प्राप्त होते हैं।

11.5.2.5 समतावादी समाज :- समतावादी समाज वह होता है जिसमें समाज के तमाम लोगों को बिना किसी भेद-भाव के समान अवसर प्रदान किये जाते हैं और इसमें समाज में व्याप्त गरीब-अमीर के बीच की खाई को पाटने का काम किया जाता है। इनकी आवश्यकता भारत को थी। इसी को मद्देनजर रखते हुए पं. नेहरू ने लोकतांत्रिक समाजवाद की अवधारणा को अपनाया।

11.5.2.6 लोक कल्याणकारी राज्य :- लोकतांत्रिक समाजवाद लोक कल्याणकारी राज्य के औचित्य को स्वीकार करता है। जिसमें मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक सम्पन्न होने वाली तमाम जन उपयोगी क्रियाओं का संचालन तत्परता के साथ किया जाता है। इस स्वरूप पर आधारित राज्य में मनुष्य से संबंधित सभी पहलू होते हैं। जो लोकतांत्रिक समाजवाद के मूल उद्देश्य आर्थिक एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा समानता को प्राप्त करने में सहायक होता है।

11.5.2.7 आर्थिक विकास में जनता की भागीदारी पर बल :- पं. नेहरू का मानना था कि कोई भी राज्य अपनी आर्थिक उन्नति जनता की सहभागिता के बिना नहीं कर सकता। अत: जनता की स्वतन्त्र तथा सार्थक भूमिका सुनिश्चित की जाए। आर्थिक योजनाओं का मूलभूत उद्देश्य किसी वर्ग विशेष के हितों को प्रोत्साहन देना नहीं अपितु सारी जनता के कल्याण व जीवन स्तर में उन्नति को सुनिश्चित करना हो।

11.5.2.8 लोकतांत्रिक मूल्यों में दृढ़ विश्वास :- नेहरू का लोकतंत्र के मूल्य या मूल आधार ''स्वतन्त्रता, समानता एवं विश्व

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बन्धुत्व'' में दृढ़ आस्था थी। इसीलिए उनका मत था कि बहुत का समर्थन प्राप्त करके ही समाजवाद लाया जा सकता है। नेहरू समाज का अर्थ किसी को हानि पहुँचाना या किसी चीज को नष्ट करना नहीं। नेहरू ने अपने सभी कार्यों एवं विचारधारा को लागू करने के लिए लोकतांत्रिक ढंग से कानून द्वारा शांतिमय साधनों से सम्पन्न करने की कोशिश की।

11.5.2.9 मिश्रित अर्थव्यवस्था :- पं. नेहरू के लोकतांत्रिक समाजवाद में अर्थव्यवस्था का स्वरूप मिश्रित अपनाया गया। जिसमें एक ऐसा आर्थिक ढांचा कायम किया जाता है जो पूंजीवाद तथा समाजवाद दोनों के गुणों पर आधारित होता है। उनका मत था कि भारत की तत्कालीन परिस्थितियाँ हमें ऐसा करने को प्रेरित करती है क्यों कि केवल पूंजीवाद या समाजवाद को अपनाकर भारत विकास नहीं कर सकता।

11.6 नेहरू के राष्ट्रवाद संबंधी विचार

पं. नेहरू पर ये आरोप लगाए जाते रहे है कि उन्होंने राष्ट्रवाद के स्थान पर अन्तरराष्ट्रीयवाद को ज्यादा तर्जी दी जिससे राष्ट्रवाद की भावना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं था। उन्होंने राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रवाद के लिए सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। नेहरू के शब्दों में- ''मैं एक राष्ट्रवादी हूँ और मुझे राष्ट्रवादी होने पर गर्व है।'' उनके राष्ट्रवाद संबंधी विचार निम्नलिखित हैं-

11.6.1 सीमित उदार व सन्तुलित राष्ट्रवाद का समर्थन

उदारवाद में विश्वास उनके जीवन का मूलमंत्र तथा वे उदार राष्ट्रवादी थे। उसमें अपने राष्ट्रवाद के प्रति भावुक होते हुए भी वह दूसरे राष्ट्रों के प्रति घृणा नहीं करते, वहां आधिपत्य स्थापित करने और उनका शोषण करने की बात तक नहीं सोच पाते। उग्रराष्ट्र के आलोचक थे तथा उसे देश कर चिन्तित भी थे। वे लिखते हैं कि- ''राष्ट्रवाद अपनी जगह पर अच्छा है, लेकिन यह एक अविश्वसनीय मित्र और संदिग्ध इतिहास है। यह कई घटनाओ के प्रति हमारी आंखें मूंद देता है और कभी-कभी सत्य को विद्रूप कर देता है। विशेषकर जब उसका संबंध हमारे देश से हो।'' नेहरू का राष्ट्रवाद उन्हें भारत की स्वतन्त्रता और इससे आगे बढ़कर प्रत्येक राष्ट्र की स्वतंत्रता की प्रेरणा देता है।

11.6.2 स्वतन्त्रता का मूल प्रेरणा स्त्रोत

नेहरू का राष्ट्रवाद साम्राज्यवाद से मुक्ति और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष की प्रेरणा देता है। उन्होंने राष्ट्रवाद को ऐसे संघर्षों की अनुभूति कहा है, जब कभी कोई आपत्ति आती है, तब राष्ट्रवाद जन्म लेता है और राष्ट्रीय मंच पर छा जाता है। अपनी पुस्तक ''डिस्कवरी ऑफ इंडिया'' में वे लिखते हैं कि- ''किसी भी पराधीन देश के लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्रथम तथा प्रधान आकांक्षा होनी चाहिए। भारत के लिए जिसको पाना अतीत की एक धरोहर है उसके लिए यह बात और भी सही थी।''

11.6.3 विविधता में एकता

भारतीय समाज विविधतावाला रहा है, यहाँ अनेक जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र एवं संस्कृति के लोग रहते हैं। ये सब हमारी उदार छवि एवं वसुदैवकुटुम्बकम की भावना के कारण सम्भव हुआ। पं. नेहरू भारत की विविधता में ही एकता के दर्शन करते थे। यह विविधता राष्ट्र की प्रगति और आधारभूत एकता में तब तक कोई बाधा नहीं बन सकती जब तक कि हम भावात्मक दृष्टि से राष्ट्र को समर्पित हैं।

11.6.4 धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद का समर्थन

पं. नेहरू के राष्ट्रवाद का आधार धर्म नहीं वरन् धर्म निरपेक्षता थी। उनका मत था कि किसी धर्म विशेष को राज्य द्वारा विशेष संरक्षण प्रदान नहीं किया जाएगा और नही धर्म के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव किया जाएगा अपितु सभी को विकास के समान अवसर उपलब्ध करवाये जाएँगे। धर्म पर आधारित राष्ट्र से भारत का विकास नहीं हो सकता है।

11.6.5 संकीर्ण राष्ट्रीयता का विरोध

पं. नेहरू ने संकीर्ण राष्ट्रीयता को राष्ट्र एवं अन्तरराष्ट्रीय दोनों ही स्तरों के लिए घातक मानते हैं। उनकी दृष्टि में संकीण राष्ट्रवाद की भावना कुछ समय के लिए जनता में जोश भरकर तत्कालीन राष्ट्रीय हितों को पूरा किया जा सकता है, लेकिन उसके दूरगामी परिणाम राष्ट्रवाद मानवता के लिए घातककारी सिद्ध होते हैं। वे कहते हैं कि कुछ शासकों के द्वारा इस भावना को भड़काकर अपनी जनता को तो एकमंच पर लेकर आ गये लेकिन उन्होंने विश्व को युद्धों की विभिषिका में झोंक दिया। उनका ये भी तर्क था कि कोई भी राष्ट्र की जनता की नस्ल अपने आप में उच्च नहीं होती है। ऐसा नारा देकर जनता की भावना के साथ खिलवाड़ किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.6.6 साम्राज्यवाद का विरोध

नेहरू साम्राज्यवाद पर आधारित राष्ट्रीयता की भर्त्सना करते हैं। वे इसका विरोध करते है कि साम्राज्यवादी किसी राष्ट्र या राष्ट्रों का आर्थिक शोषण करें अथवा अपने राजनीतिक स्वार्थों क पूर्ति के लिए दूसरे राष्ट्रों की एकता को खण्डित कर जातियों में विघटन पैदा करें। नेहरू की ये भावना मानव मात्र की स्वतन्त्रता व कल्याण निहित है। वहां उनमें अन्याय, उत्पीड़न तथा अभाव का निराकरण भी निहित है।

11.6.7 समन्वयवादी दृष्टिकोण

नेहरू का राष्ट्रवाद अतीत वर्तमान व भविष्य के समन्वय पर आधारित है यह उसके अतीत के गौरव भविष्य की सम्भावनाओं तथा वर्तमान के सामर्थ्य के तालमेल पर आधारित है। यह भारत के अतीत की इच्छाओं का वर्तमान में अनुसरण करना चाहता है और उन्हें भविष्य की प्रेरणा बनाना चाहता है।

11.6.8 लोकशक्ति तथा आत्मशक्ति पर आधारित

उन्होंने नये इतिहास की रचना के लिए लोगों का आह्वान किया। उनका आग्रह था कि आइये हम सब मिल कर बढ़े और काम में हाथ बंटाये भारत को अपन हृदय के सर्वोच्च शिखरों पर प्रतिष्ठित करें उसे राष्ट्रों में महान बनाएं, शांति व प्रगति का अग्रदूत बनाएं।

11.7 विश्व समुदाय को पंडित जवाहरलाल नेहरु का योगदान

पंडित जवाहरलाल नेहरु राष्ट्रवाद के साथ-साथ अन्तरराष्ट्रीयवाद के पोषक थे और भारतीय समाज सभ्यता के अनुरूप वसुधैव कुटुम्ब में विश्वास करते थे। उनकी आस्था सत्य, अहिंसा, शांतिपूर्ण अस्तित्व जीयो और जीने दो की आदि में उन्होंने अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में मूल मंत्र प्रदान किए जो भारत की विदेश नीति के आधार स्तम्भ बने हुए हैं। गुटनिरपेक्ष, पंचशील, विश्वशांति, संयुक्त राष्ट्र संघ मे आस्था अन्तरराष्ट्रीय कानून में विश्वास साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का विरोध, रंगभेद उन्मूलन आदि पर बल दिया। उनके द्वारा प्रतिपादित गुटनिरपेक्षता की नीति काफी सार्थक एवं व्यावहारिक साबित हुई। इस नीति से एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरीका के उन देशों को आधार मिला जो लम्बी गुलामी के बाद स्वतंत्र हुए थे। इन्हें विश्व समुदाय के समक्ष अपनी पहचान रखने का मौका मिला। इसके अलावा गुटनिरपेक्ष आंदोलन ने दोनों महाशक्तियों के बीच सन्तुलन बनाए रखा और विश्व को तृतीय विश्वयुद्ध की विभीषिका से बचाया। यह आंदोलन आज भी पूर्णगति के साथ चल रहा है और 118 राष्ट्र इसके सदस्य हैं।

पंचशील की नीति के लिए भी विश्व समुदाय पंडित नेहरु का हमेशा ऋणी रहेगा। इसका सही प्रतिपादन 1954 में पंडित नेहरु ने चीन के प्रधानमंत्री चाऊ ईन लाईव के साथ समझौता करके किया। जो अनाक्रमण, एक दूसरे की सम्प्रभुता का सम्मान करना, आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व में विश्वास करना है। इसको विश्व के अनेक संगठनों ने अपनाया है। नेहरू का यह मानना था कि विश्व की समस्याओं का स्थायी समाधान ढूंढ़ने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी अन्तरराष्ट्रीय संस्था को सुदृढ़ किया जाना चाहिए और अन्तरराष्ट्रीय कानूनों में विश्वास करना चाहिए। उनका यह दृष्टिकोण भी शांति की दिशा में सार्थक साबित हुआ और संयुक्त राष्ट्र संघ, 62 वर्षों से कार्यरत हैं। इस प्रकार पंडित नेहरु ने वसुधैव कुटुम्ब की नीति का अनुसरण किया, जिसकी आज भी विश्व में आवश्यकता है।

11.8 पं. नेहरू का योगदान

नेहरू एक महान् राजनेता तथा भारतीय जनता के हृदय-सम्राट थे। स्वतन्त्रता संग्राम में नेहरू की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इसके बाद उन्होंने 18 वर्ष तक देश का नेतृत्व कर, राष्ट्रीय विकास को नवीन दिशा प्रदान तो की ही साथ में विश्व समुदाय को शांति का इकाई पढ़ाया। नेहरू के विचारों को ही आधार मानकर आज हमारी सम्पूर्ण व्यवस्थाओं का संचालन ही रहा। उनके योगदान को निम्न शीर्षकों द्वारा प्रस्तुत कर सकते हैं-

11.8.1 भारतीय इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या

पं. नेहरू ने अपनी रचनाओं 'भारत की खोज', 'विश्व इतिहास की झलक' तथा 'आत्म कथा' में भारतीय इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। उन्होंने भारत में घटने वाली घटनाओं को विश्व की परिस्थितियों के सन्दर्भ में भी देखने का प्रयास किया। इस दृष्टि से उन्होंने भारतीयों की की अलग रहने और अपने आपको संकीर्ण क्षेत्र में सीमित रखने की प्रवृत्ति की आलोचना की।

अन्तरराष्ट्रीयता के पोषक के रूप में पं. नेहरू

- ❖ ये सभी तत्त्व भारतीय विदेश नीति के मूल आधार हैं।
- ❖ इन विचारों को अपनाने से विश्व में स्थायी शांति की स्थापना की जा सकती है।
- ❖ ये कारक हमें इस बात के लिए प्रेरित करते हैं कि अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं का समाधान पंचनिर्णय और शांतिपूर्ण साधनों से ही किया जा सकता है।
- ❖ साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद के नाम पर जो सदियों तक शोषण एवं अन्याय हो रहा था उस पर अंकुश लग सका है।
- ❖ विश्व के उन देशों को अन्तरराष्ट्रीय रंगमंचों पर पहचान कायम करने का अवसर मिला जो लम्बी गुलामी के बाद द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् स्वतंत्र हुए थे।
- ❖ ये विचार भारत के राष्ट्रीय हितों में अभिवृद्धि करने में सहायक सिद्ध हुए हैं।
- ❖ पं. नेहरु की गुटनिपेक्षता की नीति शीतयुद्ध की बर्फ को पिघलाने में कारगर सिद्ध हुई।
- ❖ ये विचार राष्ट्रों में पारस्परिक विश्वास बहाली को बढ़ाते हैं तथा एक-दूसरे की सम्प्रभुता का सम्मान करना सिखाते हैं।

11.8.2 लोकतंत्र में अटूट आस्था

नेहरू की लोकतंत्र में अटूट आस्था थी। स्वयं को भारतीय जनता के हृदय सम्राट की स्थिति प्राप्त होने पर भी उन्होंने अपने आपको लोकतांत्रिक मान-मर्यादाओ के उल्लंघन से सदैव बचाए रखा। उनके समस्त राजनीतिक व्यवहार में गहरी शालीनता और गरिमा थी। उन्होंने भारत में राजनीतिक स्थायित्व प्रदान किया और भारत में संसदीय लोकतंत्र की नींव को मजबूत करने का कार्य किया।

11.8.3 लोकतांत्रिक समाजवाद का प्रतिपादन

पं. नेहरू की दृष्टि में केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता से भारत की उन्नति नहीं हो सकती। अत: इसके साथ आर्थिक समानता को प्रोत्साहन देने के लिए उन्होंने लोकतांत्रिक समाजवाद का प्रतिपादन किया। यद्यपि ये विचार नेहरू का मौलिक विचार नहीं था परन्तु इसे लोकप्रिय बनाने में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उन्होंने कांग्रेस को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वह समाजवादी ढंग के समाज के आधार पर जनता के आर्थिक तथा सामाजिक कल्याण के लिए साहस पूर्वक प्रयत्न करे। इस तरह भारत की राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों ही नीति पर इसका प्रभाव पड़ा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.8.4 नेहरू का मानवतावाद

नेहरू को मानव स्वभाव की रचनात्मक सम्भावनाओं में विश्वास था और वे वैज्ञानिक मानवतावाद के आदर्श को स्वीकार करते थे। अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में लिखा है कि टैगोर भारत के महानतम् मानवतावादी थे। टैगोर का मानवतावाद इस दार्शनिक विश्वास पर आधारित था कि परमात्मा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। नेहरू के मानवतावाद का आधार इससे भिन्न है। नेहरू और संवेदना युक्त प्रतिक्रिया होती थी, वही उनके मानवतावाद का आधार थी।

11.8.5 अन्तरराष्ट्रवाद

नेहरू की अन्तरराष्ट्रवाद में दृढ़ आस्था थी। इसीलिए उन्होंने संकीर्ण राष्ट्रवाद का विरोध किया। उनका मत था कि युद्ध या संघर्ष से मानवता का भला नहीं हो सकता। इसके लिए हमें एक ऐसी भावना को फैलाना होगा जो विश्व को एक परिवार के रूप में माने। उन्होंने शीतयुद्ध के स्थान पर शांति पूर्ण सहअस्तित्व का विचार प्रस्तुत किया। संयुक्त राष्ट्र संघ को सशक्त बनाने, निशस्त्रीकरण को प्रोत्साहन देने, विश्व समस्याओं का समाधान पंचशील द्वारा करने तथा महाशक्तियों के बीच सन्तुलन बनने पर बल दिया। इसके लिए उन्होंने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की अवधारणा स्थापित की जिससे विश्व शांति को प्रोत्साहन तो मिला ही साथ में नव स्वतन्त्र देशों को भी अपनी पहचान कायम करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

11.8.6 आधुनिक भारत के निर्माता

जवाहरलाल नेहरू को आधुनिक भारत का निर्माता माना जाता है। स्वतन्त्रता के साथ ही भारत को अनेक चुनौतियाँ मिली थी। अत: नेहरू ने इसके समाधान हेतु ठोस कदम उठाए। उनका मुख्य उद्देश्य भारत को हर क्षेत्र में समृद्ध बनाना था। इसके लिए उनके द्वारा पंचवर्षीय योजना शुरू की गई, औद्योगिकरण को प्रोत्साहन देने के लिए बड़े–बड़े कारखानों की स्थापना की गई, कृषि क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने हेतु हरित क्रांति, दूध उत्पादन में वृद्धि हेतु श्वेत क्रांति लायी गई। इसके अलावा उनकी विदेश नीति के कार्यान्वयन का भी आधार भारत का समग्र विकास था ताकि विश्व के अधिक से अधिक देश भारत के नव निर्माण में अपनी भूमिका अदा कर सके।

11.8.7 गुट निरपेक्षता

नेहरू द्वारा अन्तरराष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में गुटनिरपेक्षता की नीति का अनुसरण किया गया। इसका अनुसरण उन परिस्थितियों में किय ।गया था जब सम्पूर्ण विश्व शीतयुद्ध की चपेट में था, विश्व दो खेमों में स्पष्ट रूप से विभाजित हो गया था। एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमरीका के देशों के समक्ष ये चुनौती थी कि वे किस गुट में शामिल हों अत: इन नव स्वतन्त्र राष्ट्रों की गरिमा को बनाये रखने के लिए नेहरू ने गुटनिरपेक्षता की अवधारणा का प्रतिपादन किया। इस अवधारणा का प्रभाव व्यापक रूप से देखा गया और आज भी ये आन्दोलन सफलता के साथ अपने नवीन सौपान तय कर रहा है।

11.8.8 धर्मनिरपेक्षता

नेहरू भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य बनाने के पक्ष में थे। उनका मत था कि भारत में अनेक धर्मों के लोग रहते हैं तो इन स्थितियों में एक धर्म को विशेष स्थान देना अन्य धर्मों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इसी लिए उन्होंने भारतीय संविधान धर्म निरपेक्षता के संबंध में सभी प्रावधान शामिल करवाये ताकि प्रत्येक धर्म के लोग भारत के विकास में अपनी भूमिका अदा कर सकें।

इस प्रकार नेहरू के योगदान का न केवल भारत ऋणी है अपितु विश्व समुदाय भी है। उन्होंने जो विचार प्रस्तुत किये वे निश्चित रूप से व्यापक एवं मानवीय सोच लिए हुए थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन भारत की स्वतन्त्रता एवं विकास के लिए समर्पित कर दिया। उनके विचार आज भी प्रासंगिक है।

11.9 सारांश

इस प्रकार यह कहा जा सकता है —

- ❖ पं. नेहरु के विचार यथार्थ एवं व्यवहार पर आधारित हैं, जिनका प्रमुख उद्देश्य भारत का नवनिर्माण करना तथा उन्नति की राह पर आगे बढ़ाना है।
- ❖ लोकतांत्रिक समाजवाद का विचार प्रतिपादन कर उन्होंने भारत जैसे पिछड़े समाज में लोकतंत्र को सफल बना दिया तथा सामाजिक न्याय तथा समतावादी समाज निर्माण में सहायता मिल सकी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

❖ अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में पं. नेहरु ने ऐसे विचार प्रस्तुत किये जो उस समय आवश्यकता के साथ–साथ आज भी प्रासंगिक हैं। अन्तरराष्ट्रीय राजनीति ऐसे दौर में पहुंच चुकी थी कि सर्वत्र हिंसा, अशांति, तनाव, टकराव का बोलबाला था। ऐसे में पं. नेहरु विश्वशांति के दूत के रूप में उभरकर सामने आये।

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जवाहर लाल नेहरू, ''एन आटोबायोग्रेफी'', जॉन लेन, लन्दन।
2. जवाहर लाल नेहरू, ''डिस्कवरी ऑफ इण्डिया'', दी सिग्नेट प्रेस कोलम्बिया।
3. एम. एन. दास, ''दी पॉलिटिकल फिलॉसॉफी ऑफ जवाहर लाल नेहरू'', जौर्ज एलन एण्ड अनविन लन्दन
4. जे. एस. ब्राइट, ''जवाहरलाल नेहरू'' दी इण्डियन प्रिन्टिंग वर्क्स, लाहौर।
5. जवाहर लाल नेहरू, ''इण्डिया एण्ड दी वर्ल्ड'', एलन एण्ड अनविन लन्दन।
6. वाई. जी. कृष्णमूर्ति, ''जवाहरलाल नेहरू : दी मेन एण्ड हिज आईडियाज'', पापुलर बुक डिपो, बम्बई।
7. जवाहर लाल नेहरू, ''इण्डियाज फ्रीडम'', अनविन बुक्स, लन्दन।

11.11 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. नेहरू के लोकतांत्रिक समाजवाद के सिद्धानत की व्याख्या कीजिए।
2. नेहरू के राष्ट्रवाद संबंधी विचार बताओ।
3. नेहरू ने साम्प्रदायिकता को किस प्रकार समझने का प्रयास किया।
4. नेहरू के योगदान पर प्रकाश डालिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. नेहरू ने साम्प्रदायिकता के निवारण के कौन से उपाय बताये हैं।
2. विश्व समुदाय को नेहरू का क्या योगदान है।
3. नेहरू के मानवतावाद की विवेचना कीजिए।
4. नेहरू की गुटनिरपेक्षता की नीति का क्या उद्देश्य था ?
5. धर्मनिरपेक्षता पर नेहरू के विचार स्पष्ट कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. नेहरू की दो प्रमुख रचनाओं के नाम बताओ।
2. लोकतांत्रिक समाजवाद का अर्थ बताओ।
3. नेहरू ने प्रथम बार कांग्रेस के किस अधिवेशन में भाग लिया।
4. नेहरू प्रथम बार कांग्रेस के किस अधिवेशन में अध्यक्ष चुने गये।
5. ''मैं एक राष्ट्रवादी हूँ, और मुझे राष्ट्रवादी होने पर गर्व हैं।'' ये विचार किसके हैं ?
6. पं. नेहरु का राजनीति में विधिवत प्रवेश कब हुआ ?
7. पंचशील का सिद्धान्त कब एवं किसने प्रतिपादित किया ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 12 डॉ. भीमराव अम्बेडकर

संरचना

12.1 उद्देश्य
12.2 प्रस्तावना
12.3 जीवन परिचय
12.4 डॉ. अम्बेडकर की प्रमुख रखनाएँ एवं कृतियाँ
12.5 संगठन एवं संस्थाओं की स्थापना में योगदान
12.6 अम्बेडकर के सामाजिक विचार
  12.6.1 वर्ण व्यवस्था का विरोध
  12.6.2 जाति का विरोध
  12.6.3 छुआछुत का विरोध
  12.6.4 महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण
  12.6.5 दलित वर्ग के उत्थान के उपाय
12.7 गांधी और कांग्रेस के प्रति दृष्टिकोण
  12.7.1 वर्ण व्यवस्था के संबंध में
  12.7.2 पृथक् प्रतिनिधित्व
  12.7.3 धर्म परिवर्तन के संबंध में
  12.7.4 कांग्रेस एक हिन्दूवादी संगठन
12.8 नीवन समाज व्यवस्था
  12.8.1 स्वतन्त्रता
  12.8.2 समानता
  12.8.3 बन्धुत्व
  12.8.4 प्रजातंत्र
  12.8.5 त्रयी दर्शन
12.9 डॉ. अम्बेडकर का योगदान
  12.9.1 वर्ण एवं जाति व्यवस्था पर प्रहार
  12.9.2 दलितों के मसीहा
  12.9.3 दलितोद्धार के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण
  12.9.4 नारी–उत्थान की दिशा में कार्य
  12.9.5 भारतीय संविधान के निर्माण में प्रमुख भूमिका
  12.9.6 सामाजिक न्याय और सामाजिक लोकतंत्र का प्रतिपादन
12.10 सारांश
12.11 सन्दर्भ ग्रंथ–सूची
12.12 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य डॉ. भीमराव अम्बेडकर के उन विचारों को जानना जो भारत के सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने में क्रांतिकारी सिद्ध हुए तथा जिनके आधार पर उन्हें दलित मसीहा की पद्धति प्रदान की गई। डॉ. अम्बेडकर ने जिस प्रकार समाज के उस वर्ग के कल्याण एवं हितार्थ आवाज बुलन्द की, जो सदियों से दमन, शोषण, अन्याय एवं अत्याचार का शिकार होता आया था, जिसके चलते उन्हें समाज में दोयम दर्जा मिल गया था। अत: अम्बेडकर ने जो प्रयास किये, उन्हें यदि आज दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ लागू किया जाए तो सामाजिक न्याय की स्थापना की जा सकती है। इसके अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे—

- डॉ. अम्बेडकर का जीवन जो संघर्षों एवं चुनौतियों से भरा है,
- उनके सामाजिक विचार जो जाति-व्यवस्था, छुआछूत तथा वर्ण-व्यवस्था के कड़े विरोध पर आधारित है तथा नारी गरिमा पर बल देते हैं,
- डॉ. अम्बेडकर की नवीन समाज-व्यवस्था जो लोकतांत्रिक मूल्यों एवं त्रयी दर्शन पर आधारित हो,
- संविधान निर्माता के रूप में डॉ. अम्बेडकर के योगदान को भी जान सकेंगे।

12.2 प्रस्तावना

भारतीय राजनीतिक चिन्तन के रूप में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का स्थान महात्मा गांधी एवं पं. नेहरू क समकक्ष ही है। अम्बेडकर की पहचान एक ऐसे चिन्तक के रूप में होती है जिसने समाज के उस वर्ग की आवाज को बुलन्द किया जो सदियों से ही अत्याचार, शोषण, अन्याय, भेदभाव का शिकार होता आया। दलित वर्ग से संबंधित होने के नाते अम्बेडकर ने इनके सुधार का बीड़ा उठाया। उनका मुख्य लक्ष्य सामाजिक न्याय की अवधारणा को बल देना था। उस समय भारतीय समाज में प्रचलित कुप्रथाओं पर उन्होंने कड़ा प्रहार किया और इन्हें समाज को विखण्डन करने वाली करार दिया। डॉ. अम्बेडकर ने दलितों को "शिक्षित बनों, संगठित रहो तथा संघर्ष करो।" का आह्वान किया। भारतीय संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में उनकी भूमिका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रही। इस पद पर रहते हुए उन्हें अपने सपनों को साकार करने का अवसर मिला जिसमें वे सफल भी हुए। उन्हीं के अथक प्रयासों से दलितों को समाज की समान धारा में शामिल होने का मौका मिला। अम्बेडकर के दलित प्रेम के कारण उन्हें भारत का अब्राहम लिंकन और मार्टिन लूथर कहा गया।

12.3 जीवन परिचय

भीमराव अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 ई. को इन्दौर के पास महूवा छावनी में हुआ। जन्म के समय उनका नाम भीम सकपाल था। महार जाति, जिसमें डॉ. अम्बेडकर का जन्म हुआ, उसे अछूत समझा जाता था। उनके पिता रामजी सकपाल कबीर के अनुयायी थे। इस कारण उन्होंने जातिवाद को कोई भी स्थान नहीं दिया। सन् 1907 में डॉ. अम्बेडकर ने हाई स्कूल पास की। इसके बाद उन्होंने बम्बई के एलफिन्स्टन कॉलेज में प्रवेश लिया। बड़ौदा के राजा गायकवाड़ द्वारा प्रदान की गई छात्रवृत्ति से उन्होंने 1912 ई. में कॉलेज शिक्षा पूर्ण 1913 ई. को अमरीका के 'कोलम्बिया विश्वविद्यालय' में प्रवेश लिया। 1915 ई. को अर्थशास्त्र में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1917 ई. को कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने उन्हें पी-एच. डी. की उपाधि प्रदान की। इसके बाद वे लन्दन आ गए और यहां उन्होंने विधि का अध्ययन करने के लिए 'दी ग्रेज इन' और अर्थशास्त्र के अध्ययन केलिए विश्व प्रसिद्ध संस्थान 'लन्दन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स एण्ड पॉलिटिकल साइन्स' में प्रवेश लिया। अप्रैल 1923 ई. में बम्बई में वकालत प्रारम्भ की। दलित वर्ग की समस्याओं पर लोगों को संगतित करने, 20 जुलाई 1924 ई. को 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की। उन्होंने सन् 1930 ई. और 1931 ई. में लन्दन में आयोजित प्रथम एवं द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में दलितों के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। सम्मेलन में और उसके बाद भी डॉ. अम्बेडकर ने इस बात पर बल दिया कि 'दलितों को विधान परिषदों में हिन्दू समाज से पृथक् प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाना चाहिए।'

ब्रिटिश सरकार ने उनके इस सुझाव को स्वीकार कर मेकडोलाड का साम्प्रदायिक पंचाड (1932) में भारत भेजा गया, जिसका महात्मा गाँधी ने कड़ा विरोध किया और इसे अंग्रेजी की फूट डालो और राज करो की नीति का हिस्सा माना। अन्त में अम्बेडकर व गाँधीजी के मध्य एक समझौता हुआ, जो पूना-एक्ट के नाम से जाना जाता है, जिसमें गांधीजी अम्बेडकर को अपने पृथक् निर्वाचन की मांग वापस लेने के लिए तैयार कर लेते हैं परन्तु कुछ इतिहासकारों का मत है कि सम्भवतया इस समझौते में ही यह तय हो गया कि स्वतन्त्रता के बाद संविधान के माध्यम से दलितों को आरक्षण दिया जाएगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

डॉ. अम्बेडकर प्रबल देशभक्त और भारत के राष्ट्रीय एकीकरण के समर्थक थे, लेकिन सार्वजनिक जीवन में महात्मा गांधी और कांग्रेस के साथ हमेशा से मतभेद बने रहे। मतभेद का एक आधार तो दलितों के लिए पृथक् प्रतिनिधित्व का प्रश्न था। इसके साथ ही डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि ''उन व्यक्तियों तथा संस्थाओं को अछूतों की बात कहने का हक नहीं हो अछूत नहीं है।'' सन् 1936 ई. में डॉ. अम्बेडकर ने 'इण्डिपेण्डेण्ट लेबर पार्टी' की स्थापना की। इस राजनीतिक संस्था ने दलित वर्ग, मजदूर व किसानों की अनेक समस्याओं को लकर कार्य किये। बम्बई प्रदेश में इस पार्टी ने सन् 1957 ई. का चुनाव लड़ी। इसने अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षित 15 में से 13 तथा 2 सामान्य सीटों पर विजय प्राप्त की। 7 अगस्त 1942 ई. को उन्हें गवर्नर जनरल की परिषद का सदस्य मनोनित किया गया। इसी दौरान उन्होंने इण्डिपेण्डेण्ट लेबरपार्टी को 'अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ' में बदल दिया।

कांग्रेस के साथ तीन मतभेद होने के बावजूद कांग्रेस नेता विशेषतया नेहरू और पटेल भी डॉ. अम्बेडकर की प्रतिभा के कायल थे। अत: कांग्रेस ने सहयोग देकर संविधान सभा का सदस्य निर्वाचित करवाया। संविधान सभा में उन्हें 'प्रारूप समिति' का अध्यक्ष बनाकर महत्त्वपूर्ण दायित्व सौंपा गया। भारतीय संविधान के निर्माण में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इसके चलते संविधान पर उनकी व्यक्तिगत सोच का व्यापक प्रभाव पड़ा और संविधान में अछूतों के कल्याण एंव उत्थान हेतु अनेक प्रावधान करवाये।

3 अगस्त, 1949 ई. को डॉ. अम्बेडकर को भारत सरकार का कानून मंत्री बना दिया गया। कानून मंत्री के रूप में उनका सबसे अधिक प्रभाव कार्य 'हिन्दू कोड बिल' था। इस कानून का उद्देश्य था, ''हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में सुधार।'' तलाक की व्यवस्था और स्त्रियों के लिए संपत्ति में हिस्सा। इस कानून की कुछ प्रमुख बातें थी। पं. नेहरू के साथ मतभेद के चलते 27 सितम्बर, 1951 ई. को डॉ. अम्बेडकर ने मंत्रिमण्डल से त्याग पत्र दे दिया। 1955 ई. उन्होंने 'भारतीय बुद्ध महासभा' की स्थापना की तथा भारत में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार का बीड़ा उठाया। 6 दिसम्बर, 1956 ई. को उनका देहावसान हो गया।

12.4 डॉ. अम्बेडकर की प्रमुख रचनाएँ एवं कृतित्व

1. ''रूपये की समस्या-इसकी उत्पत्ति और समधान'' (1923)
2. जाति का नाश (1936)
3. थॉट्स ऑन पाकिस्तान (1941)
4. कांग्रेस और गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया है? (1945)
5. पाकिस्तान या भारत वर्ष का विभाजन (1946)
6. अछूत, वे कौन थे? और अछूत कैसे बनें? (1948)
7. भाषायी राज्यों पर विचार
8. बुद्धा एण्ड हिज धम्मा (1957)
9. हू वर दि शुद्राज? (1946)
10. स्टेट एण्ड माइनॉरिटिज (1948)
11. दि राइज एण्ड फॉल ऑफ दि हिन्दू वूमैन
12. गांधी एण्ड गांधीज्म

12.5 संगठन एवं संस्थानों की स्थापना में योगदान

1. ''बहिष्कृत हितकारिणी सभा'' 20 जुलाई, 1924
2. ''इनडिपेण्डेन्ट लेबर पार्टी ऑफ इण्डिया'' अक्टूबर 1936
3. ''अनुसूचित जाति फंडरेशन'' 1942
4. ''पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी'' 8 जुलाई, 1945
5. ''भारतीय बुद्ध महासभा'' 1955

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.6 अम्बेडकर के सामाजिक विचार

एक बार डॉ. अम्बेडकर ने एक पत्रकार से कहा था, ''मेरे दु:ख-दर्द और मेहनत को तुम नहीं जानते, जब सुनोगे, रो पड़ोगे।'' अपमान के इस दौर से गुजरने के पश्चात् उन्होंने दलितोद्धार का संकल्प धारण किया। उस समय भारतीय समाज में दलितों (शुद्रों) की स्थिति बहुत दयनीय थी। लम्बे समय से उनके साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया जा रहा था। उससे इस समुदाय को इतना पिछड़ा दिया कि वे समाज की सामान्य धारा से कट चुके थे। अत: डॉ. अम्बेडकर ने इनकी स्थिति में सुधार लाने एवं सामाजिक न्याय की अवधारणा को मजबूत करने के लिए हर सम्भव कोशिश की।

डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचार निम्नलिखित है-

12.6.1 वर्ण व्यवस्था का विरोध

वेदों एवं वैदिक काल में भारतीय समाज की व्यवस्था का सफल संचालन करने हेतु वर्ण व्यवस्था को अपनाया गया था। वर्ण व्यवस्था का आधार मनुष्य का कर्म हुआ करता था। इसके अलावा वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य समाज को चार भागों में बांटना नहीं था। लेकिन धीरे-धीरे इस व्यवस्था पर दोष हावी हो गया और समाज को संगठित रूप देने वाली व्यवस्था समाज के लिए अभिशाप बन गयी। अम्बेडकर ने इसका व्यापक विरोध किया और इसे अवैधानिक, अव्यवहारिक, अन्यायपूर्ण माना। उनके अनुसार वर्ण का निर्धारण व्यक्ति की क्षमता के अनुसार होना चाहिए। अम्बेडकर का मत है कि शुद्र वर्ग को जान बुझकर शिक्षा ग्रहण करने एवं शास्त्र ग्रहण करने से वंचित किया गया है ताकि वे अन्याय एवं अत्याचार का विरोध नहीं कर सके। ऐसा समाज के कुछ स्वार्थी तत्त्वों ने किया है। इसलिए अम्बेडकर ने शुद्र वर्ग को जागरूक एवं संगठित होने की आवश्यकता को स्वीकार किया।

12.6.2 जाति का विरोध

वर्ण व्यवस्था में जब दोष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया तब उसकी परिणिति जाति के रूप में हुई। जाति के कारण हमारा समाज पूर्णतया दूषित हो गया है। डॉ. अम्बेडकर ने जाति प्रथा की जड़ों को काफी पुरानी माना है। जाति प्रथा का विकास समुदाय के विभिन्न लोगों द्वारा खान-पान, रहन-सहन की आदतों व पद्धतियों में भिन्नता के आधार पर हुआ। धीरे-धीरे विशिष्ट रीति-रिवाजों को कठोर आचार संहिताओं का रूप दे दिया गया। उनका पालन न करने वाले लोगों को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। डॉ. अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था में ऊँच-नीच के लिए ब्राह्मणवाद को उत्तरदायी माना तथा ब्राह्मण भारतीय समाज में जाति प्रथा को मजबूत बनाये रखने पर जोर देते हैं। डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में जाति प्रथा ने भारतीय समाज में अनेक विकृतियाँ पैदा कर दी है।

❖ **जाति व्यवस्था के घातक प्रभाव :-** डॉ. अम्बेडकर के अनुसार जाति प्रथा के बढ़ते प्रभाव ने भारतीय समाज को तहस-नहस कर दिया है और समाज का मूल स्वरूप इतना विकृत हो गया है कि समाज नरक बन कर रह गया है। समाज में सर्वत्र अन्याय, अत्याचार, शोषण का बोल बाला हो गया है। व्यक्ति ने मूल आदर्श को छोड़कर अन्धविश्वासों को अपना लिया है जिसके कारण उनकी सोच संकुचित हो गई है। वे जाति व्यवस्था रूपी मकड़ी के जाल में इस तरह फंस गये हैं कि निकलने के प्रयास के नाम पर ओर अधिक जकड़ते जा रहे है। यदि भारतीय समाज का सर्वागीण विकास करना है तो जाति व्यवस्था से ऊपर उठकर एक व्यापक दृष्टिकोण को अपनाना होगा। इसके लिए उन्होंने एक वर्गीय व्यवस्था, अन्तरजातीय विवाह को अपनाना होगा और अन्धविश्वास, कठोर रीतिरिवाजों से अपने आपको मुक्त करना होगा।

12.6.3 छुआछूत का विरोध

अम्बेडकर छुआछूत को अमानवीय, अनुचित एवं अन्याय पूर्ण मानते थे। यह हिन्दू समाज के उत्थान में सबसे बड़ी बाधा है। समाज के अन्य ब्राह्मणवादी तत्त्वों ने इस व्यवस्था को अपनाकर अपना हित साध रहे हैं। अस्पृश्यता निवारण को आवश्यक मानते थे। इसके लिए राज्य द्वारा व्यवस्था की जानी चाहिए। अस्पृश्य समझे जाने वाले लोगों को सरकारी नौकरियों में आरक्षण, संसद और विधानमण्डल में सीटों का आरक्षण, शैक्षिक विकास हेतु उन्हें सुविधा उपलब्ध करवायी जाएं ताकि उनका विकास एवं उन्नति हो सके।

12.6.4 स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण

अम्बेडकर ने स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर लगे प्रतिबन्ध का विरोध किया। उनकी मान्यता थी कि स्त्रियों की शिक्षा और सामाजिक क्षेत्रों में पुरुषों के समान अवसर प्रदान किये जाए। हिन्दू समाज में संपत्ति के उत्तराधिकार नि:सन्तान होने पर किसी पुत्र या पुत्री की गोद लेने पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पुन: विवाह आदि के सन्दर्भ में स्त्रियों के साथ भेदभाव आदि का अंत किया जाए। इसीलिए डॉ. अम्बेडकर कानून मंत्री के पद पर रहकर इस दिशा में सार्थक कदम उठाए और हिन्दू कोड बिल पास करवाया।

12.6.5 दलितों के उत्थान के उपाय

अम्बेडकर ने दलितों से आग्रह किया, शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो। अम्बेडकर का मत था कि हिन्दू समाज में दलित वर्गों की हीन स्थिति उच्च समझे जाने वाले वर्गों के स्वार्थी दृष्टिकोण के कारण बनी है। दलितों के उत्थान के लिए निम्न सुझाव दिये–

12.6.5.1 **हिन्दू समुदाय की मूल मान्यताओं में क्रांतिकारी परिवर्तन :–** इसके लिए हिन्दू धर्म को गतिशील व मानवीय स्वरूप दिया जाना चाहिए।

12.6.5.2 **जाति प्रथा के स्वरूप में परिवर्तन :–** अम्बेडकर के मतानुसार जाति प्रथा की रीढ़ की हड्डी परिवार है। जाति प्रथा का उन्मूलन तभी होगा जब अन्तर जातीय विवाह व विभिन्न वर्गों के बीच सहभोज आरम्भ किये जायेंगे।

12.6.5.3 दलितों को संगठित व जागरूक करने की आवश्यकता।

12.6.5.4 दलित वर्गों के लिए संसद व विधान मण्डल में पृथक् प्रतिनिधित्व।

12.6.5.5 अम्बेडकर दलित वर्गों की भागीदारी के लिए नौकरियों में भी आरक्षण की सिफारिश करते थे।

12.6.5.6 शिक्षा के क्षेत्र में विशेष सुविधाएं दी जाएं।

12.6.5.7 **धर्म परिवर्तन :–** दलित वर्ग के उत्थान के लिए हिन्दू धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म ग्रहण करने की सिफारिश की।

12.6.5.8 **औद्योगीकरण :–** अम्बेडकर के अनुसार औद्योगीकरण के द्वारा भी दलितों का उत्थान संभव है। औद्योगीकरण से लोगों को रोजगार प्राप्त होंगे।

इस प्रकार डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अपना सम्पूर्ण जीवन दलितों के उत्थान हेतु समर्पित कर दिया। उन्होंने अपने उद्देश्यों एवं इच्छाओं को अमलिय जामा पहनाने के लिए हर सम्भव प्रयास किये। इसके अन्तर्गत दलितों को संविधान में विशेष स्थान दिलाने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

12.7 गांधी और कांग्रेस के प्रति दृष्टिकोण

अम्बेडकर दलितोद्धार के लिए समर्पित थे और उनके सार्वजनिक जीवन में प्रवेश से पहले महात्मा गांधी दलितोद्धार की दिशा में कार्य कर रहे थे। लेकिन अम्बेडकर को गांधी एवं कांग्रेस की गतिविधियों एवं प्रयासों पर विश्वास नहीं था। इस कारण अम्बेडकर का गांधी जी से मतभेद था। मतभेद के विवादास्पद प्रसंग निम्न थे–

12.7.1 वर्णव्यवस्था के संबंध में

गांधी हिन्दू समाज में विद्यमान ऊँच–नीच की भावना को समाप्त करना, दलितों की स्थिति में सुधार लाना चाहते थे लेकिन वे वर्णव्यवस्था बनाये रखना चाहते थे जबकि अम्बेडकर दलितों की अमानवीय स्थिति का मूल कारण वर्णव्यवस्था को मानते थे। उनका तर्क था कि दलितों की इस स्थिति के लिए वर्णव्यवस्था ही जिम्मेदार है। जिसकी आड़ में समाज के चन्द स्वार्थी तत्त्वों ने दलितों का शोषण किया है। अत: उसका पूर्ण निवारण होना चाहिए।

12.7.2 पृथक प्रतिनिधित्व

महात्मा गांधी किसी भी कीमत में हिन्दू धर्म की एकता भंग करना नहीं चाहते थे और भंग करने वाले प्रत्येक कदम का कड़ा विरोध किया। इसलिए उन्होंने दलितों एवं अन्य हिन्दूओं के पृथक प्रतिनिधित्व का विरोध किया लेकिन डॉ. अम्बेडकर अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ से ही दलितों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व की आवाज बुलन्द कर रहे थे। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में गांधी एवं अम्बेडकर के बीच मतभेद का मूल कारण ही यही था। अम्बेडकर का मत था कि जब तक दलितों का पृथक प्रतिनिधित्व नहीं होगा तब तक उन्हें उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल सकता और न ही उनकी स्थिति में सुधार आ सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.7.3 धर्म परिवर्तन के संबंध में

1956 ई. में डॉ. अम्बेडकर ने दलितों से आह्वान किया कि वे हिन्दू धर्म को त्याग कर बौद्ध धर्म ग्रहण कर ले क्योंकि हिन्दू धर्म में उनका कोई स्थान नहीं है और न ही हिन्दू धर्म में रहकर वे अपनी स्थिति में सुधार ला सकते हैं। जिसका गांधीजी ने विरोध किया और कहा कि समस्या का समाधान एवं दलितों का उत्थान धर्म परिवर्तन करने से नहीं होगा। इससे हिन्दू धर्म की एकता को खतरा ही उत्पन्न होगा।

12.7.4 कांग्रेस एक हिन्दूवादी संगठन

अम्बेडकर ने न केवल महात्मा गांधी की विचारधाराओं का विरोध किया अपितु भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की विचारधाराओं का विरोध किया। एक अन्य प्रसंग में उनका तर्क था कि– कांग्रेस हिन्दूओं का संगठन है जिसकी आर्थिक सहायता पूंजीपति हिन्दू हैं। इनका कार्य भारत को स्वतन्त्र कराना नहीं बल्कि अंग्रेजों से शासन की बागडोर अपने हाथ में लेना हैं।

12.8 नवीन समाज व्यवस्था

डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक चिन्तन के मूल तत्त्व स्वतन्त्रता, समता, भ्रातृत्व, जनतंत्र आदि हैं। जिसमें मानवीय गौरव की ध्वनि गूंजती है। ये बौद्धिक प्रेरणा और मानव सेवा के स्रोत हैं। इन्हीं के आधार पर उन्होंने भारत में एक नवीन समाज व्यवस्था की बात कही, जो वर्ण, जाति तथा अस्पृश्यता से भिन्न मानववादी मूल्यों को श्रेष्ठ मानती है। उनके नवीन समाज व्यवस्था के विचार निम्न लिखित हैं–

12.8.1 स्वतन्त्रता

अम्बेडकर का मानना था कि स्वतन्त्रता एवं स्वस्थ जीवन उसी समय सुलभ होगा, जब व्यक्ति को अपने मनपसन्द धन्धे करने की स्वतनत्रता हो। न केवल इतना हो, व्यक्तिक स्वतन्त्रता सामाजिक-आर्थिक तंत्र की कार्य-कुशलता को बढ़ाने में भी सहायता होती है। इस तरह अम्बेडकर के नवीन समाज में कुछ सीमा तक स्वतन्त्र आर्थिक क्रियाओं का स्थान भी होगा। इस प्रकार जैसा कि वह सोचते थे, यदि व्यक्तियों की शक्तियों को प्रभावशाली तथा सक्षम ढंग से उपयोग में लाया जाए, तो निश्चित ही स्वतंत्रता का अधिकार लाभदायक सिद्ध होगा। अपने नये समाज में, डॉ. अम्बेडकर ने राजनीतिक स्वतन्त्रता-दल बनाने, चुनाव लड़ने, सार्वजनिक पद ग्रहण करने का प्रबल समर्थक किया। स्वतन्त्रता के अभाव में व्यक्ति एवं समाज का चहुँमुखी विकास नहीं हो सकता। जिसके तहत प्रत्येक नागरिक को अपने धर्म के द्वारा बताए गये रास्ते पर चलने की स्वतन्त्रता, धार्मिक संस्था बनाने और धर्म के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जाए।

12.8.2 समानता

डॉ. अम्बेडकर समता के सिद्धान्त को वैचारिक एवं व्यावहारिक दोनों रूपों में महत्त्व देते हैं। उन्होंने यह माना कि सब मुनष्य समान पैदा नहीं होते, तो भी वह वैचारिक समता को महत्त्वपूर्ण समझते थे। समता का आदर्श, बिल्कुल काल्पनिक हो सकता है, फिर भी व्यावहारिक रूप में समता की भावना को प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अंग होना चाहिए।

12.8.3 बन्धुत्व

डॉ. अम्बेडकर का मत है कि आदर्श समाज प्रगतिशील होना चाहिए। समाज के विभिन्न लोगों के बीच सम्पर्क के ऐसे बहुविद्य और विर्विवाद बिन्दु होने चाहिए, जहां के अन्य रूपों में भी संवाद हो सके। दूसरे शब्दों में समाज के भीतर सम्पर्क का सर्वत्र प्रसार होना चाहिए। इसी को भ्रातृत्व कहा जाता है और यह प्रजातंत्र का दूसरा नाम है।

12.8.4 प्रजातंत्र

डॉ. अम्बेडकर के नवीन समाज का मूलाधार प्रजातंत्र है। उन्होंने कहा कि ''प्रजातंत्र, सरकार का एक स्वरूप मात्र नहीं है। यह वस्तुत: साहचर्य की स्थिति में रहने का एक ढंग है, जिसमें सार्वजनिक अनुभव का समवेत रूप से संप्रेषण होता है। प्रजातंत्र का मूल है, अपने साथियों के प्रति आदर और मानव की भावना इस तरह भ्रातृत्व एवं प्रजातंत्र के बीच घनिष्ट संबंध स्थापित करने का प्रयास

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

किया गया है। एक अच्छी समाज व्यवस्था के लिए वह एक वैधानिक आधार भी चाहते थे। प्रजातांत्रिक समाज का आधार काल्पनिक न होकर वास्तविक होना चाहिए ताकि समाज में समानता की अवधारणा सुदृढ़ हो सके तथा समाज में विद्यमान साधनों का सही बंटवारा हो सके अन्यथा प्रजातंत्र अन्याय का साधन बन सकता है।''

12.8.5 त्रयी दर्शन

डॉ. अम्बेडकर का समस्त सामाजिक चिन्तन कुछेक त्रयी आदर्शों में अन्तर्निहित रहा है। अपने प्रारम्भिक सामाजिक जीवन से ही वह स्वतंत्रता, समता तथा भ्रातृत्व और शिक्षा, संगठन एवं आन्दोलन के दो त्रयी आदर्शों को अछूतों के बीच उनके सामाजिक उत्थान और मानवीय गौरव के लिए प्रसारित करता रहे। इन्हीं के साथ डॉ. अम्बेडकर ने एक अन्य त्रयी आदर्श– बुद्ध, धम्म, एवं संघ को भी जोड़ा। इन तीनों त्रयों आदर्शों का समन्वित रूप उनके सामाजिक चिन्तन का मूलाधार है, जो बड़ा ही व्यपाक और कल्याणकारी है। इन आदर्शों से उद्‌भूत होने वाले मूल्य केवल दलित–अछूतों तक ही सीमित नहीं है अपितु सभी मानव प्राणी के साथ सीधा संबंध है।

इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर के नवीन समाजदर्शन वर्ण, जाति, छुआछूत, भेदभाव, शोषण, अन्याय तथा उत्पीड़न का विरोध करता है और मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाकर स्वतंत्रता, समता, भ्रातृत्व, शिक्षा, संगठन, संघर्ष, ज्ञान, कर्त्तव्य और एकता का समर्थक करते हैं।

12.9 डॉ. अम्बेडकर का योगदान या देन

20वीं शताब्दी में जिन सुधारकों एवं चिन्तकों ने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया था। उनमें डॉ. अम्बेडकर का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने मूलतय सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्रोत्साहन की आवश्यकता को स्वीकार किया। इसी के चलते उन्हें दलितों का मसीहा कहा गया। उन्होंने अपना अधिकांश ध्यान दलितों के उत्थान में लगाया ताकि उन्हें समाज में अन्यों के समक्ष दर्जा मिल सके। उनके योगदान को हम निम्नलिखित शीर्षकों से प्रस्तुत कर सकते हैं–

12.9.1 वर्ण एवं जाति व्यवस्था पर प्रहार

डॉ. अम्बेडकर ने सर्वप्रथम वर्ण एवं जाति व्यवस्था पर प्रभावी ढंग से प्रहार किया और इन्हें अवैज्ञानिक, अव्यावहारिक, अन्यायपूर्ण और गरिमाहीन करार दिया। समाज में दलितों की दुर्दशा के लिए उन्होंने इसी व्यवस्था को जिम्मेदार ठहराया। उनका तर्क था कि इन्हीं के चलते समाज अनेक खण्डों में विभाजित हो गया है जो चिन्ता जनक है। अत: उन्होंने लोगों को इनसे होने वाली हानियों से संचेत किया।

12.9.2 दलितों के मसीहा

डॉ. अम्बेडकर दलितोंद्धार के लिए पूर्णत्या समर्पित थे, यह उनकी जीवन का सर्वप्रमुख संकल्प था। उन्होंने दलितों मे चेतना उत्पन्न की, उन्हें संगठित किया, उन्हें स्वर्णों के अत्याचारों का विरोध करने के लिए प्रेरित किया, उन्हें स्वर्णों को यह समझाने का प्रयत्न किया कि दलितों के प्रति अन्याय की स्थिति को बनाए रखना हिन्दू समाज के लिए घातककारी होगा।

12.9.3 दलितोद्धार के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण

डॉ. अम्बेडकर ने दलितोद्धार के प्रति व्यावहारिक तथा यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया। दलितों की खराब स्थिति के लिए उन्होंने समाज के उच्च वर्गों को जिम्मेदार ठहराया और दलितों के समक्ष इस बात पर बल दिया कि वे अपनी बुरी आदतों एवं हीनता की भावना का त्याग कर आत्म सम्मानपूर्ण जीवन की और प्रवृत्त होना चाहिए। उनके सुझाव थे : दलित शिक्षत हों, संगठित हों और अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष करें। उनका मत था कि दलित वर्ग अपना समय और क्षमताएं मन्दिर प्रवेश जैसी निरर्थक बातों में व्यय करने की अपेक्षा उच्च शिक्षा, अच्छे रोजगारों में प्रवेश पाने तथा आर्थिक स्थिति को सुधारने के प्रयत्नों में लगायेंगे तो निश्चित ही उनके सामाजिक स्तर में वृद्धि होगी। इसके लिए उन्होंने भारत के औद्योगीकरण का सुझाव दिया।

12.9.4 नारी–उत्थान की दिशा में कार्य

भारत के सभी वर्णों में नारी की स्थिति बहुत ही खराब रही है तथा अम्बेडकर ने उनके उत्थान के लिए भी प्रयत्न किये। अम्बेडकर ने नारी की इस स्थिति के लिए '**मनुस्मृति**' को उत्तरदायी माना है। उनका मत था कि नारी की स्वतन्त्र भूमिका होनी चाहिए। भारतीय परिवार व्यवस्था में स्त्रियों को पुरुषों के अधीन तथा उन पर निर्भर समझे जाने की प्रवृत्ति के प्रबल विरोधी थे। उनकी मान्यता थी कि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्त्रियों की शिक्षा और सामाजिक जीवन के अन्य सभी क्षेत्रों में पुरषों के समान अवसर प्राप्त होने चाहिए। हिन्दू समाज में स्त्रियों को सम्पत्ति के उत्तराधिकार, निसन्तान होने पर गोद लेने का अधिकार और पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था। अम्बेडकर ने स्त्रियों के प्रति विद्यमान इन भेदभाव पूर्ण स्थितियों का अन्त करना आवश्यक माना तथा इस उद्देश्य से उन्होंने ''हिंन्दू कोड बिल'' तैयार किया तथा उसे संसद से पारित करवाने का प्रयास किये।

12.9.5 भारतीय संविधान के निर्माण में प्रमुख भूमिका

भारतीय संविधान के निर्माण में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। यद्यपि वे कांग्रेस के विरूद्ध थे लेकिन उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें न केवल संविधान सभा का सदस्य बनाया अपितु प्रारूप समिति का अध्यक्ष भी बनाया गया। संविधान के दर्शन एवं प्रावधानों पर उनका सर्वाधिक प्रभाव देखा जा सकता है। उनके नेतृत्व में देश के लिए एक ऐसे संविधान का निर्माण हुआ, जो शांतिकाल और संकटकाल दोनों ही परिस्थितियों में राष्ट्र की एकता को बनाए रखने में समर्थ हैं।

12.9.6 सामाजिक न्याय और सामाजिक लोकतंत्र का प्रतिपादन

अम्बेडकर ने भारतीय समाज की समस्त स्थिति को भली भांति समझा था। उन्होंने सामाजिक लोकतंत्र को राजनीतिक लोकतंत्र की पूर्व शर्त के रूप में प्रतिपादित कर भारत में लोकतंत्र की सार्थक व्याख्या एवं परिकल्पना प्रस्तुत की। संविधान की प्रस्तावना और अन्य भागों में 'सामाजिक-आर्थिक न्याय' का जो संकल्प व्यक्त किया गया है, उसमें डॉ. अम्बेडकर के प्रयत्नों का महान योग है।

12.10 सारांश

अम्बेडकर ने एक से अधिक दलित वर्ग की मुक्ति को देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता की तुलना से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया था। इस कारण अम्बेडकर के कुछ आलोचक उनकी राष्ट्रवादिता और देश प्रेम पर शंका करते थे लेकिन वस्तुत: ऐसा सोचने का कोई आधार नहीं है। यदि किसी देश में लगभग 20 प्रतिशत जनसंख्या अन्याय और अमानवीय व्यवहार को भुगत रही हो तो उस देश के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं रह जाता। अम्बेडकर ने इस सत्य को समझा तथा उनके द्वारा किया गया दलितों की मुक्ति का कार्य इस देश के प्रति अद्वितीय सेवा है, जिसे युगों तक याद किया जाता रहेगा।

- ❖ डॉ. अम्बेडकर के विचारों से समाजवादी समाज की स्थापना की जा सकती है।
- ❖ उन्होंने दलितों के कल्याण की बात कर न केवल इन्हें समाज की समानधारा में जोड़ा अपितु भारतीय समाज को एकता की राह पर आगे बढ़ाया।
- ❖ संविधान को लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी, लोककल्याणकारी ढांचा प्रदान करवाने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।
- ❖ हिन्दू कोड बिल को तैयार कर उन्होंने नारी स्वाभिमान, नारी सम्मान तथा नारी के गौरव को बढ़ाने का कार्य किया।

12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वी.पी. वर्मा, ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक चिन्तक'', लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. डॉ. पुरुषोत्तम नागर ''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तक'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
3. धर्मचन्द्र जैन/कैलाश चन्द्र दरोगा, ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक'', नेशनल पब्लिशिंग, दिल्ली।
4. डी.आर. जाटव, ''डॉ. अम्बेडकर-व्यक्तित्व एवं कृर्तत्त्व'', समता साहित्य सदन, जयपुर।
5. धनजय कीर, ''डॉ. अम्बेडकर-लाइफ एण्ड मिशन'', पॉपूलर प्रकाशन, बम्बई।
6. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, ''सम्पूर्ण वाडमय खण्ड'', भारत सरकार, नई दिल्ली।
7. बी.आर. अम्बेडकर, ''हू वर द शुद्राज'',थैकर एण्ड कम्पनी, बम्बई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8. बी.आर. अम्बेडकर, ''स्टेट्स एण्ड मॉइनॉरिटिज'', थैकर एण्ड कम्पनी, बम्बई।
9. बी.आर. अम्बेडकर, ''व्हॉट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव इन टू द अण्टचेबिल्स'', थैकर एण्ड कम्पनी, बम्बई।
10. डी.आर. जाटव, ''डॉ. अम्बेडकर के त्रयी-सिदान्त'', समता साहित्य सदन, जयपुर।
11. डी.आर. जाटव, ''सामाजिक न्याय का सिद्धान्त'', समता साहित्य सदन, जयपुर।
12. के.एस. चलम, ''रिलेवेन्स ऑफ अम्बेडकर रिज्म इन इण्डिया'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।

12.12 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अम्बेडकर के दलितोद्धार संबंधी विचारों पर प्रकाश डालिए।
2. अम्बेडकर की नवीन समाज व्यवस्था का उल्लेख कीजिए।
3. अम्बेडकर के योगदान की समीक्ष कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अम्बेडकर का गांधी जी से मतभेद के मूल कारण क्या थे ?
2. दलितो उत्थान के लिए अम्बेडकर ने क्या उपाय बताए हैं ?
3. अम्बेडकर का त्रयी-दर्शन क्या है ?
4. बौद्ध धर्म के प्रति डॉ. अम्बेडकर का क्या दृष्टिकोण था ?
5. नारी उत्थान की दिशा में अम्बेडकर का क्या योगदान रहा ?
6. अम्बेडकर ने वर्ण व्यवस्था का विरोध क्यों किया ?
7. अम्बेडकर के कांग्रेस के प्रति दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ''शिक्षित बनो, संगठित रहो तथा संघर्ष करो'' ये विचार किसके और किसके लिए दिये गये ?
2. अम्बेडकर के बचपन का नाम क्या था ?
3. अम्बेडकर ने किस पार्टी की स्थापना की ?
4. हिन्दू कोड बिल लाने का श्रेय किसे जाता है ?
5. अम्बेडकर के सामाजिक दर्शन का श्री क्या है ?
6. संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष कौन थे ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई - 13 एम.एन.राय

संरचना

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 जीवन-परिचय

13.4 राय की रचनाएँ

13.5 राय और मार्क्सवाद

13.5.1 राय की मार्क्सवाद में आस्था

13.5.1.1 मार्क्स के भौतिकवाद में सम्पूर्ण आस्था

13.5.1.2 मार्क्स की वैज्ञानिक पद्धति

13.5.1.3 मार्क्सवादी चिन्तन के मूल लक्ष्य में आस्था

13.5.1.4 मार्क्स के चिन्तन तथा कर्म की एकता

13.5.2 मार्क्सवादी सिद्धान्त से असहमति

13.5.2.1 द्वन्द्ववाद से असहमति

13.5.2.2 इतिहास की आर्थिक व्याख्या से असहमति

13.5.2.3 वर्ग-संघर्ष के समाजशास्त्र में सन्देह

13.5.2.4 मध्यम वर्ग के संबंध में मार्क्स का गलत दृष्टिकोण

13.5.2.5 सर्वहारा वर्ग की तानाशही की आलोचना

13.5.2.6 मानव तत्त्व की उपेक्षा

13.5.2.7 नैतिकता का कोई स्थान नहीं

13.5.2.8 शांतिपूर्ण तरीके में विश्वास

13.6 एम.एन.राय का नव मानवतावाद

13.6.1 यह व्यक्ति की स्वतन्त्रता प्राप्ति का आन्दोलन

13.6.2 मानवीय विवेक में विश्वास

13.6.3 विश्व बन्धुत्व की भावना में विश्वास

13.6.4 नैतिक व्यक्तित्व की स्थापना

13.6.5 मानव स्वभाव की व्याख्या

13.6.6 समग्र आर्थिक विकास पर जोर

13.6.7 व्यक्ति की सत्ता का महत्त्व

13.6.8 नव मानवतावाद एक जीवन दर्शन

13.7 मानवेन्द्र नाथ राय के लोकतंत्र संबंधी विचार

13.7.1 जन समितियों के माध्यम से समस्त कार्यों का सम्पादन

13.7.2 विकेन्द्रित सत्ता पर बल

13.7.3 दल विहीन लोकतंत्र की स्थापना पर बल

13.7.4 मतदाताओं के शिक्षित होने पर बल

13.8 सारांश

13.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

13.10 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य भारतीय राजनीतिक विचारक मानवेन्द्र नाथ राय के मुख्य विचारों को जानना है। उन्होंने अपने जीवन का प्रारम्भ एक मार्क्सवादी चिन्तक के रूप में किया लेकिन कुछ समय बाद मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति अलगाव की भावना आ गई और उसमें व्यापक परिवर्तन करने की आवश्यकता पर बल देते हुए नवमानवतावादी दर्शन प्रस्तुत किया। इस अध्याय में आप जान सकेंगे —

- एम.एन. राय मार्क्सवाद से कहां तक सहमत थे और उनका विरोध किन सिद्धान्तों को लेकर था,
- राय का नवमानवतावाद, जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं नैतिक उत्थान पर आधारित है,
- राय ने लोकतंत्र में सुधार के संबंध में भी व्यापक विचार रखे, जैसे उन्होंने शिक्षा पर आधारित मताधिकार का समर्थन किया तथा दलविहीन लोकतंत्र की स्थापना पर बल दिया, जिसको अपना लेने से लोकतांत्रिक विचारधारा को और प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

13.2 प्रस्तावना

भारत के आधुनिक राजनीतिक चिन्तक के इतिहास में मानवेन्द्र नाथ राय का अग्रणीय स्थान है। उनकी पहचान एक समाजवादी चिन्तक के रूप में होती है। उन्होंने अपना जीवन समाजवाद के प्रचार-प्रसार हेतु समर्पित कर दिया। भारत में साम्यवाद का अध्याय उन्हीं के नाम से प्रारम्भ होता है, किन्तु जितनी प्रबलता से उन्होंने साम्यवाद का समर्थन किया उतनी ही प्रबलता से उन्होंने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में उसका विरोध भी किया। जहाँ एक ओर एशिया तथा भारत को साम्यवाद का संदेश उन्होंने दिया वहीं दूसरी ओर उन्होंने सर्वप्रथम साम्यवाद की भर्त्सना कर सारे विश्व को मानववाद का संदेश भी दिया। साम्यवाद की त्रिमूर्ति लेनिन, स्टालिन तथा ट्राटस्की के अत्यन्त निकट रहकर तथा मैक्सिको, चीन व भारत को साम्यवाद का मार्ग दिखाकर जिस तरह से मानवीय स्वतंत्र्य का उद्घोष किया उसका दूसरा उदाहरण विश्व में नहीं मिल सकता। उनका नव मानवतावाद भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन की विश्व को एक अनुपम देन है। एम.एन. राय के अनुसार,- ''नव मानवतावाद मनुष्य की प्रभुसत्ता की घोषणा करता है और बताता है कि विवेकपूर्ण तथा नैतिक समाज सम्भव है। क्योंकि मानव अपनी प्रकृति से विवेकपूर्ण तथा नैतिक है। नव मानवतावाद सर्वव्यापी है।''

व्यक्ति की स्वतन्त्रता और समानता का जयघोष करके उन्होंने व्यक्ति की गरिमा को आगे बढ़ाया। राय ने 'दल विहीन लोकतंत्र' का सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया।

13.3 जीवन-परिचय

मानवेन्द्र नाथ राय का जन्म 6 फरवरी, 1886 को कलकत्ता के निकट एक गांव में हुआ था। राय का बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य था। प्रारम्भिक शिक्षा घर में सम्पन्न करने के बाद उन्हें स्थानीय पाठशाला में भर्ती करवाया गया। राय के जीवन लेखक 'मुंशी और दीक्षित' के अनुसार ''राय का जीवन स्वामी-विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ और स्वामी दयानन्द से प्रभावित रहा।'' इस प्रकार राय अनेक क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आये जिससे उनके मन में देशभक्ति की भावना को बढ़ावा मिला। एक क्रांतिकारी के रूप में राय को 1910 में हावड़ा काण्ड तथा 1915 में एक राजनीतिक डकैती के सिलसिले में जेल यात्रा करनी पड़ी।

प्रथम महायुद्ध छिड़ जाने के बाद वे भागकर मेक्सिको चले गये। यहाँ उन्होंने समाजवादी शक्तियों को संगठित करने में सक्रिय रूचि ली और बहुत कुछ उनके प्रभाव से ही मेक्सिको के समाजवादी आन्दोलन को अन्तरराष्ट्रीय दिशा में मोड़ा गया। 1920 में कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की दूसरी कांग्रेस में उन्होंने भाग लिया। लेकिन इन्टरनेशनल के साथ उनके मतभेद हो गये। इसका मूल कारण औपनिवेशिक देशों में राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के प्रति दृष्टिकोण के चलते उन्हें निष्कासित कर दिया।

इसके पश्चात् उन्होंने भारत के राजनीतिक जीवन में पदार्पण किया। 1939 में उन्होंने कांग्रेस के भीतर 'लीग ऑफ रेडीकल कांग्रेसमैन' नामक संगठन की स्थापना की। 1940 में उन्होंने मौलाना आजाद के विरूद्ध कांग्रेस अध्यक्ष का चुनाव भी लड़ा, परन्तु इसमें इसमें उन्हें भारी पराजय का सामना करना पड़ा। 1940 में कांग्रेस छोड़कर रेडीकल डेमोक्रेटिक पार्टी की स्थापना की लेकिन उनकी पार्टी भारतीय राजनीति में कोई विशेष पहचान कायम नहीं कर सकी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.4 राय की रचनाएँ

राय प्रतिभाशाली विद्वान और लेखनी के अपूर्व धनी व्यक्ति थे। उनके कुल ग्रन्थों की संख्या लगभग 110 है। राय के दार्शनिक विचारों का प्रमुख संग्रह 'Philosophical consequences oh modern science' नामक ग्रन्थ है। यह 9 खण्डों में लिखा हुआ है उनकी अन्य प्रमुख रचनाएं निम्न हैं–

1. दी प्रॉब्लम्स ऑफ इण्डिया (1923)
2. इण्डिया इन ट्रांजिशन (1922)
3. रेडिकल ह्यूमेनिडम पीरा
4. न्यूह्यमेनिडम (नव मानवतावाद)

13.5 राय और मार्क्सवाद

एम.एन.राय ने मार्क्स तथा अन्य समाजवादी लेखकों की रचनाओं का गहन अध्ययन किया था। उन्होंने बहुत शीघ्र ही मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और वर्ग–संघर्ष के सिद्धान्त पर अधिकार जमा लिया और वे मार्क्स के दर्शन से प्रभावित थे। उन्होंने मैक्सिको में साम्यवादी दल की स्थापना की और 'साम्यवादी अन्तरराष्ट्रीय' के संस्थापक सदस्य के रूप में अपने दृढ़ मार्क्सवादी होने का परिचय दिया। उन्होंने भारत में साम्यवादी आन्दोलन को आगे बढ़ाने का भी कार्य किया।

13.5.1 राय की मार्क्सवाद में आस्था

राय मार्क्सवादी विचारधारा की प्रमुख रूप से निम्न बातों में आस्था रखते थे–

13.5.1.1 मार्क्स के भौतिकवाद में सम्पूर्ण आस्था :– मार्क्स ने 'द्वन्द्ववादी भौतिकवाद' का प्रतिपादन किया था, जिसमें उनकी गहरी आस्था थी। अन्तरराष्ट्रीय साम्यवाद से अलग होने के बाद भी भौतिकवाद में उनकी आस्था बनी रही।

13.5.1.2 मार्क्स की वैज्ञानिक पद्धति :– राय मार्क्स की वैज्ञानिक पद्धति से बहुत प्रभावित थे। राय का मत था कि सर्वाधिक अनुकरणीय और प्रशंसनीय बात वैज्ञानिक पद्धति की है।

13.5.1.3 मार्क्सवादी चिन्तन के मूल लक्ष्य में आस्था :– मार्क्स ने कमजोर दलित एवं श्रमिकों के प्रति गहरी सहानुभूति का भाव रखते हुए इस बात की निन्दा की कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का शोषण करे। मार्क्स का लक्ष्य शोषण की इस स्थिति को समाप्त कर एक समतावादी समाज की स्थापना करना था। राय मार्क्स के चिन्तन की इस मानवीय तथा उदारवादी प्रवृत्ति और उसके सम्पूर्ण चिन्तन के मूल लक्ष्य के प्रति भारी आस्था रखते थे।

13.5.1.4 मार्क्स के चिन्तन तथा कर्म की एकता :– राय ने मार्क्स के सिद्धान्त के उस अंश को स्वीकार किया जो चिन्तन तथा कर्म की एकता पर बल देता है। कोई भी कार्य तभी सफल हो सकता है जबकि सोच–समझ कर निश्चित की गई एक योजना के अनुरूप हो और विद्यमान वस्तु स्थिति पर आधारित हो।

13.5.2 मार्क्सवादी सिद्धान्त से असहमति

एम.एन.राय मार्क्स के चिन्तन में गहरी आस्था रखते थे। मार्क्स के सम्पूर्ण चिन्तन को कभी भी स्वीकार नहीं किया। इसलिए मार्क्सवादियों के साथ उनके वैचारिक मतभेद शीघ्र ही शुरू हो गये। राय ने वैज्ञानिक पद्धति को अपनाने, मार्क्स की विचारधारा को लचीला बनाने और इस विचारधारा को सजीव एवं गतिशील दर्शन बनाने पर बल दिया। इन्हीं मतभेदों के चलते 1928 में राय को 'साम्यवादी अन्तरराष्ट्रीय' से निष्कासित कर दिया। राय ने मार्क्सवादी चिन्तन पर जो असहमति व्यक्त की है, वह इस प्रकार है–

13.5.2.1 द्वन्द्ववाद से असहमति :– राय मार्क्स के द्वन्द्ववाद से कभी भी सहमत नहीं हो पाये। राय का मत था कि द्वन्द्ववाद एक वैचारिक प्रक्रिया है। इससे भौतिक जीवन के विविध चरणों और भौतिक स्थिति की व्याख्या नहीं की जा सकती।

13.5.2.2 इतिहास की आर्थिक व्याख्या से असहमति :– राय मार्क्स की इस बात से सहमत नहीं है कि व्यक्ति की नियति का निर्धारण मात्र आर्थिक कारकों से होता है। उनके अनुसार सामाजिक, बौद्धिक, नैतिक कारक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

13.5.2.3 वर्ग-संघर्ष के समाजशास्त्र में संदेह :– कार्ल मार्क्स ने वर्ग संघर्ष को मानवीय जीवन का मूल तत्त्व माना है। उनके अनुसार हमेशा से ही समाज में दो प्रतिद्वन्द्वी वर्ग चले आ रहे हैं, जिनके बीच नियमित संघर्ष चलता रहता है लेकिन राय का मत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है कि यदि समाज के वर्गों में संघर्ष रहता तो समाज का अस्तित्व कभी का समाप्त हो जाता। समाज तो आपसी सहयोग, सामाजिक एकता बनाने में सहायक है।

13.5.2.4 मध्यम वर्ग के संबंध में मार्क्स का गलत दृष्टिकोण :– कार्ल मार्क्स मध्यम वर्ग को एक ऐसे अवसरवादी वर्ग के रूप में मानते हैं जो मौका मिलने पर पूंजीपतियों का साथ देता है। अत: समाजवादी व्यवस्था में मध्यम वर्ग का अन्त हो जाएगा। लेकिन मार्क्स की भविष्यवाणी गलत साबित हुई है इसक विपरीत मध्यम वर्ग एक शक्ति के रूप में उभरा और सामाजिक परिवर्तन में सफल रहा।

13.5.2.5 सर्वहारा वर्ग की तानाशाही की आलोचना :– मार्क्स ने पूंजीवादी व्यव्स्था के अन्त के बाद 'सर्वहारा वर्ग की तानाशाही' की स्थापना का प्रतिपादन किया। सर्वहारा वर्ग की तानाशाही के नाम पर राज्य की तानाशाही स्थापित होगी। इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं स्वतन्त्रता का कोई महत्त्व नहीं है। राय व्यक्ति की स्वतन्त्रता की दृष्टि से मार्क्सवाद पर आधारित इस सर्वाधिकारवाद का विरोध और उदारवाद का समर्थन करते हैं।

13.5.2.6 मानव तत्त्व की उपेक्षा :– मानव एक स्वतन्त्रता प्रिय, कल्पनाशील और रचनात्मक प्रवृत्ति का प्राणी है, मार्क्सवादी दर्शन में इन पर कोई ध्यान न देकर मानव को साधन मात्र बना दिया गया है। मानव का विकास नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता से ही सम्भव है। मार्क्स वादी दर्शन में व्यक्ति को इस स्वतन्त्रता से वंचित कर समष्टि की वेदी पर व्यक्ति का बलिदान कर दिया गया है।

13.5.2.7 नैतिकता का कोई स्थान नहीं :– मार्क्स ने अपने सम्पूर्ण चिन्तन में नैतिकता को महत्त्व न देकर भौतिक तत्त्वों को महत्त्व दिया है। राय की दृष्टि में मार्क्स का सबसे बड़ा दोष है।

13.5.2.8 शांतिपूर्ण तरीके में विश्वास :– मार्क्सवाद हिंसा और बल प्रयोग की प्रवृत्ति में विश्वास करता है और क्रांति एवं संघर्ष के माध्यम से व्यवस्था में परिवर्तन करना चाहते हैं। राय भी सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर है, लेकिन राय शांतिपूर्ण तरीकों से परिवर्तन लाने में विश्वास करते हैं।

यद्यपि राय ने मार्क्सवाद के कुछ सिद्धान्तों में विश्वास किया लेकिन अपने जीवन काल के अंतिम वर्षों में उनके मन में मार्क्सवाद के प्रति असहमति बनी और मार्क्सवाद का पूर्णतया परित्याग कर एक नवीन विचारधारा 'मौलिक मानववाद' के साथ जुड़ गए।

13.6 एम.एन.राय का नवमानवतावाद

नव मानवतावाद या मौलिक मानववाद राय के सम्पूर्ण चिन्तन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जिसके माध्यम से राय ने व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा और नैतिक उत्थान पर बल दिया है। साम्यवादी अन्तरराष्ट्रीय से निष्कासित होने के बाद राय मार्क्सवाद से हटने लगे और भारतीय राजनीति में प्रवेश लेने के पश्चात् उन्होंने पाया कि जब तक भारत में सांस्कृतिक एवं बौद्धिक क्रांति नहीं आयेगी, तब तक भारतीय 'मौलिक लोकतंत्र' के सिद्धान्त को नहीं समझ सकेंगे। इसलिए उन्होंने अपनी समस्त शक्ति बौद्धिक पुनर्जागरण में लगा दी। जिसका उद्देश्य नव मानवतावाद का मार्ग प्रशस्त करना था। नव मानवतावाद का प्रतिपादन राय ने अपने गन्थ New Humanism में किया।

राय ने लिखा है कि '' मनुष्य स्वभाव से विवेकपूर्ण और नैतिक है, अत: एक उन्मुक्त और न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में स्वतंत्र है, पर चूंकि समकालीन विश्व का नैतिक और चिन्तन का स्तर गिर चुका है तथा सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्यों का ह्रास हो चुका है। अत: एक स्वस्थ, उन्मुक्त और न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के लिए हमें कठोर प्रयत्न करने होंगे।'' राय के नव मानवतावाद के प्रमुख तत्त्व इस प्रकार हैं–

13.6.1 यह व्यक्ति की स्वतन्त्रता प्राप्ति का आन्दोलन

राय के अनुसार स्वतन्त्रता मनुष्य स्वभाव का मुख्य गुण है। नव मानवतावाद व्यक्ति की स्वतन्त्रता प्राप्ति का आन्दोलन है। स्वतन्त्रता ही व्यक्ति के अस्तित्व का सार है। स्वतन्त्रता के बिना न केवल व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास अवरूद्ध होता है, अपितु राज्य एवं समाज का विकास अवरूद्ध हो जाता है। इसलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए मनुष्य प्रयास करता रहता है। ऐसा स्वतन्त्र व्यक्ति ही न्यायप्रिय समाज को मुख्य आधार प्रदान करता है। राय ने आर्थिक स्वतन्त्रता की तुलना में बौद्धिक स्वतंत्रता को सर्वोपरि माना है किन्तु स्वतन्त्रता का अर्थ नियन्त्रण का अभाव नहीं है। राय के अनुसार स्वतन्त्रता व्यक्ति में चेतना जागृत करती है। जिसके कारण व्यक्ति अपने अधिकारों व हितों के प्रति सजग होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नवमानवतावाद

↓

व्यक्ति की स्वतन्त्रता प्राप्ति का आन्दोलन

विश्वबन्धुत्व की भावना में विश्वास

समग्र आर्थिक विकास पर जोर

मानवीय विवेक में विश्वास

नैतिक व्यक्तित्व की स्थापना

मानव स्वभाव की व्याख्या

व्यक्ति की सत्ता का महत्त्व

जीवन दर्शन

- ❖ स्वतन्त्रता एवं नैतिकता का उचित समन्वय।
- ❖ बौद्धिक पुनर्जागरण में सहायक।
- ❖ विश्व-बन्धुत्व से ही मानवता का उद्धार संभव।
- ❖ मानव गरिमा को बढ़ाने में सहायक।

13.6.2 मानवीय विवेक में विश्वास

राय के अनुसार मनुष्य स्वभाव से विवेकपूर्ण होता है। बुद्धि व्यक्ति का मौलिक व विशिष्ट तत्त्व है। राय व्यक्ति की बौद्धिक शक्ति में पूर्ण विश्वास करता है। ब्राइस थिसिस में राय ने कहा कि व्यक्ति की विवेकशीलता एक सहज गुण है। अन्धविश्वास प्राकृत धर्म के प्रति सुझाव विवेकहीनता का द्योतक है। जैसे-जैसे व्यक्ति ने ज्ञान के आधार पर नवीन आविष्कार किये, वैसे-वैसे अन्धविश्वास के प्रति, उसकी धारणा कम होती है।

13.6.3 विश्व बन्धुत्व की भावना में विश्वास

राय राष्ट्रवाद को एक संकीर्ण विचारधारा मानता है। वे विश्वबन्धुत्व को महत्ता प्रदान करते हुए कहते हैं कि इससे व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सकेगा। वह राष्ट्रवाद के बन्धन से परे एक सार्वभौम समुदाय की बात करता है। यह स्वतन्त्र व्यक्ति का समुदाय है जो समस्त विश्व के व्यक्तियों के साथ जुड़ा हुआ है। आज वास्तव में राष्ट्रवाद की अपेक्षा विश्व बन्धुत्व की आवश्यकता है।

13.6.4 नैतिक व्यक्तित्व की स्थापना

राय के अनुसार नैतिकता व्यक्ति का एक स्वाभाविक लक्षण है। यह व्यक्ति में विवेकशीलता का परिणाम है। यदि व्यक्ति नैतिकता विहीन है तो मानववादी दर्शन को कोई मूल्य नहीं रह जाता। नैतिकता और विवेकशीलतापूर्ण व्यक्ति ही सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था का निर्माण कर सकता है। व्यक्ति में अच्छाई के प्रति झुकाव किसी भय के कारण नहीं होना चाहिए अपितु स्वाभाविक रूप से होना चाहिए।

13.6.5 मानव स्वभाव की व्याख्या

राय ने व्यक्ति को स्वार्थी नहीं माना है। इनका मानना है कि मनुष्य स्वभाव से विकासवान है। उसमें विकास की प्रवृत्ति हमेशा रही है। राय के अनुसार मानव स्वभाव के विवेक, स्वतन्त्रता एवं नैतिकता प्रमुख तत्त्व हैं। जैसे व्यक्ति होंगे वस्तुत: वैसा ही समाज होगा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्ति श्रेष्ठ समाज का आधार होता है। इसमें व्यक्ति बर्बरता से सभ्यता की ओर बढ़ता है और नव मानवतावाद की स्थापना शिक्षित प्रबुद्ध एवं अच्छे स्वभाव वाले व्यक्तियों के माध्यम से ही हो सकती है।

13.6.6 समग्र आर्थिक विकास पर जोर

राय का मानवतावाद व्यक्ति के आर्थिक पक्ष को भी महत्त्वपूर्ण मानता है। वह एक ऐसे समाज की रचना करना चाहता है, जिसमें किसी भी व्यक्ति का शोषण नहीं हो और सम्पूर्ण समाज का आर्थिक विकास हो। सभी व्यक्ति एक-दूसरे का सहयोग करें न कि प्रतिस्पर्धा। राय व्यक्ति को एक आर्थिक इकाई नहीं मानते हैं। उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमताओं के विकास के लिए समान अवसर प्राप्त हो ताकि समाज में बढ़ती आर्थिक असमानता को समाप्त किया जा सके। सम्भवत: राय में यह विचार मार्क्सवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप आये।

13.6.7 व्यक्ति की सत्ता का महत्त्व

राय के अनुसार व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। मानव जीवन अपने आप में पूर्ण है। व्यक्ति ही प्रत्येक वस्तु का मापदण्ड है। राय के अनुसार व्यक्ति समस्त राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाओं का मूल आधार है। ये संस्थाएँ व्यक्ति को स्वतन्त्र बनाए रखने में सहयोग करती है। यही एम.एन. राय के नव मानवतावाद के दर्शन का आधार है। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं नैतिक संबंध इस तरह से निर्धारित किये जाएं कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता को महत्त्व मिले।

13.6.8 नव मानवतावाद एक जीवन दर्शन

राय द्वारा प्रतिपादित नव मानवतावाद का सिद्धान्त केवल दर्शन पर आधारित न होकर व्यक्ति जो जीवन जीना सिखाता है क्योंकि इसमें व्यक्ति को केन्द्र बिन्दु मानकर उसकी गरिमा को बढ़ाने पर बल दिया गया है।

राय यह नहीं मानते हैं कि सृष्टि का निर्माण किसी देवी शक्ति से हुआ है। उनका स्पष्ट मत है कि व्यक्ति ही मानव जाति का मूल है। राय ने अपने दर्शन में विवेकशीलता, नैतिकता, वैज्ञानिकता, बौद्धिक शक्ति, स्वतन्त्रता, विश्व बन्धुत्व की भावना आदि को प्रमुख स्थान दिया है। राय ने लोगों के प्रेम व विश्वास पर आधारित समुदाय निर्माण की बात कही, जिसमें मानव अपना जीवन सुखमय बना सके। इस प्रकार नव मानवतावाद राय की मुख्य देन है, जिसका मूल आधार स्वतन्त्रता, बौद्धिक शक्ति एवं नैतिकता है, जो मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं में है।

13.7 मानवेन्द्र नाथ राय के लोकतन्त्र संबंधी विचार

मानवेन्द्र नाथ राय मनुष्य को नैतिक इकाई के रूप में स्वीकार करते हैं और इस बात का प्रतिपादन करते हैं कि इस नैतिक मनुष्य का विकास स्वतन्त्रता के आधार पर ही सम्भव है। इसके अलावा राय के नव मानवतावाद का लक्ष्य लोकतंत्र में ही प्राप्त किया जा सकता है। इस तरह राय ने 'उदारवादी लोकतंत्र' का समर्थन किया है। लेकिन उनका कहना था कि वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था दूषित है और इससे हमारे मन-मस्तिष्क में लोकतंत्र के प्रति आस्था को आघात पहुँचा है। इसीलिए उन्होंने लोकतंत्र के स्वरूप में भारी परिवर्तन की आवश्यकता बतायी। उनके द्वारा लोकतांत्रिक व्यवस्था की जो रूपरेखा प्रस्तुत की गई, उसे वे 'संगठित लोकतंत्र' का नाम देते हैं। लोकतंत्र को सुदृढ़ करने हेतु राय द्वारा दिये गये सुझाव निम्न लिखित है-

13.7.1 जन समितियों के माध्यम से समस्त कार्यों का सम्पादन

राय ने अनुभव किया कि वर्तमान समय की लोकतान्त्रिक व्यवस्था में राजनीति सत्ता केन्द्रित हो गई और इसमें योग्य व्यक्तियों के चुने जाने की कोई गुंजाइश नहीं है। वे जनता के बौद्धिक और नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं और आज की लोकतांत्रिक व्यवस्था के दोषों का निवारण करने के लिए 'संगठित लोकतंत्र' का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। जिसका सबसे प्रमुख तत्त्व है, 'जन समितियों के माध्यम से समस्त कार्यों का सम्पादन।'

राजनीतिक दलों के बढ़ते हुए दुष्प्रभावों ने समस्त शासन की विचार शक्ति कुण्ठित कर दी है। 'विधि का शासन' मात्र औपचारिक घोषणा रह गयी है, इसलिए वह स्थानीय व्यक्तियों की जन समितियों के द्वारा वर्तमान प्रजातन्त्र को संगठित करना चाहते हैं और राय इन समितियों को अधिकाधिक कार्य सौंपने के पक्ष में हैं। ये जन समितियाँ विवेकशील व्यक्तियों के सहयोग से स्थानीय,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रान्तीय और केन्द्र की सामाजिक संस्थाओं की इकाई के रूप में कार्य करेंगी। इन समितियों के कारण राज्य के सर्वशक्तिमान होने का भय समाप्त हो जाएगा। राय इन समितियों में अधिक से अधिक जनता की भागीदारी सुनिश्चित करना चाहते हैं, ताकि संगठित लोकतंत्र की स्थापना की जा सके।

13.7.2 विकेन्द्रित सत्ता पर बल

राय वर्तमान समय की लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में बढ़ती हुई केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से उचित नहीं मानते। उन्होंने वर्तमान लोकतंत्र में केन्द्रीय सत्ता के स्वरूप को माननीय विकास के मार्ग की भारी बाधा घोषित किया है। समाज के मूलभूत पुनर्गठन की आवश्यकता बतलाते हुए विकेन्द्रीकरण पर बल देते हैं और कहते हैं कि सत्ता के विकेन्द्रीकरण को अपनाने पर राजनीति के स्थान पर लोक नीति की प्रतिष्ठा सम्भव हो सकेगी।

13.7.3 दलविहीन लोकतंत्र की स्थापना पर बल

राय वर्तमान लोकतंत्र की समस्याओं के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार राजनीतिक दलों को मानते हैं। इनका प्रभाव इतना ज्यादा हो गया है कि लोकतंत्र 'दलतन्त्र' बन कर रह गया है। दलों ने व्यक्ति की प्रेरणा शक्ति और निर्णय शक्ति दोनों को ही कुण्ठित कर दिया है और व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व की कल्पना असम्भव हो गयी है। राजनीतिक दलों का जन हितों एवं जन समस्याओं से कोई वास्ता नहीं है। उनका उद्देश्य केवल सत्ता प्राप्त करना है और इसके लिए वे किसी भी सीमा को लांघ सकते हैं। इसके अलावा विश्व में जो नैतिक पतन हो रहा है इसके लिए राजनीतिक दल ही जिम्मेदार है। अत: राय के अनुसार, -''यदि हमें लोकतन्त्रवाद की रक्षा करनी है तो उसे 'दल रहित' बनाना होगा अर्थात् एक दल विहीन लोकतंत्र की स्थापना करनी होगी।''

13.7.4 मतदाताओं के शिक्षित होने पर बल

'संगठित लोकतंत्र' के प्रतिपादन में राय ने मतदाताओं के शिक्षित होने की अनिवार्यता पर बल दिया है, ताकि वे भाषण कला में निपुण नेताओं के बहकावे में नहीं आ सके। वे नैतिक तथा बौद्धिक दृष्टि से ईमानदार तथा पक्षपात रहित लोगों को ही शासन का नेतृत्व सौंपने के पक्ष में थे। उन्होंने प्रारम्भ में कुशल तथा गुणी शासकों के निर्वाचक के स्थान पर मनोनयन का प्रावधान भी प्रस्तुत किया।

13.8 सारांश

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मानवेन्द्रनाथ राय के विचार मानवता के कल्याण एवं गरिमा को प्रोत्साहन देने वाले हैं। मार्क्सवादी विचारधारा के विरुद्ध का उनका मुख्य कारण इसका व्यावहारिक होना नहीं था। इसलिए उन्होंने मार्क्सवाद के कुछ बुनियादी सिद्धान्तों की आलोचना की। उनका मत था कि हिंसा या क्रांति के माध्यम से किसी व्यवस्था में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। नवमानवतावादी दृष्टि पूर्णतया स्वतन्त्रता, प्रजातंत्र, विकास, नैतिकता तथा विश्वबन्धुत्व पर आधारित है, जिसको अपना लेने से समाज अपने निहित लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है।

यद्यपि वे स्वतंत्र लोकतंत्र के समर्थक थे लेकिन लोकतांत्रिक व्यवस्था में विद्यमान कमजोरियों को देखकर उसमें भी सुधार की आवश्यकता पर बल दिया। उनका मत था कि जब तक शासन में अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी सुनिश्चित नहीं होगी तब तक लोकतंत्र की सुखद अनुभूति नहीं की जा सकती, साथ ही साथ राय ने लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियों के लिए राजनीतिक दलों को उत्तरदायी माना। इसके लिए उन्होंने दल विहीन प्रजातंत्र के औचित्य पर बल दिया। शिक्षा पर आधारित मताधिकार का समर्थन कर उन्होंने मताधिकार के महत्त्व को बढ़ाने का प्रयास किया ताकि योग्य एवं प्रतिभशाली जन-प्रतिनिधित्व का चयन किया जा सके।

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मानवेन्द्र नाथ रॉय, ''रीजन, रोमेन्टीसिज्म एण्ड रिवोल्यूशन'' भाग-2 रेनासां पबिल्, कलकत्ता।
2. कृष्ण चन्द्र जेना, ''कोन्ट्रीब्यूशन ऑफ एम.एन.राव टू पॉलिटिकल फिलोसोफी'' एस. चन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली।
3. मानवेन्द्र नाथ रॉय, ''दी आल्टरनेटिव'' वोरा एण्ड कं., बम्बई।
4. निरंजन धर, ''दी पॉलिटिकल थाट ऑफ एम.एन.राय (1936-1954)'' यूरेका, कलकत्ता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. जी.पी. भट्टाचार्य, ''इवोल्यूशन ऑफ पॉलीटिकल फिलोसोफी ऑफ एम.एन.राय'', मिनर्वा, कलकत्ता।
6. बी.एल.शर्मा, ''दी पॉलीटिकल फिलोसोफी ऑफ एम.एन.राय'', नेशनल पब्लिकेशन हाऊस, दिल्ली।
7. चन्द्रोदय दीक्षित, ''मानववादी विचारक : एम.एन.राय''
8. डॉ. पुरुषोत्तम नागर, ''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
9. राम रतन तथा रूचि त्यागी, ''भारतीय राजनैतिक चिन्तन'', मयूर पेपर बैक्स, नौएडा।
10. बी.आर. पुरोहित, ''प्रतिनिधि भारतीय राजनीतिक विचारक'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
11. ओम प्रकाश गाबा, ''राजनीति-चिन्तन की रूपरेखा'', मयूर पेपरबैक्स, नौएडा।
12. डॉ. वी.पी. वर्मा, ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक चिन्तक'', लक्ष्मीनारायण प्रकाशन, आगरा।
13. सी.एम. सरस्वती, ''भारतीय राजनीतिक विचारक'' मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।
14. डॉ.ए. अवस्थी तथा डॉ. आर. के. अवस्थी, ''भारतीय राजनीतिक चिन्तक'', रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
15. सी.दीक्षित तथा एस.एल. मुंशी, ''मानवेन्द्र राय का जीवन और नवीन मानवतावाद''

13.10 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. एम.एन.राय के नव मानवतावाद पर लेख लिखिए।
2. एम.एन.राय के मार्क्सवाद संबंधी विचारों की समीक्षा कीजिए।
3. राय के संगठित लोकतंत्र संबंधी विचारों पर प्रकाश डालिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राय मार्क्सवाद के किन सिद्धान्तों पर सहमति व्यक्त करते हैं।
2. नव मानवतावाद पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. राय के दलविहीन लोकतंत्र का विचार स्पष्ट कीजिए।
4. नव मानवतावाद मानव जीवन का दर्शन किस प्रकार है ?
5. ''राय ने राष्ट्रवाद के स्थान पर अन्तरराष्ट्रीयवाद का समर्थन किया है।'' सिद्ध कीजिए।
6. राय ने जन समितियों का महत्त्व किस प्रकार स्वीकारा है।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. नव मानवतावाद का प्रतिपादन किसने किया ?
2. राय ने अपनी कौनसी रचना में नव मानवतावाद का प्रतिपादन किया ?
3. नव मानवतावाद का मूल आधार क्या है ?
4. राय में मार्क्सवाद के प्रति विरोध का मूल कारण क्या था ?
5. राय ने किस पार्टी की स्थापना की थी ?
6. लोकतंत्र के सुधार की योजना को क्या नाम देते हैं ?
7. एम.एन.राय की जीवनी के लेखक कौन हैं ?
8. लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाने हेतु राय ने प्रमुख सुझाव क्या दिया ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई - 14 डॉ. राम मनोहर लोहिया

संरचना

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 जीवन परिचय

14.4 डॉ. राम मनोहर लोहिया के सामाजिक विचार

14.4.1 वर्ण व्यवस्था का विरोध

14.4.2 सामाजिक विषमताओं पर प्रहार

14.4.3 सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार कर्म होना चाहिए, न कि जन्म

14.4.4 जाति प्रथा के उन्मूलन हेतु सुझाव

14.4.5 आर्थिक दृष्टि से जाति प्रथा तोड़ने पर बल

14.4.6 विशेष अवसर का सिद्धान्त

14.5 डॉ. लोहिया के समाजवाद संबंधी विचार

14.5.1 लोकतंत्र एवं स्वतन्त्रता के हित पोषक

14.5.2 व्यावहारिकता पर बल

14.5.3 समाजवाद को नवीन प्रकृति देने का प्रयास

14.5.4 समाजवाद को नवीन चिन्तन एवं कर्म की आवश्यकता

14.5.5 विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के समर्थक

14.6 राजनीतिक विचार

14.6.1 राजनीतिक इतिहास की समाजवादी व्याख्या

14.6.2 चौखम्भा-योजना का स्थान

14.6.3 वाणी-स्वतन्त्रता और कर्म-नियन्त्रण का सिद्धान्त

14.6.4 जन-शक्ति का समर्थन

14.6.5 व्यक्ति और समाज के संबंधों की विवेचना

14.7 मौलिक अधिकार संबंधी विचार

14.7.1 बौद्धिक स्वतन्त्रता के अधिकार का समर्थन

14.7.2 अत्याचारी एवं अन्यायी कानूनों का प्रतिरोध करने का अधिकार

14.7.3 धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार

14.7.4 समता का अधिकार

14.8 डॉ. लोहिया के अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था संबंधी विचार

14.9 सारांश

14.10 सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

14.11 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य डॉ. राममनोहर लोहिया के विचारों का जानना है ताकि एक राजनीतिक चिन्तक के रूप में उनके द्वारा प्रदत्त योगदान को जाना जा सके और उनको अपनाकर लोहिया के सपनों को साकार किया जा सके। इस अध्याय में आप जान सकेंगे —

- डॉ. लोहिया के सामाजिक विचार, जो वर्ण, जाति तथा विषमताओं पर प्रहार आधारित हैं,
- लोहिया के समाजवादी संबंधी विचार, जिनसे भारत में समाजवाद की परिभाषा ही बदल गयी और आम नागरिक को समाजवाद को जानने का अवसर मिला और बड़ी संख्या में लोग जुड़े, जो लोकतंत्र पर आधारित हैं,
- राजनीति के संबंध में उनके विचारों में चौखम्भा योजना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो, जिसको अपनाने से विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन दिया जा सकता है,
- उनके मौलिक अधिकार संबंधी विचार,
- अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था के संबंध में उनके विचार शांति एवं बन्धुत्व पर आधारित हैं, इन्हें भी जानने का अवसर मिलेगा।

14.2 प्रस्तावना

डॉ. राममनोहर लोहिया आधुनिक भारत के ऐसे प्रतिभाशाली राजनीतिक विचारक थे, जिन्होंने भारत के स्वाधीनता संग्राम और समाजवादी आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होंने समाजवाद की नवीन व्याख्या भारत और एशिया की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के मद्देनजर की। लोहिया ने भारतीय समाज एवं राजनीति में सुधार की व्यापक योजना प्रस्तुत कर, समाज को गतिशील बनाने का कार्य किया। उन्होंने भारतीय समाज के पतन के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार जातिवाद एवं वर्ण व्यवस्था को माना। उनका कहना था कि इन्होंने सम्पूर्ण समाज को खोखला कर दिया है। आर्थिक असमानता की खाई ओर गहरी एवं चौड़ी होती जा रही है, जिसके लिए कथित उच्च वर्ग एवं जाति के लिए जिम्मेदार हैं। जिन्होंने समाज के अधिकांश लोगों को अपना दास बना रखा है। डॉ. लोहिया का कहना था कि जाति का आधार कार्य न होकर कर्म होना चाहिए। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन दलितों के उत्थान में बिताया और मरते दम तक दलितों के न्याय एवं अधिकारों के लिए संघर्ष करते रहे।

डॉ. लोहिया को समाजवादी चिन्तक के रूप में जाना जाता है। उनका समाजवादी चिन्तन देश-प्रेम तथा जन-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत है। वे न तो मार्क्स से सहमत थे और न ही गांधी जी से। उनके दर्शन में मौलिकता थी। उन्होंने भारत की पद्दलित एवं पिछड़ी जातियों को देखा। उनकी पीड़ाओं को महसूस किया। वह उनके कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हो गये। इस तरह लोहिया ने समाजवादी 'समानता एवं सम्पन्नता' के साथ जोड़कर व्यावहारिक रूप दिया। इस तरह डॉ. लोहिया भारतीय समाज के अनुरूप समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे।

14.3 जीवन परिचय

राम मनोहर लोहिया का जन्म 10 अक्टूबर, 1910 को अकबरपुर (उत्तर प्रदेश) के एक राष्ट्रवादी परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम हीरालाल एवं माता का नाम चन्दा था। लोहिया की प्रारम्भिक शिक्षा अकबरपुर में सम्पन्न हुई। उसके पश्चात् की शिक्षा बम्बई, कलकत्ता, वाराणसी और बर्लिन में हुई। 1932 को बर्लिन के हुम्बर्ट विश्वविद्यालय ने 'नमक और सत्याग्रह' नामक शोध-प्रबन्ध पर पी-एच. डी. की उपाधि प्रदान की।

लोहिया ने विद्यार्थी जीवन में अनेक संगठनों के साथ जुड़कर राष्ट्रवाद एवं स्वतंत्रता प्रेरित गतिविधियों का संचालन किया। 1924 के 'गया कांग्रेस अधिवेशन' में पहली बार भाग लिया। 1928 के साइमन कमीशन के विरुद्ध चले आन्दोलन का भी नेतृत्व किया। 1934 में पं. नेहरू के साथ मिलकर 'कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी' को निर्माण किया। कांग्रेस पार्टी के अन्तर्गत एक पर राष्ट्र विभाग खोला गया, जिसका मंत्री डॉ. लोहिया को बनाया गया लेकिन 1939 में उन्होंने इस को त्याग दिया। द्वितीय महायुद्ध के शुरु होने के समय डॉ. लोहिया ने स्वतन्त्रता संग्राम को नवीन मोड़ प्रदान किया। ब्रिटिश सरकार ने उन पर राष्ट्र विरोधी गतिविधियां संचालित करने का आरोप लगा कर जेल भेज दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

देश की आजादी के पश्चात् डॉ. लोहिया के मतभेद कांग्रेस के नेताओं से और अधिक बढ़ने लगे। संविधान सभा, देश विभाजन भावी नीतियों को लेकर उनमें गम्भीर मतभेद पैदा हो गये थे। डॉ. लोहिया ने कई बार पं. नेहरू के विरूद्ध चुनाव लड़ा पर सफलता नहीं मिली। उन्होंने संसद के बाहर रहकर 'अंग्रेजी हटाओ', 'दाम बंधो', 'जाति तोड़ो', 'हिमालय बचाओ' आदि आन्दोलन का संचालन किया।

1963 में पहली बार अमरोहा निर्वाचन क्षेत्र में हुए उपचुनाव में विजय होकर लोकसभा में प्रविष्ट हुए। एक सांसद के रूप में उन्होंने गम्भीर एवं संवेदनशील मुद्दों को उठाया। उनका मूल उद्देश्य समता पर आधारित समाज की स्थापना करना और समाज को नवीन दिशा प्रदान करना था। लेकिन इस लोह पुरुष का दिल्ली में 12 अक्टूबर, 1967 को देहावसान हो गया।

14.4 डॉ. राम मनोहर लोहिया के सामाजिक विचार

डॉ. लोहिया ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर कड़ा प्रहार किया। वे हिन्दू होते हुए भी हिन्दू धर्म एवं समाज की मूल मान्यताओं के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने धर्म को ईश्वर तथा आत्मा के साथ न जोड़कर, मानव प्राणियों के कल्याण तथा लौकिक समृद्धि के साथ जोड़ा। वे जाति एवं वर्ण व्यवस्था को कैंसर के समान मानते थे, जिसने शुद्र, कमजोर, दलित एवं महिलाओं के जीवन को नरक बनाया। समाज के कथित उच्च जातियों के लोग निम्न जातियों के लोगों पर अन्याय, अत्याचार एवं शोषण करने से नहीं चुकते हैं समाज में विद्यमान आर्थिक संसाधन कुछ लोगों के हाथों में केन्द्रित हो गये हैं, इससे आर्थिक असमानता को बढ़ावा मिल रहा है। वर्ण या जाति के नाम पर शुद्रों के साथ छुआछूत जैसा अमानवीय व्यवहार किया जा रहा है। इनके कारण समाज विखण्डित नजर आ रहा है। अत: डॉ. लोहिया ने जाति एवं वर्णवाद के निवारण की पहल की और शुद्रों के उत्थान की आवश्यकता पर बल दिया।

14.4.1 वर्ण व्यवस्था का विरोध

डॉ. लोहिया ने यह अनुभव किया कि- "भारत इतने समय तक वर्ण-व्यवस्था के फलस्वरूप तन्द्रा और सड़न की स्थिति में रहा है और अब आन्तरिक असमानता को समाप्त करने का संघर्ष प्रारम्भ हो गया है।" उन्होंने यह नहीं माना कि वर्ण या जाति का आधार स्वभाव तथा कर्त्तव्य विभाजन है। वह यह मानतें हैं कि वर्ण व्यवस्था बल द्वारा निर्मित की गई एक व्यवस्था है, जिसमें गुण-कर्म का कोई मूल्य नहीं है।

14.4.2 सामाजिक विषमताओं पर प्रहार

डॉ. लोहिया ने यह माना कि भारतीय समाज का पतन यहाँ व्याप्त अनेक विषमताओं के कारण हुआ। उनके अनुसार, सामाजिक विषमताओं में वर्ण-व्यवस्था या जाति-प्रथा, नर-नारी असमानता, अस्पृश्यता, रंगभेद-नीति और साम्प्रदायिकता प्रमुख है। हिन्दू समाज की दुर्दशा के लिए वे ब्राह्मणवाद को उत्तरदायी मानतें हैं। इसके मूल में ब्राह्मणवाद का षड़यत्र समझ में आया। साथ ही वणिकवाद की सांठ-गाँठ का भी आभास हुआ। दोनों ने मिलकर ही जाती चक्र रचा है। यह सामाजिक विषमता उसी का ही परिणाम है। इनसे व्याकुल होकर न समता पर आधारित समाज व्यवस्था के पक्षधर थे। अन्य समता की अपेक्षा सामाजिक समता की स्थापना पर अधिक बल दिया।

14.4.3 सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार कर्म होना चाहिए न कि जन्म

डॉ. राम मनोहर लोहिया का मानना था कि सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार कर्म होना चाहिए न कि जन्म। जन्म के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय या वेश्य को उच्च समझना जाति प्रथा को बनाये रखना है। एक व्यक्ति के उच्च वर्ण में केवल जन्म लेने से वह उच्च नहीं हो जाता, बल्कि उसमें उच्चता के अनुकूल गुण एवं योग्यता होनी चाहिए। जाति-प्रथा एक जड़-वर्ग की द्योतक है जिसके कारण भारत का समग्र जीवन निष्प्राण होगया। इसी कारण भारत दासता का शिकार हुआ।

14.4.4 जाति प्रथा के उन्मूलन हेतु सुझाव

जाति प्रथा के उन्मूलन के लिए डॉ. लोहिया ने अनेक सुझाव दिये। सामान्यत: अन्तर्जातीय विवाहों और सहभोजों को उन्होंने महत्त्व दिया। उनकी मान्यता थी कि अन्तर्जातीय विवाहों और सह भोजों से आवश्यक रूप से समता का भाव पैदा होने लगेगा। डॉ. लोहिया ने जाति प्रथा के जोड़ने में वयस्क मताधिकार और प्रत्यक्ष चुनाव की भूमिका पर बल दिया। उनका विचार था कि- "जैसे-जैसे यह वयस्क मताधिकार चलता रहेगा, चुनाव चलते रहेंगे, वैसे-वैसे जाति का ढ़ीलापन बढ़ता रहेगा।" संक्षेप में डॉ. लोहिया ने आम लोगों में राजनीतिक चेतना भरने और राष्ट्र को सशक्त बनाने के लिए जाति-प्रथा की समाप्ति की दिशा में प्रत्यख चुनाव, वयस्क मताधिकार और विशेष अवसर सिद्धान्त की आवयकता पर बद लिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.4.5 आर्थिक दृष्टि से जाति प्रथा तोड़ने पर बल

जाति प्रथा के चलते छोटी जातियाँ सार्वजनिक जीवन से बहिष्कृत की जातीहैं। उनमें दासता की भावना पैदा हो जाती है। इससे ये जातियाँ कमजोर एवं पिछड़ी हो जाती है। इसलिए डॉ. लोहिया की दृष्टि में कमजोर एवं पिछड़ी जातियों को आर्थिक रूप से सबल और उनमें आत्म सम्मान की भावना विकसित करने की आवश्यकता है। डॉ. लोहिया ने सुझाया कि सभी भूमिहीन मजदूरों को साढ़े छः एकड़ जमीन मिले, खेतीहर मजदूरों की मजदूरी बढ़ायी जाए। ऊँची से ऊँची आमदनी या नीचे से नीची आमदनी के बीच मे एक मर्यादा बांधने वाली बात लागू की जाए। इस तरह सामाजिक व्यवस्था के सफल संचालन हेतु समाज में विद्यमान आर्थिक असमानता की खाई को पाटना होगा।

14.4.6 विशेष अवसर का सिद्धान्त

डॉ. लोहिया का विशेष अवसर का सिद्धान्त एक उच्च आदर्श एवं न्याय पर आधारित है। वह सामाजिक न्याय की बात ही नहीं करते थे, बल्कि उसे व्यवहार में लाने के लिए, और वर्ग विहीन तथा जाति-विहीन समाज की स्थापना की दृष्टि से, कमजोर तथा पिछड़े वर्ग लोगों को हर क्षेत्र में प्राथमिकता देने पर बल देते थे। वे इन्हें आठ प्रतिशत आरक्षण देने के पक्षधर थे, ताकि समाज में उन्हें सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हो सके। लोहिया इन कमजोर पिछड़े लोगों को नेतृत्व के पदों पर देखना नहीं चाहते। और उनमें अधिकार-भावना भी भरना चाहते थे। इस प्रकार लोहिया की दृष्टि में ''समान अवसर नहीं, बल्कि प्राथमिकता पर आधारित अवसर इन संकुचित बंधनों की दीवारों की ढ़हा सकता हैं।''

14.5 डॉ. लोहिया के समाजवाद संबंधी विचार

14.5.1 लोकतंत्र एवं स्वतन्त्रता के लिए हित पोषक

डॉ. लोहिया का प्रजातंत्र एवं स्वतंत्रता में अटूट विश्वास था। उन्होंने मार्क्सवाद का विरोध इसी आधार पर किया था, क्योंकि मार्क्स लोकतंत्र एवं स्वतन्त्रता को महत्त्व नहीं देता। वे कहते थे कि यदि कोई मार्क्सवाद पर चलेगा तो तानाशाही उसका एक तत्त्व अवश्य होगा। डॉ. लोहिया व्यक्ति की स्वतन्त्रता के इतने बड़े समर्थक थे कि वे उसको किसी कीमत पर भी छोड़ना नहीं चाहते थे। व्यक्ति की स्वतन्त्रता के लिए यदि राज्य की सत्ता में कमी भी करनी पड़े तो उसके लिए भी तैयार थे।

14.5.2 व्यावहारिकता पर बल

डॉ. लोहिया के समाजवादी चिंतन में व्यावहारिकता की छाया स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। यूरोप के समाजवादी लोगों ने जिस तरह का सिद्धान्तवादी समाजवाद माना है — डॉ. लोहिया उससे बिल्कुल सहमत नहीं है। उसे वे रूढ़ समाजवाद कहते थे। उनका मत था कि यूरोप के समाजवादी चिन्तक अपने राष्ट्रों की समस्याओं से ही सम्बन्धित बातें में उलझे हुए हैं और समाजवाद के विश्व दर्शन से बहुत दूर हैं। इस तरह उन्होंने ऐसे समाजवाद को अपनाने पर बल दिया जो हमारी परिस्थितियों के अनुकूल हो जिससे हमारी समस्याओं का समाधान हो सकें।

14.5.3 समाजवाद को नवीन प्रकृति देने का प्रयास

स्वतन्त्र चिन्तक होने के कारण डॉ. लोहिया समाजवाद को एक नई प्रकृति देना चाहते थे। उन्होंने सन् 1950 में समाजवादियो के मद्रास सम्मेलन में कहा था कि अब समाजवाद को विभिन्न आदर्शों की जरूरत नहीं है। जरूरत सिर्फ इस बात की है कि हम सामाजिक सच्चाईयों को समझें और उनको समाजवादी मोड़ देने के लिए किसी की रूढ़ मान्यता से न बंधे रहे। आज आवश्यकता इस बात की है कि नव स्फूर्त समाज की स्थापना की जाए।

14.5.4 समाजवाद को नवीन चिन्तन एवं कर्म की आवश्यकता

डॉ. लोहिया साम्यवादियों की इस बात को नहीं मानते थे कि पूँजीवाद की चरम सीमा से समाजवाद का उदय होगा। उनका कहना था कि समाजवाद को मूर्त रूप देने के लिए प्रयत्न करना होगा। नये तौर से व्यापक चिन्तन करना होगा। वे मार्क्सवादियों की इस बात को कोरी मूर्खता कहते थे कि चिन्तन का कार्य मार्क्सकर चुका है और किसी नये चिन्तन की आवश्यकता नहीं है। वे कहते थे किसमाजवाद लाने के लिए निरन्तर चिन्तन और कर्म की आवश्यकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.5.5 विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के समर्थक

डॉ. लोहिया पूंजीवादी या समाजवादी उत्पादन तकनीकी को भारत के लिए ठीक नहीं समझते थे। उनका कहना था कि यहाँ के समाजवाद में जो भी उत्पादन की तकनीकी होगी वह इस बात पर आधारित होगी कि यहां पर कितने छोटे-छोटे खेत है, यहाँ की जनसंख्या कितनी है और वहाँ पर पूंजी कितनी है आदि। इसलिए डॉ. लोहिया विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के पक्षधर थे जो भारत और एशिया की विशेष आर्थिक दशा को सामने रखकर नियोजित की जाए।

14.6 राजनीतिक विचार

समाजवादी चिन्तन में सर्वाधिक प्रभावशाली आर्थिक तत्त्व होता है लेकिन डॉ. लोहिया के समाजवादी दर्शन में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक तत्त्व भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनके राजनीतिक विचार व्यापक हैं, जिसमे व्यक्ति एवं समाज से संबंधित तमाम पहलूओं पर विचार किया गया है। डॉ. लोहिया के राजनीतिक दर्शन के प्रमुख तत्त्व इस प्रकार हैं-

लोहिया के राजनीतिक विचार

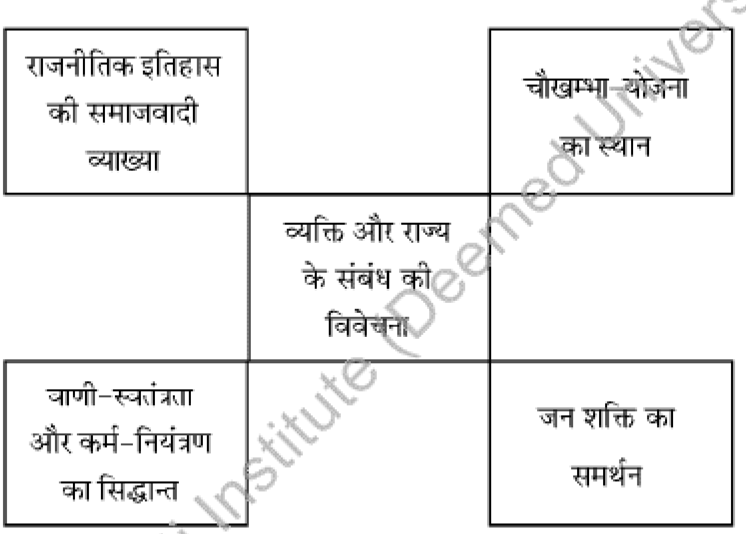

- ❖ यदि कोई राष्ट्र ये दावा करे कि हमेशा उसकी शक्तियाँ समान रहेंगी तो यह उसकी बहुत बड़ी भूल होगी।
- ❖ एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था, जिसके चार आधार होते हैं — ग्राम, मण्डल, प्रांत व केन्द्र, जिनका परस्पर घनिष्ट संबंध होगा।
- ❖ व्यक्ति और राज्य दोनों ही एक-दूसरे के विकास में भागीदार होते हैं।

14.6.1 राजनीतिक इतिहास की समाजवादी व्याख्या

इतिहास चक्र में सभी देशों का समान रूप से उत्थान-पतन होता है, चाहे कोई भी देश कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो। कोई देश हमेशा के लिए न तो वैभवशाली और धनवान होता है और न हमेशा के लिए उनसे रहित। इतिहास बताता है किजो देश पहले शक्तिशाली थे उनका भी पतन हो गया और जो पहले कमजोर थे, उनका उत्थान हो गया।

14.6.2 चौखम्भा-योजना का स्थान

डॉ. लोहिया के राजनीतिक चिन्तन में चौखम्भा-योजना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने न केवल आर्थिक, अपितु राजनीतिक विकेन्द्रीकरण को प्रमुख स्थान दिया। राजनीतिक विकेन्द्रीकरण राजनीतिक समता एवं सम्पन्नता का द्योतक हैं। वे राजनीतिक केन्द्रीकरण के विरोधी थे। उनका कहना था कि इससे 'दिमाग जकड़ गये हैं, विचारों का स्थान प्रचारों ने ले लिया है....... आज विचार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शक्ति का गुलाम बन गया है।' यदि प्रजातांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ करना है तो विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को अपनाना होगा ताकि शासन में स्थानीय लोगों की अधिकाधिक भागीदारी सुनिश्चित की जा सके। दो खम्भों-केन्द्र एवं प्रान्त-वाली संघात्मक व्यवस्था को डॉ. लोहिया अपर्याप्त मानते थे। उनके अनुसार, ''बड़ी राजनीति, देश के कूड़े को बुहारती है, छोटी राजनीति, मोहल्ले अथवा गांवों के कूड़े को।'' इसलिए उन्होंने अपनी चौखम्भा-योजना के तहत ग्राम, मण्डल, प्रान्त और केन्द्र इन चार समान प्रतिभा और सम्मान वाले खम्भों में शक्ति के विकेन्द्रीकरण का सुझाव दिया।

14.6.3 वाणी-स्वतन्त्रता और कर्म-नियन्त्रण का सिद्धान्त

वाणी की स्वतन्त्रता का सशक्त प्रतिपादन करते हुए डॉ. लोहिया ने जनतांत्रिक देशों से आग्रह किया कि वे व्यक्ति को भाषण और अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता दें। ऐसा साम्यवादी देशों में संभव नहीं हो सकता, क्योंकि वहां सर्वहारा वर्ग की तानाशाही होती है। स्वतन्त्रता के साथ-साथ डॉ. लोहिया ने जो कर्म नियन्त्रण की बात कही, वह महत्त्वपूर्ण है। कर्म-नियन्त्रण को उन्होंने दो प्रकार से बतलाया— प्रथम सिद्धान्त और विधान वर्जित कामों को न करें और द्वितीय सम्मेलन विधान द्वारा आदेशित कामों को करें।

14.6.4 जन-शक्ति का समर्थन

जन-शक्ति से उनका तात्पर्य जन-इच्छा से था। यह वह जन इच्छा है जो डॉ. लोहिया द्वारा अपनी पुस्तक 'सात क्रांतियों का सूत्रपात में की है- 1. नर-नारी की समानता के लिए, 2. चमड़ी-रंग पर रची असमानताओं के विरूद्ध, 3. जन्मजात तथाजाति-प्रथा के खिलाफ, 4. परदेशी गुलामी के खिलाफ, 5. निजी पूंजी की विषमताओं के खिलाफ, 6. अस्त्र-शस्त्र के खिलाफ, 7. सत्याग्रह के लिए।' डॉ. लोहिया के विचार में राज्य को आन्तरिक एवं बाह्य दोनों मामलों में अपनी शक्ति का इस्तेमाल हमेशा जन इच्छा की दृष्टि से, विकास के हित से करना चाहिए।

14.6.5 व्यक्ति और राज्य के संबंधों की विवेचना

डॉ. लोहिया ने तो व्यक्ति और समाज को एक ही माना है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि व्यक्ति समाज से जन्मा है और समाज भी व्यक्ति से जन्मा है। जिस प्रकार व्यक्ति का विकास समाज द्वारा होता है, उसी प्रकार समाज का विकास व्यक्ति द्वारा होता है। डॉ. लोहिया ने कहा है कि- ''व्यक्ति एक साध्य और एक साधन दोनों है, एक साध्य के रूप में वह सबके प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति करता है, एक साधन के रूप मे वह अन्याय के विरूद्ध क्रांतिकारी क्रोध का उपकरण है।''

14.7 मौलिक अधिकार संबंधी विचार

डॉ. राम मनोहर लोहिया ने मौलिक अधिकारों पर विशेष बल दिया है। उनका तर्क है कि मौलिक अधिकारों के बिना व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं हो सकता। अतः मानव जीवन को संस्कृत एवं गौरवमय बनाने के लिए मौलिक अधिकारों का अनुमोदन किया, जो लोकतांत्रिक समाजवादी जीवन के अनिवार्य अंग है। उनकी राय में राज्य मौलिक अधिकारों को जन्म देने वाला न होकर केवल औचित्य प्रदान करने वाला होता है। डॉ. लोहिया के मौलिक अधिकार संबंधी विचार निम्न है-

14.7.1 बौद्धिक स्वतन्त्रता के अधिकार का समर्थन

डॉ. लोहिया चिन्तन एवं अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्ष में थे। डॉ. लोहिया समाजवादी होते हुए, बौद्धिक स्वतन्त्रता पर साम्यवादी देशों द्वारा लगाए गये अंकुश के कट्टर आलोचक थे। साम्यवादी व्यवस्था मनुष्य को मौलिक अधिकारों से वंचित रखती है। यह सम्पूर्ण मानव जाति के पतन का द्योतक है। इस प्रकार डॉ. लोहिया ने 'वाणी स्वतन्त्रता और कर्म नियन्त्रण' के सिद्धान्त द्वारा बौद्धिक स्वतन्त्रता का व्यापक अनुमोदन किया।

14.7.2 अत्याचारी एवं अन्यायी कानूनों का प्रतिरोध का अधिकार

डॉ. लोहिया के अनुसार ये अधिकार सभी नागरिकों को प्राप्त होने चाहिए। लेकिन ऐसा अहिंसात्मक तथा शांतिमय ढ़ग से होना चाहिए। यही कारण है कि डॉ. लोहिया ने सविनय अवज्ञा के अधिकार का समर्थन किया। वह इसे मौलिक अधिकार मानते हैं। उन्होंने एक ओर प्राण-दण्ड देने का विरोध किया, तो दूसरी और आत्म हत्या के अधिकार का समर्थन किया। उनका मत है कि व्यक्ति आत्महत्या तब करता है, जब वह अपने जीवन से ऊब जाता है और उसके स्तर में गिरावट आ जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.7.3 धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार

डॉ. लोहिया धर्मनिरपेक्ष राज्य के समर्थन होने के कारण धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार का पक्ष लेते थे। उनका मत था कि किसी भी नागरिक के साथ धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए और सभी को विकास के समान अवसर उपलब्ध होनें चाहिए। इसके अलावा नागरिकों को अपने धर्म का प्रचार करने, धार्मिक क्रिया कलाप करने, धार्मिक संस्थाओं के संचालन करने आदि की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

14.7.4 समता का अधिकार

भारतीय समाज में विद्यमान विषमताओं को समाप्त करने क लिए समता की भावना और व्यवहार को सर्वक्षेत्रीय बनाने में उन्होंने भारी योगदान दिया। डॉ. लोहिया ने नर–नारी समता, जाति उन्मूलन, रंग भेद और छुआछूत की समाप्ति के न केवल सिद्धान्त तथा कर्म प्रस्तुत किये, बल्कि व्यापक रूप में स्वयं संघर्ष भी किया। उन्होंने वैधानिक, आर्थिक राजनीतिक तथा धार्मिक सभी क्षेत्रों में समानता के अधिकार का समर्थन किया। वह वैधानिक समता के तहत विधि के समक्ष समानता राजनीतिक समता के तहत भेदभाव रहित सार्वभौमिक मताधिकार, आर्थिक समता के अन्तर्गत समाजवाद की स्थापना और धार्मिक समता के अन्तर्गत धर्मनिरपेक्षता एवं सहिष्णुता की अवधारणा को अपनाने पर बल प्रदान करते हैं। इस प्रकार लोहिया ने न केवल मौलिक अधिकारों, अपितु समस्त मानवाधिकारों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक त्रिकास के लिए अनिवार्य बतलाया। इन्हीं की प्रगति से व्यक्ति एवं समाज का जीवन उच्च तथा समृद्ध हो पायेगा।

14.8 डॉ. लोहिया के अन्तरराष्ट्रीय–व्यवस्था संबंधी विचार

डॉ. राममनोहर लोहिया भारत में ही नहीं, अपितु विश्व में एक मौलिक चिन्तक रूप में स्थान रखते हैं। उनका चिन्तन केवल भारत तक ही सीमित नहीं रहा। उनके समाजवादी दर्शन का स्वरूप विश्वव्यापी है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर लोहिया जिन विचारों को प्रतिष्ठित करना चाहते थे, वे हैं–

- विश्व समाजवाद का दर्शन
- संयुक्त राष्ट्र संघ के पुनर्गठन का नवीन आधार
- अन्तरराष्ट्रीय जाति–प्रथा का उन्मूलन
- विश्व–विकास की सीमित पहल
- विश्व सरकार का स्वप्न
- निशस्त्रीकरण का सशक्त प्रतिपादन
- साक्षात्कार का सिद्धान्त
- अन्तरराष्ट्रीयवाद

14.9 सारांश

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राममनोहर लोहिया के विचारों को भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल माना जाता है। उनके विचारों का प्रमुख उद्देश्य भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करते हुए एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था का सूत्रपात करना, जो लोकतंत्र व समाजवाद पर आधारित हो तथा समाज के उस वर्ग के हितों का संरक्षण किया जाए जो शोषण एवं सामाजिक विषमताओं को लम्बे समय तक झेल रहा था। वे एक ऐसी अर्थव्यवस्था कायम करना चाहते थे, जो विकेन्द्रीकरण पर आधारित हो तथा सभी की अपनी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने का अवसर मिल सके।

- लोहिया के विचार सामाजिक न्याय पर आधारित हैं,
- उनके समाजवाद का लक्ष्य समाज को व्यवस्थित रूप प्रदान करते हुए मूलभूत सामाजिक समस्याओं का समाधान करना,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- ❖ अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उनका मत था कि राष्ट्रों में पारस्परिक सहयोग को बढ़ावा देना चाहिए तथा विश्व सरकार जैसे तंत्र की स्थापना की जानी चाहिए। ऐसा होने से अन्तरराष्ट्रीय शांति को प्रोत्साहन मिलेगा।

14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राम मनोहर लोहिया, ''इतिहास–चक्र'', लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. राम मनोहर लोहिया, ''द कास्ट सिस्टम'', नव हिन्द, हैदराबाद
3. इन्दुमति केलकर, ''लोहिया : सिद्धान्त और कर्म'', नव हिन्द, हैदराबाद
4. ताराचन्द दीक्षित, ''डॉ. लोहिया का समाजवादी दर्शन'', लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
5. राजेन्द्र मोहन भटनागर, ''समग्र लोहिया'' किताब घर, दिल्ली
6. राम मनोहर लोहिया, ''मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म'', नव हिन्द हैदराबाद
7. राम मनोहर लोहिया, '' धर्म पर एक दृष्टि'', नव हिन्द, हैदराबाद
8. राम मनोहर लोहिया, ''समाजवाद की अर्थ–नीति'', नव हिन्द, हैदराबाद
9. राम मनोहर लोहिया, ''समाजवादी आन्दोलन का इतिहास'', समता न्यास प्रकाशन, हैदराबाद
10. राम मनोहर लोहिया, ''गिल्टी मैन ऑफ इण्डिया'', समता न्यास प्रकाशन, हैदराबाद

14.11 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. डॉ. राममनोहर लोहिया के सामाजिक विचार स्पष्ट कीजिए।
2. डॉ. लोहिया के समाजवाद संबंधी विचारों की व्याख्या कीजिए।
3. डॉ. लोहिया के अधिकार संबंधी विचारों पर प्रकाश डालिए।
4. डॉ. लोहिया के राजनीतिक विचार स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. लोहिया के अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था संबंधी विचार बताओ।
2. जाति प्रथा के उन्मूलन हेतु लोहिया ने क्या सुझाव दिये।
3. राजनीति के क्षेत्र में लोहिया द्वारा प्रस्तुत चौखम्भा–योजना क्या है ?
4. लोहिया का विशेष अवसर का सिद्धान्त क्या है ?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. लोहिया ने समाजवाद को व्यावहारिक रूप देने के लिए क्या किया ?
2. लोहिया का जन्म कब और कहाँ हुआ ?
3. लोहिया ने कांग्रेस के किस अधिवेशन में पहली बार भाग लिया ?
4. लोहिया व नेहरु ने मिलकर किस पार्टी की स्थापना की ?
5. चौखम्भा योजना में क्या शामिल है ?
6. लोहिया पहली बार कब और किस निर्वाचन क्षेत्र से संसद में पहुँचे ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई - 15 सन्त तुलसी

संरचना

15.1 उद्देश्य
15.2 प्रस्तावना
15.3 आचार्य श्री तुलसी : जीवन यात्रा
15.3.1 युवाचार्य के रूप में उत्तराधिकारी
15.3.2 साहित्य के क्षेत्र में
15.3.3 अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक के रूप में
15.3.4 अन्नामल्ले विश्वविद्यालय में प्रवचन
15.3.5 प्रेक्षाध्यान का सफल प्रयोग
15.3.6 पंथनिरपेक्ष आचार्य के रूप में
15.3.7 अहिंसा एवं शांति के दूत के रूप में
15.3.8 राजीव-लोंगोवाल समझौते में भूमिका
15.3.9 राजनीति के प्रभावक के रूप में
15.3.10 राष्ट्र सेवा एवं मानवतावादी
15.3.11 संस्थाओं की स्थापना
15.3.12 जैन विश्व भारती संस्थान
15.3.13 इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार
15.3.14 आचार्य तुलसी के जीवन की कुछ महत्त्वपूर्ण तिथियाँ
15.4 आदर्श राज्य संबंधी विचार
15.4.1 अध्यात्मवाद पर बल
15.4.2 सौराज्य ही स्वराज्य
15.4.3 सामूहिक सद्भावना
15.5 राष्ट्रीय विकास
15.5.1 राष्ट्रीय विकास के मापदण्ड
15.5.2 विकास के पथ पर अग्रसर करने वाले तत्त्व
15.5.3 राष्ट्र का विकास पुरुषार्थ चेतना से ही सम्भव
15.6 राजनीति
15.7 संसद संबंधी विचार
15.7.1 संसद की सर्वोच्चता में आस्था
15.7.2 सांसदों की योग्यता
15.8 चुनाव संबंधी विचार
15.8.1 उम्मीदवारों का अपना चिन्तन हो
15.8.2 जनता के प्रशिक्षण पर बल
15.8.3 अणुव्रत पर बल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.9 सांसद एवं विधायक
15.9.1 वोट देने के मापदण्ड
15.9.2 जनप्रतिनिधियों के उच्च व्यक्तित्व की कल्पना
15.9.3 सत्ता का आधार नैतिकता एवं सिद्धान्त हो
15.9.4 चुनावी हिंसा का विरोध
15.9.5 सत्ताधीशों की विलासिता पर कटाक्ष
15.9.6 सत्ता एवं विपक्ष की एकता पर बल
15.10 लोकतंत्र संबंधी विचार
15.10.1 लोकतंत्र के आदर्शों की अनुपालना पर बल
15.10.2 लोकतंत्र की मूलभूत समस्याओं की ओर ध्यान
15.10.3 स्वतन्त्रता पर चिन्तन
15.10.4 समानता
15.10.5 जनप्रतिनिधियों के प्रशिक्षण पर बल
15.11 सारांश
15.12 सन्दर्भ ग्रंथ-सूची
15.13 अभ्यास प्रश्नावली

15.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य आचार्य तुलसी जो एक आध्यात्मिक चिन्तक होते हुए भी भारतीय समाज एवं राजनीति के परिप्रेक्ष्य में जो विचार रखे, उन्हें जानना तथा जन-जन तक पहुंचाकर तंत्र को सही दिशा पर अग्रेसित करना है। आचार्यश्री ने अपने विचार ऐसे समय प्रतिपादन करना प्रारम्भ किया, जिस समय राष्ट्र को स्वतन्त्रता मिली थी तथा उच्च स्तरीय व्यवस्था की स्थापना हेतु संविधान का निर्माण किया जा रहा था। उनका यह मत था कि हम व्यवस्था भले ही कैसी ही अपना लें लेकिन नैतिक, आध्यात्मिकता तथा उच्च आदर्शों के बिना सफल नहीं बनाया जा सकता। अत: उन्होंने जो विचार दिये वे हमारे सर्वांगीण विकास के साथ जुड़े हुए हैं तथा उनके अपना लेने से समस्याओं से मुक्ति पायी जा सकती है। इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे —

- आचार्य तुलसी की जीवन यात्रा जो अहिंसा, शांति, मानवता के कल्याण, अणुव्रत की स्थापना, राजनीतिक व्यवस्था में सुधार, राष्ट्रीय एकता इत्यादि की प्राप्ति के लिए जानी जाती है,
- उन संस्थाओं के बारे में जान सकेंगे जिनकी स्थापना आचार्यश्री तुलसी ने आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए की है।
- अणुव्रत आन्दोलन से भी परिचित होने का अवसर मिलेगा, जो अच्छा इन्सान बनने के तरीके बताता है,
- आचार्य तुलसी केवल आध्यात्मिक शक्ति के केन्द्र ही नहीं थे बल्कि वे तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों से भी अच्छी तरह परिचित थे इसलिए उन्होंने पंजाब समस्या के समाधान करने हेतु पहल की तथा राजीव लोंगोवाला समझौते में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, इसे भी जान सकेंगे,
- आदर्श-राज्य संबंधी विचार जो उन्होंने एशियाई कॉन्फ्रेंस के अवसर पर 1947 में प्रस्तुत किये थे, को जान सकेंगे।
- राष्ट्र के विकास के संबंध में उन्होंने व्यापक सुधार योजना प्रस्तुत की, जिसे अपनाकर विकास को प्रोत्साहन दिया जा रहा है,
- राजनीति में उन्होंने नैतिक मूल्यों, सत्य, अहिंसा, उच्च चारित्रिक मापदण्ड स्थापित करने की बात कही उसे भी जान सकें तथा उसे अपनाकर लोकतंत्र के समक्ष जो चुनौतियां आ रही हैं, जैसे राजनीति का अपराधीकरण, भ्रष्टाचार, सांसदों का गिरता चारित्रिक स्तर, जातिवाद का बढ़ता महत्त्व, क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकतावाद इत्यादि पर अंकुश लगाया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.2 प्रस्तावना

बीसवीं सदी के आध्यात्मिक परिदृश्य पर प्रमुखता से उभरने वाला जो नाम है, वह है 'आचार्य तुलसी'। भारत की संत परम्परा को अपनी तेजस्विता से प्रभावित करने वाले इस आचार्य ने भारत को जो दिया, वह इस देश की अनुपम थाती है। अपने त्याग और तपोबल के द्वारा राष्ट्र की अस्मिता को हर कीमत पर बचाये रखना जैसे उनका जीवन संकल्प है। जब-जब राष्ट्र के जन-जीवन में गिरावट आई, उन्हें चोट लगी। उस गिरावट को देखना उन्हें कभी स्वीकार नहीं हुआ। राष्ट्रीय चरित्र को जब-जब आघात लगा, लोगों को उन्होंने झकझोरा। समस्या का संबंध आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिक आदि किसी भी क्षेत्र से क्यों न हो, उनसे ऊपर उठने की हर सम्भव कोशिश आचार्य तुलसी ने की और समाज को उसकी गरिमा का अहसास करवाया। 1947 को लम्बे संघर्ष के पश्चात् भारत को आजादी मिली थी तब राष्ट्र के कर्णधार माने जाने वाले लोग उस समय आर्थिक, औद्योगिक, शैक्षणिक आदि विभिन्न प्रकार की विकास योजनाओं में व्यस्त थे। तब उसी समय आचार्य तुलसी ने राष्ट्र के चारित्रिक एवं भौतिक विकास के लिए अणुव्रत आन्दोलन का शुभारम्भ सरदारशहर से किया। इसके अतिरिक्त राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त बुराईयों के प्रति आगाह किया और उन्हें लोकतंत्र के लिए विनाशकारी माना। राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के लिए उन्होंने अपने जीवन को समर्पित कर दिया और समाज में विद्यमान सभी विभेदों से ऊपर उठने का आग्रह किया।

अध्यात्म की अकूट और अपूर्व सम्पदा इस माटी को जब विरासत में मिली है, फिर अशांति को हम न्योता दें, आचार्य श्री तुलसी की दृष्टि में इससे बड़ी नासमझी हो ही नहीं सकती। आचार्य श्री ने इसी आध्यात्मिक संपदा से भारतीय जनता को परिचित कराने के लिए अनेकों कार्यक्रम प्रारंभ किये। मानवता को त्राण देने वाले इस धर्माचार्य का संक्षिप्त परिचय हम जान लें।

15.3 आचार्य श्री तुलसी : जीवन यात्रा

20 अक्टूबर, 1914 लाडनूं (राजस्थान) में आचार्य श्री तुलसी का जन्म हुआ। उनकी शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई। उस समय किसे पता था कि राजस्थान के साधारण कस्बे में जन्मा यह बालक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर विश्वमानवता को मार्ग दर्शन देने में सक्षम होगा।

बालक तुलसी ने विद्यालय की उच्च शिक्षा तब तक पायी थी जब तक अपने धर्मगुरु के चुम्बकीय आकर्षण में आबद्ध नहीं हुए थे। गुरु के प्रथम दर्शन में ही अभिभूत हुए तुलसी ने संन्यास लेने की ठान ली। उच्च शिक्षा न होने पर भी सद्संस्कारों का बहुत बड़ा खजाना उनके पास था। ग्यारह वर्ष की नाजुक अवस्था में गृहस्थ जीवन की समस्त सुविधाओं को छोड़कर तेरापंथ धर्मसंघ के अष्टमाचार्य श्री कालूगणी के पास दीक्षित हो गए।

मुनि जीवन में प्रवेश के साथ ही साधुचर्या की साधना के साथ-साथ शिक्षा का नया अध्याय भी खुल गया। संस्कृत और प्राकृत भाषा में निबद्ध जैनागमों व अन्य ग्रन्थों के श्लोक कंठस्थ करने प्रारम्भ किये। बाईस वर्ष की अवस्था तक विभिन्न ग्रन्थों के बीस हजार पद्य कंठस्थ कर अपने ज्ञान की समृद्धि की आधारशिलाएँ स्थापित कर ली। इसी अवधि में आचार्य श्री ने न्याय, व्याकरण, कोश, तर्कशास्त्र, जैन आगम, दर्शन, इतिहास व जैन तेरापंथ संविधान, मर्यादा व परम्परा से संबंधित गंभीर ग्रन्थों का विशद अध्ययन किया।

मुनि तुलसी सोलह वर्ष की अवस्था में अध्यापक बन गए। नव दीक्षित बाल मुनियों के अध्यापन का दायित्व उन्हें सौपा गया। यह कार्य उन्हें बहुत रूचिकर लगा। उस समय उनके पास अध्ययन करने वाले अनेक मुनि आगे चलकर तेरापंथ संघ के ख्यातनाम मुनि बन गए।

15.3.1 युवाचार्य के रूप में उत्तराधिकारी

मुनि तुलसी की प्रतिभा, योग्यता और विलक्षण विशेषताओं से प्रभावित होकर आचार्य कालूगणी ने अगस्त 1936 में उन्हें युवाचार्य के रूप में अपना उत्तराधिकारी मनोनित किया। इस घटना के कुछ ही दिनों बाद आचार्यश्री कालूगणी का देहावसान हुआ। 22 वर्षीय युवा प्रतिभा मुनि तुलसी के कंधों पर विशाल तेरापंथ धर्मसंघ का नेतृत्व करने का दायित्व आ गया। जैन इतिहास की यह बिरल और अद्भुत घटना थी।

मुनि तुलसी आचार्य तुलसी के रूप में उभरकर सामने आए। नई पहचान, नया दायित्व और बढ़ती हुई सीमाओं के साथ तेजस्विता और वर्चस्विता उनके व्यक्तित्व की अंग बन गयी। धर्मसंत्र को गतिशील बनाने के लिए उन्होंने प्राथमिकताएँ तय की। साध्वी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

समाज को शिक्षित करना उनकी अहम् प्राथमिकता थी। संघ को विभिन्न दिशा में नये आयाम देने प्रारम्भ किये। इस कार्य में युवाचार्य महाप्रज्ञ का अपूर्व सहयोग मिला।

15.3.2 साहित्य के क्षेत्र में

साहित्य के क्षेत्र में आचार्य श्री तुलसी ने अपने संघ को जागृत किया। स्वयं आचार्य श्री ने हिन्दी, राजस्थानी, संस्कृत आदि विभिन्न भाषाओं में साहित्य सृजन किया है। राजस्थानी में लिखे उनके अनेक काव्य लोकप्रिय हुए। हिन्दी और राजस्थानी में उनके गीत लोकगीतों की तरह जन–जन के अधरों पर थिरकते रहते हैं। जैन आगमों के सम्पादन का सबसे कठिन कार्य आचार्य श्री ने अपने हाथ में लिया। मुनि श्री नथमल (तत्कालीन युवाचार्य महाप्रज्ञ) के सम्पादकीय निर्देशन में पचासों साधु–साध्वियां आगम–सम्पादन के इस महाप्रज्ञ में अपने श्रम की आहुतियाँ देने में निरन्तर संलग्न हुए।

15.3.3 अणुव्रत आन्दोलक के प्रवर्तक के रूप में

भारत को लम्बे संघर्ष के बाद आजादी मिली। राष्ट्र के कर्णधार कहे जाने वाले लोग उस समय आर्थिक, औद्योगिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्र में देश के चहुँमुखी विकास की योजनाएँ तैयार कर रहे थे। वहीं आचार्य श्री तुलसी को तत्कालीन परिस्थितियाँ झकझोर रही थी। उनका कहना था कि देश के भौतिक विकास के साथ–साथ चारित्रिक विकास जरूरी है इसके बिना देश का सन्तुलित विकास नहीं हो सकता। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए आचार्य श्री तुलसी ने 2 मार्च, 1949 को सरदारशहर में अणव्रत आन्दोलन का शंखनाद किया। अणुव्रत का लक्ष्य जाति, सम्प्रदाय, लिंग, वर्ग, भाषा और क्षेत्र के भेदों को मिटाकर मानवमात्र में मानवता की भावना पैदा करना। इसके लिए छोटे–छोटे नियमों की एक आचार संहिता प्रस्तुत की गई। जीवन के जिस दिशा में व्यक्ति अपना विकास करे, पर सच्चा इन्सान होना न भूले। इन्सानियत को अपनाकर चलना यह अणुव्रत का आधारभूत संदेश है।

अणुव्रत को जन–जन तक पहुँचाने के लिए स्वयं आचार्य श्री तुलसी ने एवं उनके शिष्यों ने प्रभूत मात्रा में साहित्य सृजन किया। अणुव्रत के बारे में आज यह धारणा बन गयी है कि यह देश को नई दिशा दे सकता है। अणुव्रत के माध्यम से जन–जन में मानवता की भावना पैदा करने के लिए आपने एक लाख किलोमीटर लम्बी पैदल यात्रा की। उनकी इस यात्रा का व्यापक स्वागत हुआ, हजारों लोगों को अणुव्रत की भावना से अवगत करवाया गया। लेकिन दुर्भाग्यवश इस यात्रा का विरोध भी हुआ फिर भी आचार्य जी ने विरोध का मुकाबला विरोध से नहीं किया। वे कहते हैं– जो हमारा हो विरोध, हम समझें उसे विनोद।

15.3.4 अन्नामलै विश्वविद्यालय में प्रवचन

तमिलनाडु में आचार्य श्री जब पद यात्रा करते हुए पहुंचे, उस समय वहाँ हिन्दी विरोधी आन्दोलन प्रचण्ड रूप ले चुका था। अन्नामलै विश्वविद्यालय इस आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु बना हुआ था। उसी विश्वविद्यालय में आचार्य श्री को प्रवचन देने के लिए आमंत्रित किया गया। कुलपति सहित अनेक प्रोफेसरों ने आचार्य श्री से अनुरोध किया कि आप यहां हिन्दी न बोले। आचार्यश्री भाषा को लेकर किये जाने वाले आन्दोलन को खत्म करवाना चाहते थे। उन्हीं छात्रों के समक्ष हिन्दी में ओजस्वी भाषण दिया। छात्रों ने तालियों की गड़गड़ाहट के साथ उनका स्वागत किया। आचार्य श्री का यह प्रयास निश्चित रूप से प्रभावी था। इससे उत्तर–दक्षिण के बीच की दरार को पाटने में सहायता मिली।

15.3.5 प्रेक्षाध्यान का सफल प्रयोग

आध्यात्मिक उन्नयन के लिए आचार्य श्री के निर्देश से तत्कालीन युवाचार्य महाप्रज्ञ ने प्रेक्षा ध्यान की एक वैज्ञानिक पद्धति जनता के सामने प्रस्तुत की। प्रेक्षाध्यान से हजारों–हजारों लोग लाभान्वित हुए हैं। धर्म को क्रिया–काण्डों और उपासनाओं की जकड़न से मुक्त कर उसे व्यावहारिक और वैज्ञानिक बनाने में प्रेक्षाध्यान के प्रयोग सफल हुए हैं।

15.3.6 पंथ निरपेक्ष आचार्य के रूप में

आचार्य श्री तुलसी एक धर्माचार्य है, पर पंथ निरपेक्ष आचार्य के रूप में उनकी सर्वत्र पहचान है। धर्म को उन्होंने हमेशा सम्प्रदाय से ऊपर रखा। वे कहते हैं–धर्म जब गौण हो जाता है और सम्प्रदाय हावी हो जाता है तभी साम्प्रदायिक उन्माद पैदा होता है। असाम्प्रदायिक धर्म का प्रवर्तन कर आचार्य श्री तुलसी ने यह सन्देश दिया है कि धर्म से न किसी को खतरा होता है और न धर्म को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

किसी से। साम्प्रदायिक आग्रहों से विग्रह पैदा होता है। सम्प्रदाय की सीमा से ऊपर उठकर आचार्य श्री मानवतावादी कार्यक्रम को लेकर जनता के बीच गये। ''इन्सान पहले इन्सान, फिर हिन्दू या मुसलमान'' इस नारे से राष्ट्रीय एकता को बल मिला। मानव धर्म के रूप में आचार्य श्री की आवाज अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर सुनायी दी।

15.3.7 अहिंसा एवं शांति के दूत के रूप में

अहिंसा और शांति के संदेश को विदेशों में जन-जन तक फैलाने के लिए आचार्य श्री तुलसी ने गृहस्थ और साधु के मध्य समण श्रेणी की पृथक स्थापना कर धार्मिक जगत में एक जबरदस्त क्रांति की। यह समण श्रेणी विदेशों में अणुव्रत प्रेक्षा ध्यान के माध्यम से अहिंसा व विश्व शांति के क्षेत्र में प्रभावी कार्य कर रही है।

अहिंसा और शांति की स्थापना आचार्य श्री का प्रमुख लक्ष्य रहा है। इसी लक्ष्य को सामने रखकर अहिंसा प्रशिक्षण के कार्यक्रम प्रारम्भ किये गए। सन् 1988 में लाडनूँ में और 1991 में राजसमन्द में अहिंसा प्रशिक्षण पर आचार्य श्री के नेतृत्व में बड़े अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किये गए जिनमें विभिन्न देशों के सैकड़ों प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

अहिंसा की शक्ति में आचार्य श्री की गहरी आस्था रही है। आतंकवाद से ग्रस्त पंजाब में डर का माहौल जब अत्यधिक था। उस समय आचार्य श्री ने अपने शिष्य-शिष्याओं को वहां भेजा। आचार्यश्री जानते थे कि आतंकवाद के डर से सैकड़ों परिवार पंजाब छोड़कर भागे जा रहे हैं, ऐसे समय में उनके मनोबल और आत्मविश्वास को बढ़ाने की जरूरत है। यह काम प्रशासन एवं सरकार से भी कहीं बेहतर ढंग से उनके साधु-साध्वियाँ कर सकते हैं। लोगों ने आचार्य श्री से आग्रह किया कि आप साधु-साध्वियों को पंजाब न भेजे क्योंकि वहां उनकी जान को खतरा है, लेकिन फिर भी आचार्य श्री ने ग्रुप भेजे।

15.3.8 राजीव - लोंगोंवाल समझौते में भूमिका

पंजाब की समस्या अपना विकराल रूप लिए जा रही थी, कहीं कोई हल नजर नहीं आ रहा था। उसी समय आचार्य श्री तुलसी ने सन्त लोंगोंवाल को अपना एक सन्देश भेजा। 9 जुलाई 1985 को सन्त लोंगोवाल राजस्थान के आमेट कस्बे में आचार्य श्री से मिलने आये। तब तक समाधान होने के कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे। आचार्यश्री तुलसी ने सन्त लोंगोवाल के साथ दो दौर की बातचीत की। उस बातचीत का ठोस नतीजा सामने आया। लोंगोवाल ने केन्द्र सरकार से बातचीत करना स्वीकार किया। आचार्य श्री की प्रेरणा से लोंगोवाल ने तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी से वार्तालाप किया। इसी के परिणाम स्वरूप राजीव-लोंगोवाल समझौता हुआ। इस ऐतिहासिक पंजाब समझौते में आचार्यश्री की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उन्हें बधाई देने तत्कालीन गृहमंत्री एस.बी. चव्हाण आमेट आये।

15.3.9 राजनीति के प्रभावक के रूप में

आचार्य श्री तुलसी ने धर्माचार्य की अपनी भूमिका में रहते हुए भारतीय राजनीति को अपने व्यक्तित्व और कृतत्व से प्रभावित किया। संत की गरिमा से हटकर वे राजनीति में कभी लिप्त नहीं हुए, किसी दल के साथ प्रतिबद्ध नहीं हुए। निष्पक्ष और तटस्थ रहकर सभी दलों के प्रमुखों को उन्होंने दिशा दर्शन दिया है। राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू, पं. जवाहर लाल नेहरू, जय प्रकाश नारायण, आचार्य कृपलानी, आचार्य विनोबा भावे, डॉ. राममनोहर लोहिया जैसे वरिष्ठ लोग आचार्य तुलसी को अत्यन्त आदर और सम्मान देते रहे हैं।

15.3.10 राष्ट्र सेवा एवं मानवतावादी

आचार्य श्री तुलसी ने अपने जीवन के अधिकांश भाग को राष्ट्र सेवा एवं मानवतावाद के लिए समर्पित कर दिया। स्वयं आचार्य श्री ही नहीं, उनके सैकड़ों प्रबुद्ध शिष्य-शिष्याएँ उनके नेतृत्व में राष्ट्र निर्माण के कार्य में निःस्वार्थ भाव से जुड़े हुए थे। राजनीति के सभी प्रमुख दलों के लोग आचार्य श्री की निःस्वार्थ राष्ट्र सेवा और उनके मानवतावादी कार्यों से अत्यन्त प्रभावित थे। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने अपने ग्रन्थ ''लिविंग विद् परपज'' में 14 प्रमुख महापुरुषों का जीवन वृत्त प्रस्तुत किया है। उनमें से आचार्य श्री तुलसी एक हैं। सन् 1961 में आचार्यकाल के 25 वर्ष की सम्पन्नता के अवसर पर तत्कालीन राष्ट्रपति राधाकृष्णन् ने सम्मानित किया। 1971 में राष्ट्रपति वी.वी.गिरि द्वारा युग प्रधान की उपाधि से अलंकृत किया गया। षष्टिपूर्ति के अवसर पर 1974 में राष्ट्रपति फकरूद्दीन अली अहमद ने और आचार्य काल के पचास वर्ष की सम्पूर्ति के ऐतिहासिक अवसर पर 1986 में राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने सम्मानित किया। उस समय उन्हें ''भारत ज्योति'' अलंकरण प्रदान किया गया।

15.3.11 संस्थाओं की स्थापना

आचार्य श्री तुलसी के आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन में अनेक संस्थाएं कार्य रही हैं। उनके नाम इस प्रकार है-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.	अखिल भारतीय अणुव्रत समिति	2.	अणुव्रत विश्वभारती	3.	जय तुलसी फाउण्डेशन
4.	जैन विश्वभारती संस्थान	5.	तेरापंथ महासभा	6.	आदर्श साहित्य संघ
7.	अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद	8.	अखिल भारतीय तेरापंथ महिला मण्डल		

15.3.12 जैन विश्व भारती संस्थान

आचार्य श्री तुलसी ने बहुआयामी कार्यक्रमों को संचालित करने का बीड़ा उठाया ताकि मानव में मानवता के प्रति प्रेम, दया, करुणा एवं त्याग की भावना का विकास किया जा सके। इसी उद्देश्य को आधार मानकर अनेक संस्थाओं की नींव रखी इसी कड़ी में आचार्य श्री ने जैन विश्व भारती संस्थान की स्थापना लाडनूँ में की। इस संस्थान की गतिविधियों एवं असामान्य उपलब्धियों के आधार पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा 20 मार्च 1991 को मान्य विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया। यह संस्थान आचार्य श्री तुलसी के सपनों को साकार कर रहा है और उनके कार्यों को कड़ी मेहनत और लगन के साथ आगे बढ़ा रहा है।

15.3.13 इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार

31 अक्टूबर 1993 में अणुव्रत अनुशास्ता को इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार राष्ट्रीय एकता के संवर्द्धन में उल्लेखनीय योगदान के लिए उन्हें दिया गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंहराव द्वारा इन्दिरा गांधी की पुण्य तिथि पर एक भव्य समारोह में यह पुरस्कार उन्हें समर्पित किया गया।

15.3.14 आचार्य तुलसी के जीवन की कुछ महत्त्वपूर्ण तिथियाँ

- 20 अक्टूबर, 1914 : जन्म लाडनूँ (राजस्थान)
- 5 दिसम्बर, 1925 : दीक्षा लाडनूँ (राजस्थान)
- 21 अगस्त, 1936 : युवाचार्य पद, गंगापुर (राजस्थान)
- 27 अगस्त, 1936 : आचार्य पद, गंगापुर (राजस्थान)
- 2 मार्च, 1949 : अणुव्रत-प्रवर्तन, सरदारशहर (राजस्थान)
- 12 अप्रैल, 1949 : अणुव्रत यात्रा-प्रारम्भ, रतनगढ़ (राजस्थान)
- 8 जुलाई, 1960 : तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह, केलवा (राजस्थान)
- 18 सितम्बर, 1961 : धवल-समारोह, बीकानेर (राजस्थान)
- 8 फरवरी, 1965 : मर्यादा महोत्सव शताब्दी, बालोतरा (राजस्थान)
- 4 फरवरी, 1971 : युगप्रधान आचार्य के रूप में सम्मान, बीदासर (राजस्थान)
- 1972 : प्रेक्षाध्यान आचार्य के रूप में सम्मान, बीदासर (राजस्थान)
- 13 जनवरी, 1972 : साध्वी प्रमुखा मनोनयन, गंगाशहर (राजस्थान)
- 16 जनवरी, 1974 : षष्टपूर्ति समारोह, दिल्ली
- 18 नवम्बर, 1974 : महावीर पचीसवीं निर्वाण शताब्दी, दिल्ली
- 23 दिसम्बर, 1975 : पचासवाँ दीक्षा-कल्याणक, लाडनूँ (राजस्थान)
- 20 फरवरी, 1977 : कालू जन्म शताब्दी, छापर (राजस्थान)
- 4 फरवरी, 1979 : आचार्य महाप्रज्ञ के रूप में उत्तराधिकारी का मनोनयन, राजलदेसर
- 9 नवम्बर, 1980 : जैन शासन में संन्यास की अभिनव श्रेणी-समण-दीक्षा
- 11 फरवरी, 1981 : जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य के अनुशासन वर्ष प्रारम्भ, सरदारशहर (राजस्थान)
- 26 अगस्त, 1981 : जयाचार्य निर्वाण शताब्दी समारोह, दिल्ली
- 22 सितम्बर, 1985 : अमृत महोत्सव
- 14 फरवरी, 1986 : 'भारत ज्योति अलंकरण' राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह द्वारा राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर का सर्वोच्च अलंकरण
- 21 फरवरी, 1989 से 11 जनवरी, 1990 : योगक्षेम वर्ष, लाडनूँ (राजस्थान)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

❖ **1992-93 : भिक्षु चेतना वर्ष**

❖ 14 जून 1993 : वाक्पति अलंकरण

❖ 31 अक्टूबर 1993 : इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार

15.4 आदर्श - राज्य संबंधी विचार

आचार्य श्री तुलसी के विचारों का संबंध केवल धार्मिक या आध्यात्मिक क्षेत्र से न होकर राजनीतिक क्षेत्र से भी जुड़ा हुआ है। राजनीति के संबंध में उनके विचार राज्य एवं राजनीतिक व्यवस्था के लिए लाभप्रद है। उन्होंने परिस्थितियों को आधार मानकर राज्य को नवीन दिशा देने का प्रयास किया। क्योंकि आचार्य श्री का मुख्य उद्देश्य ही मानवता की भावना का विकास करना, मनुष्य कष्टों का निवारण, मनुष्य की आत्मिक शांति को प्रोत्साहन एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में मनुष्य का झुकाव बढ़ाना है। अत: इन क्षेत्रों में राज्य सकारात्मक भूमिका अदा कर सकता है। राज्य को आदर्श रूप देने की आवश्यकता पर बल दिया और कहा कि जब तक राज्य आध्यात्मिकवाद पर नहीं चलेगा तब तक वह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता। इसी कड़ी में 23 मार्च, 1947 को दिल्ली में पं. जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में आयोजित एशियाई कान्फ्रेस के अवसर पर आचार्य श्री तुलसी ने आदर्श-राज्य के संबंध में विचार प्रस्तुत किये।

15.4.1 अध्यात्मवाद पर बल

जहाँ कहीं जो कोई समस्या विषम बन जाए तो उसके अन्तस्तत्व को ढूँढ निकालने की चेष्टा करना, उसको सुलझाने का सरल उपाय है। आज विभिन्न राष्ट्रों के नेता शांति के उपाय एवं समस्या समाधान का प्रयास कर रहे हैं लेकिन इनकी स्थापना के सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय अध्यात्मवाद की ओर किसी का भी ध्यान नहीं गया है। अध्यात्मवाद के सिवाय लालसा को सीमित करने का और कोई भी समर्थ उपाय नहीं है। लालसा की कहीं भी इति नहीं, अनन्त है। जैसा कि भगवान महावीर ने फरमाया है कि -हिमालय के समान बड़े-बड़े असंख्य चांदी-सोने के पहाड़ हाथ लग जाए तो भी लालची मनुष्य उससे जरा भी तृप्त नहीं होता चूंकि मानसिक तृष्णा आकाश के समान अनन्त है। जब तक सब लोग स्वतंत्र हृदय से लालसा का विरोध न करेंगे तब तक शांति की कामना को सफल नहीं किया जा सकता। आज अध्यात्मवाद को भूलकर भौतिकवाद की दौड़ में अन्धे हो गए हैं। जिसके कारण महायुद्धों, भोजन के अभाव में लाखों लोगों की मौतें, साम्प्रदायिक उन्माद आदि को बढ़ावा मिल रहा है।

15.4.2 सौराज्य ही स्वराज्य

सब लोग स्वतन्त्रता और स्वराज्य के इच्छुक हैं। इनको पाने के लिए प्रयत्नशील हैं, पर उन्हें सोचना चाहिए कि सौराज्य को पाये बिना स्वराज्य से कुछ नहीं बनता। इस प्रकार सौराय ही स्वराज्य है। सौराज्य की परिभाषा निम्न प्रकार है-

1. सौराज्य वह है, जो कि देशवासी अपने-अपने शुद्ध धर्माचरण में पूर्ण स्वतंत्रता का अनुभव करें।
2. सौराज्य का यह अर्थ है कि लोगों के आपसी झगड़ों का अन्त हो जाए।
3. सौराज्य का अर्थ यह है कि देशवासी हिंसक, असत्यवादी, चोर, व्याभिचारी, अर्थ संग्रह के लोलुप, दाम्भिक, दूसरों की निन्दा करने वाले एवं दूसरों की उन्नति पर जलने वाले न हो।
4. सौराज्य वह है कि सदाचारी, अध्यात्मवाद के प्रचारक, पारमार्थिक उपकार के कर्णधार, दुराचार से भय खाने वाले साधु पुरुषों का आदर हो।
5. सौराज्य का अर्थ यह है कि धर्म के नाम पर ठगने वाले, आडम्बर के द्वारा अत्याचार फैलाने वाले विचारों का प्रचार न हो।
6. सौराज्य का अर्थ है कि राज्य कर्मचारियों एवं व्यापारियों की नीति शोषण करने वाली न रहे।
7. सौराज्य वह है, जिसमें एक-दूसरे के प्रति घृणा फैलाने की चेष्टा न की जाए।
8. सौराज्य का अर्थ है-लोग अनुशासनहीन न बनें, गुरुजनों का अभिवादन किया जाए। अन्याय का आचरण न किया जाए। कोई किसी की ओर तिरस्कार की दृष्टि से न देखें।
9. सौराज्य का अर्थ है कि जिसमें धर्मानुकूल अधिकार सबसे समान हो।

इस प्रकार उपर्युक्त संस्कृतियों का अनुसरण करने वाला राज्य ही सौराज्य हो सकता है। अन्यथा स्वराज्य और परराज्य में अन्तर ही क्या है ?अन्ततोगत्वा एक बार फिर मैं सबसे अनुरोध करता हूँ कि इस युग के निर्माण में, राष्ट्र व्यवस्था के विधान में, स्वराज्य की प्राप्ति में अध्यात्मवाद को नहीं भूलना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

15.4.3 सामूहिक सद्‌भावना

चूंकि अध्यात्मवाद भारतीय जन एवं भारत भूमि का प्रण है। भारतीय संस्कृति धर्मप्रधान है। अनेकों अध्यात्म शिरोमणि महात्माओं ने अवतार धारण कर इस भारत भूमि को पवित्र किया था। अध्यात्मवाद के द्वारा जनता को सुख का प्रशस्त पथ दिखला रहे हैं। अत: हमें अपनी संस्कृति को नहीं भूलना है।

समाज और राष्ट्र में सद्‌भावना का ऐसा वातावरण हो, जिसमें मनुष्य के साथ किसी प्रकार का भेद न किया जाए। सद्‌भावना की स्थापना के लिए निम्न कदमों का उल्लेख आचार्य श्री तुलसी ने किया है–

1. राजनैतिक निर्माण में भी अध्यात्मवाद का अनुसरण करना चाहिए।
2. अध्यात्मवाद के प्राणभूत धर्म की निरन्तर उपासना करनी चाहिए।
3. अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अनियन्त्रित आदि धार्मिक नियमों की ओर से उदासीन नहीं रहना चाहिए। उनको हर समय याद करना आवश्यक है।
4. व्यक्तिगत, जातिगत, समाजगत एवं राष्ट्रगत आक्षेप नहीं करना चाहिए।
5. व्यक्ति, जाति, समाज आदि के बीच होने वाले वैमनस्य, विरोध और विषमता के कारणों को खोजना चाहिए और उनका अध्यात्मवाद के द्वारा प्रतिकार करना चाहिए।
6. समाचार–पत्रों–सम्पादकों, राजनैतिक नेताओं एवं धर्म गुरुओं को भी ऐसा प्रचार नहीं करना चाहिए, जिससे साम्प्रदायिक कलह को प्रोत्साहन मिले।
7. शिक्षा का मुख्य लक्ष्य आत्म–विकास होना चाहिए। उसमें भी आत्म–नियन्त्रण की मुख्यता रखी जानी चाहिए।
8. पारस्परिक विचारों की विषमता होने पर भी घृणा फैलाने की नीति को नहीं अपनाना चाहिए।
9. धर्म के नाम पर अधर्माचरण का प्रचार न हो और अधर्माचरण की रूकावट के साथ धार्मिक स्वत्वों को बाधा न पहुँचे, वैसा प्रयास होना चाहिए।
10. वर्ण, जाति, स्पृश्य–अस्पृश्य आदि भाव से किसी का भी तिरस्कार नहीं करना चाहिए, घृणा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।
11. सौराज्य बिना स्वराज्य की कोई कीमत नहीं, इसकी वास्तविकता को हर वक्त ध्यान में रखना चाहिए।

इस प्रकार सामूहिक सद्‌भावना के आधार पर व्यक्ति और समष्टि सबके हितों का निर्माण हो सकता है, अन्यथा नहीं।

15.5 राष्ट्रीय विकास

राष्ट्रीय विकास हेतु वे अनुशासन और मर्यादा की प्राण–प्रतिष्ठा को अनिवार्य मानते हैं। उनकी अवधारणा है कि अनुशासन व व्यवस्थाविहीन राष्ट्र तो शत्रु के बिना ही पराजित हो जाता है। आधुनिक समय में राष्ट्रीय विकास के मापदण्ड माने जाते हैं जैसे– विशाल क्षेत्र, सुदृढ़ सैन्य शक्ति, अस्त्र–शस्त्रों का विशाल भण्डार, नवीन वैज्ञानिक आविष्कार, सोना, चांदी के विशाल भण्डार आदि आचार्यश्री ने इसका विरोध किया और कहा कि यदि इन्हीं का नाम राष्ट्र–निर्माण होता है तो मैं जोर देकर कहूंगा, यह राष्ट्र–निर्माण नहीं, बल्कि राष्ट्र का विध्वंस है।

देश की समस्या को व्यक्त करने वाले प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में उनके राष्ट्र–चिन्तन के गांभीर्य को समझा जा सकता है– ''जिस देश में करोड़ों व्यक्तियों को दलित समझा जा रहा है, उन्हें अस्पृश्य माना जा रहा है, उनके सामने भोजन और मकान की समस्या है, स्वास्थ्य और शिक्षा की समस्या है, क्या उस देश में अपने आपको स्वतंत्र और सुखी मानना लज्जास्पद नहीं है ?''

राष्ट्र के विकास में वे तीन मूलभूत बाधाओं को स्वीकार करते हैं– ''जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण का अभाव, आत्म–नियन्त्रण की अक्षमता तथा बढ़ती आकांक्षाएँ–ये ऐसे कारण हैं जो देश को समस्याओं की धधकती आग में झोंक रहे हैं।''

15.5.1 राष्ट्रीय विकास के मापदण्ड

आचार्य तुलसी कहते है– मेरे सपनों में हिन्दुस्तान का एक रूप हैं, वह इस प्रकार है–

- ❖ देश में गरीबी न रहे।
- ❖ किसी प्रकार का धार्मिक संघर्ष न हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- ❖ कोई किसी को अस्पृश्य मानने वाला न हो।
- ❖ मादक पदार्थों का सेवन करने वाला न हो।
- ❖ कोई रिश्वत लेने वाला न हो।
- ❖ कोई शोषण करने वाला न हो।
- ❖ कोई दहेज लेने वाला न हो।
- ❖ वोटों का विक्रय न हो।

15.5.2 विकास के पथ पर अग्रसर करने वाले तत्त्व

- ❖ मनुष्य क्रूरता के स्थान पर करुणा का इकाई पढ़े।
- ❖ स्वार्थ के स्थान पर परमार्थ का इकाई पढ़े।
- ❖ अव्रत के स्थान पर अणुव्रत का इकाई पढ़े।
- ❖ धर्म निरपेक्षता के स्थान पर धर्म–सापेक्षता का इकाई पढ़े।
- ❖ अलगाववाद और जातिवाद के स्थान पर भाईचारे का इकाई पढ़े।
- ❖ प्रान्तवाद और भाषावाद के स्थान पर राष्ट्रीय एकता व मानवता का इकाई पढ़े।
- ❖ धर्म को राजनीति से पृथक् रखने का इकाई पढ़े।
- ❖ राजनीति पर धर्म के नियन्त्रण का इकाई पढ़ो।
- ❖ अपनी ओर से किसी का हित करने का इकाई पढ़े।

15.5.3 राष्ट्र का विकास पुरुषार्थ चेतना से ही सम्भव

आचार्य श्री तुलसी का निश्चित अभिमत है कि राष्ट्र का विकास पुरुषार्थ चेतना से ही सम्भव है। वे कहते हैं कि "जो भारत किसी जमाने में पुरुषार्थ एवं सदाचार के लिए विश्व के रंगमंच पर अपना सिर उठाकर चलता था, आज वहीं पुरुषार्थ हीनता एवं अकर्मण्यता फैल रही है। मेरा तो ऐसा सोचना है कि हिन्दुस्तान को अगर सुखी बनाना है, स्वतंत्र रहना है, तो वह विलासी न बने, श्रम को न भूले।"

15.6 राजनीति

किसी भी राष्ट्र को उन्नति और समृद्धि की ओर अग्रसर करने में सक्रिय, साफ–सुथरी एवं मूल्यों पर आधारित राजनीति की सर्वाधिक आवश्यकता रहती है। आचार्य तुलसी की दृष्टि में वही राजनीति अच्छी है, जो राज्य को कम से कम कानून के घेरे में रखती है। राष्ट्र के नागरिकों के लिए स्वच्छ प्रशासन देती है। देश की राजनीति को स्वस्थ एवं स्थिर रूप देने के लिए वे निम्न चिन्तक–बिन्दुओं को प्रस्तुत करते हैं–

1. शासन का लोकतांत्रिक एवं सम्प्रदाय निरपेक्ष स्वरूप अक्षुण्ण रहे। शासन की दृष्टि में यदि हिन्दू, मुसलमान, अकाली आदि भेद रेखाएं जन्मेंगी तो 'भारत' नहीं रहेगा।
2. सत्य एवं अहिंसात्मक आचार नीति बनी रहे। हिंसा और दोहरी नीति अन्ततः लोकतंत्र की विनाशक बनेगी।
3. व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता एवं सिद्धान्तवादी राजनीति का पुनर्स्थापना।
4. चुनाव पद्धति एवं परिणाम को देखते हुए शासन पद्धति में परिवर्तन।
5. चरित्र–हनन की घातक प्रवृत्ति का परित्याग।
6. विधायक आचार संहिता का निर्माण।
7. नैतिक शिक्षण एवं साम्प्रदायिक सौहार्द।

15.7 संसद

15.7.1 संसद की सर्वोच्चता में आस्था

संसद राष्ट्र की सर्वोच्च संस्था है। आचार्य तुलसी मानते है कि देश का भविष्य संसद के चेहरे पर लिखा होता है। यदि वहां भी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शालीनता और सभ्यता भंग होती है तो समस्या सुलझने की बजाय उलझती जाती है। संसद की शालीनता भंग करने वाली स्थिति का वर्णन करते हुए कहते है कि –''छोटी-छोटी बातों पर अभद्र शब्दों का व्यवहार, हो हल्ला, छींटा-कशी, हंगामा और बहिर्गमन आदि ऐसी घटनाएं हैं, जिनसे संसद जैसी प्रतिनिधि संस्था का गौरव घटता है।''

15.7.2 सांसदों की योग्यताएँ

संसद में ऐसे व्यक्तित्व आने चाहिए जो राष्ट्र, संसद एवं व्यवस्था के गौरव की रक्षा कर सके। इस बात को आचार्य तुलसी स्वयं न कहकर संसद के द्वारा कहलवा रहे है। संसद के मुख से उद्‌गीर्ण उनका वक्तव्य काफी वजनी है। संसद जनता से चिल्ला-चिल्लाकर कही रही है कि कृपा करके तीन प्रकार के व्यक्ति को संसद में चुनकर मत भेजिए-

1. जो परदोषदर्शी है, जो विपक्ष की अच्छाई में भी बुराई देखने वाले हैं।
2. वे, जो कुटिल है, मायावी है, नेता नहीं अभिनेता है, असली पात्र नहीं, विदूषक की भूमिका वाले हैं। सत्ता प्राप्ति के लिए किसी भी साधन को अपना सकते हैं। जनता एवं पार्टी दोनों के साथ धोखा कर सकते हैं।
3. जो व्यक्ति असंयमी, चरित्रहीन और जो सत्ता में आकर राष्ट्र को महत्त्व न देकर परिवार को महत्त्व देते है। सत्ता जिनके लिए सेवा का साधन न होकर विलास का साधन है।

15.8 चुनाव

लोकतंत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू चुनाव है। यह राष्ट्रीय चरित्र का प्रतिबिम्ब होता है। जनतंत्र में स्वस्थ मूल्यों को बनाए रखने के लिए चुनाव की स्वस्थता अनिवार्य है। यदि चुनाव व्यवस्था स्वतंत्र एवं निष्पक्ष नहीं हो तो लोकतंत्र का मखौल बन कर रह जाएगा। आचार्य तुलसी का मानना है- ''चुनाव का समय देश के भविष्य-निर्धारण का समय है। अभाव और मोह को उत्तेजना देकर लोकमत प्राप्त करना चुनाव की पवित्रता का लोप करना है। जिस देश में वोट बेचे और खरीदे जाते हैं, उस देश का रक्षक कौन होगा? ये दोनों बातें जनतंत्र की दुश्मन है।''

15.8.1 उम्मीदवारों का अपना चिन्तन हो

चुनाव के समय हर प्रत्याशी का चिन्तन रहना चाहिए कि राष्ट्र को नैतिक दिशा में कैसे आगे बढ़ाया जाए? उसकी एकता और अखण्डता को कायम रखने का वातावरण कैसे बनाया जाए? लेकिन आज इसके विपरीत स्थिति देखने को मिलती है। भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में कुर्सी के लिए होने वाली होड़ की अभिव्यक्ति वे इन शब्दों में करते हैं- ''जहां पद के लिए मनुहारें होती थीं, कहा जाता था- मैं इसके योग्य नहीं हूँ, तुम्ही संभालों, वहां आज कहा जाता है कि पद का हक मेरा है, तुम्हारा नहीं। पद के योग्य मैं हूं तुम नहीं।''

आचार्य तुलसी की दृष्टि में चुनाव में नैतिकता अनिवार्य शर्त है। वे कहते है कि- ''चुनाव चाहे संसद के हों, विधान सभाओं के हो, महाविद्यालयों के हो या अन्य सभा-संस्थाओं के जहां नीति की बात पीछे छूट जाती है वहां महासमर मच जाता है।

15.8.2 जनता के प्रशिक्षण पर बल

आचार्य श्री तुलसी का कहना है कि जब तक शासक और जनता को लोकतंत्र के अनुसार प्रशिक्षित एवं दीक्षित नहीं किया जाएगा, तब तक लोकतंत्र सुदृढ़ नहीं हो सकता। वे अपने विशिष्ट लहजे में कहते हैं कि आश्चर्य तो तब होता है, जब कई अगूठे छाप व्यक्ति भी जनता द्वारा निर्वाचित होकर संसद में पहुँच जाते हैं।''

15.8.3 अणुव्रत पर बल

आचार्य तुलसी ने अणुव्रत के माध्यम से चुनावी वातावरण को स्वस्थ बनाने का प्रयत्न किया। उनका मानना है कि चुनाव का माहौल तूफान से अधिक भयंकर होता है। उस समय अणुव्रत के माध्यम से नैतिकता का एक छोटा-सा दीप भी जलता है तो कम से कम वह प्रकाश के अस्तित्व को व्यक्त करता ही है। यदि चुनाव को पवित्र संस्कार नहीं दिया गया तो भारत की त्याग प्रधान परम्परा दुर्बल एवं क्षीण हो जाएगी।

चुनाव-शुद्धि की दृष्टि से उन्होंने अणुव्रत के माध्यम से मतदाता और उम्मीदवार की एक नैतिक आचार-संहिता तो प्रस्तुत की ही है, साथ ही अपने प्रवचनों एवं निबंधों में भी अनेक महत्त्वपूर्ण मुद्दों को उठाकर जनता को प्रशिक्षित किया है। चुनाव शुद्धि के सन्दर्भ में दिये गये उनके तीन विकल्प अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं-

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. हम विजयी बनें या न बनें, पर चुनाव में भ्रष्ट तरीकों का प्रयोग नहीं करेंगे।
2. सत्तारूढ़ दल चुनाव-शुद्धि के लिए संकल्पबद्ध हो।
3. जनमत जागृत हो।

15.9 सांसद एवं विधायक

लोकतंत्र में शासन की बागडोर जनता द्वारा चुने गए सांसदों और विधायकों के हाथों में होती है। लोकतंत्र की यह दुर्बलता है कि सांसदों एवं विधायकों का चुनाव अर्हता, गुणवत्ता एवं योग्यता के स्थान पर दल या संस्था के आधार पर होता है। इससे राजनीति स्वस्थ नहीं बन सकती। आचार्य तुलसी का मानना है कि राष्ट्रीय चरित्र अपने चरित्र को भारतीय मूल्यों एवं आदर्शों के अनुरूप ढाले, यह अत्यन्त आवश्यक है। अत: प्रत्याशियों को प्रतिबोध देते हुए वे कहते हैं-''लोगों में चुनाव के लिए पार्टी का टिकट पाने की जितनी उत्सुकता होती है, उतनी उत्सुकता यदि योग्य बनने की हो तो कितना अच्छा काम हो सकता है।''

15.9.1 वोट देने के मापदण्ड

चुनाव के वातावरण में एक पत्रकार द्वारा आचार्य श्री से प्रश्न पूछा कि हम वोट किसको दें, इसका उत्तर देते हुए वे कहते हैं कि- ''इस प्रसंग में पार्टी, पक्ष, विपक्ष, सम्प्रदाय, जाति आदि के लेबल को नजर अन्दाज कर सही व्यक्ति की खोज करनी चाहिए। अणुव्रत के अनुसार उस व्यक्ति की पहचान यह हो सकती है-जो नैतिक मूल्यों के प्रति आस्थाशील हो, ईमानदार हो, निर्लोभी हो, सत्यनिष्ठ हो, व्यसनमुक्त हो तथा निष्काम सेवी हो।''

15.9.2 जनप्रतिनिधियों के उच्च व्यक्तित्व की कल्पना

सांसद और विधायक के रूप में ऐसे व्यक्तित्व की कल्पना करते हैं, जो शिखर पर बैठकर भी तलहटी से जुड़ा रहे। जो देश की समस्याओं से जूझते के हिमालयी संकल्प की पूर्ति के साधन जुटाता रहे और अन्तिम व्यक्ति पंक्ति में खड़े व्यक्ति को भी सड़क पर फैंके गये केले के छिलकों-सी नियति न समझे।

15.9.3 सत्ता का आधार नैतिकता एवं सिद्धान्त हो

आचार्य तुलसी का विचार है कि लोकतंत्र में सत्ता पाने का प्रयत्न एकान्तत: बुरा नहीं है पर नैतिकता और सिद्धान्तवादिता को दूर रखकर हिंसा, उच्छृंखलता द्वारा केवल सत्ता पाने को प्रयत्न जनतंत्र पर कलंक है। आज की दूषित राजनीति का आकलन करते हुए वे कहते हैं- ''राष्ट्रहित और जनहित की महत्त्वाकांक्षा। व्यक्तिहित और पार्टी हित के दबाव से नीचे बैठती जा रही है। सत्ता के स्थान पर स्वार्थ आसीन हो रहा है। जनता के दु:ख दर्द को दूर करने के वायदे चुनाव घोषणा पत्र की स्याही सुखने से पहले ही विस्मृति के गले में ढल जाते हैं।'' राजनेताओं की सत्तालोलुपता को उन्होंने गांधी के आदर्श के समक्ष कितने तीखे व्यंग्य के साथ प्रस्तुत किया है- **''गांधी ने कहा था- 'मेरा ईश्वर दरिद्र-नारायणों में रहता है।' आज यदि उनके भक्तों से यही प्रश्न पूछा जाए तो सम्भवत: यही उत्तर मिलेगा कि हमारा ईश्वर कुर्सी में रहता है, सत्ता में रहता है, झोपड़े में रहने वाला ईश्वर आज प्रासाद में रहने लगा है। इससे अधिक गांधी के सिद्धान्तों का मजाक और क्या हो सकता है?'**'

15.9.4 चुनावी हिंसा का विरोध

वे इस बात को मानकर चलते हैं कि राजनैतिक लोगों से महात्मा बनने की आशा नहीं की जा सकती, पर वे पशुता पर उतर आएं, यह ठीक नहीं। अत: राजनीतिज्ञों को प्रेरणा देते हुए वे कहते हैं- ''यदि राजनीतिज्ञ स्थायी शांति चाहते हैं तो उन्हें हिंसा के स्थान पर अहिंसा, प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोगिता और हृदय की वक्रता के स्थान पर सरलता को अपनाना होगा।''

15.9.5 सत्ताधीशों की विलासिता पर कटाक्ष

यदि शासन में विलासिता, आलस्य और कदाचार है तो देश को अनुशासन का इकाई कौन पढ़ाएगा? अत: सत्ताधीशों के विलासी जीवन पर कटाक्ष करने से भी वे नहीं चूके हैं- देखा जाता है कि एक ओर लोगों के पास चढ़ने को साईकिल भी नहीं है और दूसरी ओर नेता लोग लाखों रुपयों की कीमती कारों में घूमते हैं। एक ओर देश के लाखों लोगों के रहने के लिए झोपड़ी उपलब्ध नहीं है और दूसरी ओर नेता लोग एयरकन्डीशन बंगलों में रहते हैं। पिता मिठाई खाए और बच्चे भूखे मरें, क्या यह कोई न्याय है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.9.6 सत्ता एवं विपक्ष की एकता पर बल

सत्तादल एवं विपक्ष दोनों को ही छींटाकशी एवं विद्वेष को भुलाकर एकता एवं सामंजस्य की प्रेरणा वे कितने तीखे एवं सटीक शब्दों में दे रहे है– ''दोनों ही दलों को यह चिन्ता कहां है कि हमारी आपसी लड़ाई से 50 करोड़ (वर्तमान 100 करोड़) जनता का कितना अहित हो रहा है ?विरोधी राष्ट्रों को इससे लाभ उठाने का कैसा अवसर मिल रहा है ?'' वे अनेक बार यह दृढ़ विश्वास व्यक्त कर चुके हैं कि यदि चरित्र–सम्पन्न व्यक्ति राजनीति के रथ को हांकते रहेंगे तो उसके उत्पन्न में भटकने की सम्भावना क्षीण हो जाएगी।

15.10 लोकतंत्र संबंधी विचार

वर्तमान में भारत सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। आचार्य तुलसी का मानना है कि लोकतंत्र एक जीवित तन्त्र है, जिसमें सबको समान रूप से अपनी–अपनी मान्यताओं के अनुसार चलने की पूरी स्वतन्त्रता होती है। लोकतंत्र की नींव जनता के मतों पर टिकी होती है। यदि मत भ्रष्ट हो जाए तो प्रशासन तो भ्रष्ट होगा ही। इस सन्दर्भ में उनके निम्न उद्धरण लोकतंत्र के हृदय को छूने वाले हैं–

''वोटों के गलियारे में सत्ता के सिंहासन तक पहुंचने की आकांक्षा और जैसे–तैसे वोट बटोरने का मनोभाव–यें दोनों ही लोकतंत्र के शत्रु है। लोकतंत्र में जिस ढ़ग से वोटों का दुरुपयोग हो रहा है, उसे देखकर इस तंत्र को लोकतंत्र कहने का मन नहीं होता है।''

15.10.1 लोकतंत्र के आदर्शों की अनुपालना पर बल

सत्ता और सम्पदा के शीर्ष पर बैठकर लोकतंत्र के आदर्शों की रक्षा नहीं हो सकती। इस संदर्भ में उनका मौलिक मंतव्य है– ''तंत्र के व्यासपीठ पर जो व्यक्ति बैठता है, उसकी दृष्टि जन पर होनी चाहिए, तंत्र या पार्टी पर नहीं। आज जन पीछे छूट गया है और तन्त्र आगे आ गया है। इसी कारण हिंसा भड़क रही है। मेरी दृष्टि में लोकतंत्र वहीं सफल होगा जहाँ आत्मतंत्र का विकास हो, अन्यथा जनतंत्र में भी एकाधिपत्य, अव्यवस्था और अराजकता की स्थितियाँ उभर सकती हैं।''

15.10.2 लोकतंत्र की मूलभूत समस्याओं की ओर ध्यान

लोकतंत्र की मूलभूत समस्याओं की ओर ध्यान इंगित करते हुए आचार्य तुलसी का कहना है– ''जब राष्ट्र में हिसा और आतंक के स्फटिंग उछलते हैं, सम्प्रदायवाद सिर उठाता है, जातिवाद के आधार पर वोटों का विभाजन होता है, अस्पृश्यता के नाम पर मनुष्य के प्रति घृणा का भाव बढ़ता है, तब लोकतंत्रीय चेतना मूर्छित हो जाती है।'' लोकतंत्र के प्रासाद को सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए वे चार स्तम्भों को आवश्यक तानते हैं– ''स्वतन्त्रता, सापेक्षता, समानता और सह–अस्तित्व। इनके बिना लोकतंत्र का अस्तित्व टिक नहीं सकता।''

15.10.3 स्वतंत्रता पर चिन्तन

आचार्य तुलसी स्वतन्त्रता को प्रमुख आधार स्तम्भों में से एक महत्त्वपूर्ण स्तम्भ मानते हैं। उनका मत है कि स्वतन्त्रता का सही उपयोग होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता है तो लोकतंत्र की पवित्रता समाप्त हो जाएगी। लेकिन आज लोकतंत्र के नाम पर बोलने की स्वतंत्रता का उपयोग गाली–गलोच के रूप में हो रहा है। लिखने की स्वतन्त्रता का उपयोग किसी के मर्मोदघाटन और किसी पर आरोपों की वर्षा से किया जा रहा है। चिन्तन और आचरण की स्वतंत्रता ने लोगों को अपनी संस्कृति, सभ्यता और नैतिक मूल्यों से दूर धकेल दिया है। लोकतांत्रिक प्रणाली में जनता को लिखन, बोलने, सोचने और करने की स्वतन्त्रता होती है। जनता की स्वतन्त्रता का हनन करने वाले शासकों का आचार्य तुलसी विरोध करते हैं और ऐसे कदम को लोकतंत्र के लिए घातक मानते हैं।

15.10.4 समानता

समानता को लोकतंत्र का हृदय मानते हुए आचार्यश्री का कहना है कि– ''कुछ लोग कोठियों में रहे, कुछ को फुटपाथ पर रात बितानी पड़े, यह विषमता आज के विश्व को मान्य नहीं हो सकती क्योंकि इसकी अन्तिम परिणति हिंसा और संघर्ष है। इस तरह देश के सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के विकास के समान अवसर उपलब्ध होने चाहिए।''

15.10.5 जन प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण पर बल

यदि देश के लोकतंत्र को मजबूत और संगठित बनाना है तो मंत्रियों, सांसदों और विधायकों को प्रशिक्षित करना होगा। आचार्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तुलसी व्यंग्यात्मक शैली में लिखते हैं कि- ''मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि इन मंत्रियों, विधायकों आदि को कोई पहले प्रशिक्षण नहीं मिलता है, जबकि एक वकील, इंजीनियर या डॉक्टर को पहले प्रशिक्षण लेना पड़ता है। मैं सोचता हूँ कि विधायकों के लिए भी एक प्रशिक्षण केन्द्र होना आवश्यक हो। बिना प्रशिक्षण चुनाव में कोई उम्मीदवार के रूप में खड़ा न हो। मेरा विश्वास है कि- अणुव्रत यह प्रशिक्षण देने में समर्थ है।''

15.11 सारांश

सारांश में यही कहा जा सकता है कि आचार्यश्री तुलसी एक धर्माचार्य होने के साथ-साथ आधुनिक भारत के महान् चिन्तक थे। उन्होंने अध्यात्म तथा राष्ट्रवाद में अपूर्व समन्वय करके राष्ट्रीय समस्याओं पर एक सार्थक चिन्तन प्रस्तुत किया। उनके विचारों के माध्यम से हर क्षेत्र में भारत की उन्नति सम्भव हो सकती है। आज जिस प्रकार से संसद एवं विधान मण्डल अखाड़ा बने हुए, भक्षक रक्षक बन बैठे हैं, जाति एवं धर्म की सीढ़ी को पकड़कर चुनाव जीता जा रहा है, जन-प्रतिनिधियों का अधिकांश समय राष्ट्र की उन्नति की योजनाओं में जाकर आपसी प्रतिस्पर्द्धा एवं स्वार्थसिद्धि में जा रहा है। इन परिस्थितियों में आचार्य तुलसी द्वारा प्रस्तुत विचार कारगर सिद्ध हो सकते हैं और लोकतंत्र एवं उसकी संस्थाएँ जनता की इच्छाओं एवं हितों को पूरा कर सकती हैं।

आजादी के 60 वर्ष बाद भी जिस गति से राष्ट्र का विकास होना चाहिए था, उस गति से नहीं हो रहा। इसका मूल कारण हमारे में व्याप्त संकीर्णता, नैतिक मूल्यों का अभाव व स्वार्थ की भावना है अत: यदि आचार्य तुलसी द्वारा बताये गए मार्ग को अपना लिया जाए तो भारत को विश्व की सर्वोच्च शक्ति तथा पुन: विश्वगुरु बनने से कोई नहीं रोक सकता।

इस तरह आचार्य तुलसी के विचारों एवं आध्यात्मिकता, नैतिकता, यथार्थवाद, मानवीय कल्याण, शान्ति तथा अहिंसा की झलक दिखाई देती है। उनका मुख्य लक्ष्य यही था कि भारत की प्रतिष्ठा को किस प्रकार बढ़ाया जाए।

15.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. समणी कुसुम प्रज्ञा, ''आचार्य तुलसी की साहित्य सम्पदा'' जैन विश्व भारती, लाडनूँ
2. आचार्य तुलसी, ''क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?'' भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
3. आचार्य तुलसी, ''तीन सन्देश'' आदर्श साहित्य संघ, सरदारशहर
4. आचार्य तुलसी, ''नया समाज नया दर्शन'' आदर्श साहित्य संघ, चूरू
5. मुनि प्रशान्त कुमार तथा मुनि लोक प्रकाश ''लोकेश'', ''एक अमिट आलेख : इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार 'दिग्दर्शन''' जैन विश्व भारती, लाडनूँ
6. आचार्य तुलसी, ''सफर : आधी शताब्दी का'' आदर्श साहित्य संघ, चुरू
7. आचार्य तुलसी, ''अणुव्रत के आलोक में'' आदर्श साहित्य संघ, चुरू
8. आचार्य तुलसी, ''अणुव्रत गति-प्रगति'' आदर्श साहित्य संघ, चुरू
9. आचार्य तुलसी, ''जैन सिद्धान्त दीपिका'' आदर्श साहित्य संघ, चुरू
10. आचार्य तुलसी, ''अतीत का अनावरण : अनागत का स्वागत'' आदर्श साहित्य संघ, चूरू
11. आचार्य तुलसी, ''जीवन की सार्थक दिशाएँ'' आदर्श साहित्य संघ, चूरू

15.13 अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. आचार्य श्री तुलसी की जीवन यात्रा पर प्रकाश डालिए।
2. आदर्श राज्य के संबंध में आचार्य श्री के क्या विचार है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. राष्ट्रीय विकास पर आचार्य तुलसी के चिन्तन को स्पष्ट कीजिए।
4. चुनाव व्यवस्था में पारदर्शिता लाने के लिए आचार्य तुलसी ने क्या विचार दिये ?
5. आचार्य तुलसी के लोकतंत्र संबंधी विचारों का उल्लेख कीजिए।
6. राष्ट्रीय एकता की दिशा में आचार्य श्री तुलसी का क्या योगदान रहा।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक के रूप में आचार्य श्री के योगदान की समीक्षा कीजिए।
2. ''धर्म जब गौण हो जाता है तब सम्प्रदाय हावी होता है।'' इस कथन के आधार पर आचार्य तुलसी के पंथ निरपेक्ष संबंधी विचार बताओ।
3. राजीव-लोगोंवाल समझौते में आचार्य तुलसी की भूमिका क्या रही ?
4. आचार्य श्री ने राष्ट्रीय विकास के कौन से मापदण्ड बताए हैं ?
5. 'अणुव्रत चुनाव सुधार में सक्षम है' सिद्ध कीजिए।
6. आचार्य तुलसी के स्वतन्त्रता संबंधी विचार बताओ।
7. ''सौराज्य ही स्वराज है'' सिद्ध कीजिए।
8. आचार्य तुलसी ने संसद की सर्वोच्चता किस प्रकार सिद्ध की ?

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. आचार्य तुलसी का जन्म कब और कहां हुआ था।
2. आचार्य तुलसी किसके पास दीक्षित हुए ?
3. अणुव्रत आन्दोलन का मूल उद्देश्य क्या है ?
4. अणुव्रत आन्दोलन का शंखनाद कब और कहां हुआ ?
5. अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक कौन थे ?
6. अणुव्रत का आधार भूत संदेश क्या है ?
7. आचार्य श्री तुलसी द्वारा स्थापित प्रमुख संस्थाए बताओ।
8. इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार कब दिया गया।
9. लोकतंत्र की सफलता के आचार्य तुलसी ने कौन-से आधार बताए हैं ?
10. आचार्य तुलसी को यूगप्रधान की उपाधि कब व किसने दी ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ–341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

स्नातक (द्वितीय वर्ष)

विषय : राजनीति शास्त्र

प्रथम पत्र : भारतीय राजनीतिक विचारक

संवर्ग

संवर्ग – 1 मनु, कौटिल्य, महावीर

संवर्ग – 2 राजा राम मोहनराय, स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती

संवर्ग – 3 गोपाल कृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, अरविन्द घोष

संवर्ग – 4 महात्मा गांधी, पं. नेहरू, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर

संवर्ग – 5 एम.एन.राय, डॉ. राम मनोहर लोहिया, सन्त तुलसी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. पी.सी. भाटी**
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
2. **प्रो. रमेश दाधीच**
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
3. **प्रो. बेला भणोत**
   बीकानेर
4. **डॉ. धर्मचंद जैन**
   भीलवाड़ा
5. **डॉ. जुगल दाधीच**
   जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

लेखक
डॉ. मुख्त्यार अली

संपादक
प्रो. धर्मचन्द जैन

कॉपीराइट
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 2300

प्रकाशक
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ–341 306 (राजस्थान)

Printed at
M/s Nalanda Offsets, Jaipur

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विषय - सूची

क्र.सं.	इकाई	पृष्ठ-संख्या
1.	मनु	1-1४
2.	कौटिल्य	१५-४३
3.	महावीर	४४-५४
4.	राजा राम मोहनराय	५५-६५
5.	स्वामी विवेकानन्द	६६-७१
6.	दयानन्द सरस्वती	७२-८0
7.	गोपाल कृष्ण गोखले	८१-९०
8.	बाल गंगाधर तिलक	९१-९८
9.	अरविन्द घोष	९९-1०४
10.	महात्मा गांधी	1०५-1१४
11.	जवाहर लाल नेहरू	1१५-1२५
12.	डॉ. बी.आर. अम्बेडकर	1२६-1३४
13.	एम.एन.राय	1३५-1४२
14.	डॉ. राम मनोहर लोहिया	1४३-1५०
15.	सन्त तुलसी	1५१-१६४

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun